INSTITUTE OF DISTANCE EDUCATION IDE
Rajiv Gandhi University

MAHIN-406

आदिकालीन और मध्यकालीन काव्य (ब)

MA HINDI

2nd Semester

Rajiv Gandhi University

www.ide.rgu.ac.in

BOARD OF STUDIES	
Prof. Shyam Shankar Singh, (Head) Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Chairman**
Prof. Chandan Kumar Dept. of Hindi Delhi University	**Member**
Prof. Dilip Medhi Dept. of Hindi Guwahati University	**Member**
Prof Oken Lego Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Member**
Dr. Arun Kumar Pandey Dept. of Hindi Rajiv Gandhi University	**Co-ordinator**

Authors

Dr. yogesh Sharma , Assistant Professor, dept. of Sanskrit, philosophy and vedic studies, Banasthali University, Rajasthan

Dr. Asha Kiran, Assistant Editor of Vaisharadi, sahitya-purnanetihas, S.L.B.S.R.S, vidyapitham, New Delhi

Vikas revised edition 2021

All rights reserved. No part of this publication which is material protected by this copyright notice may be reproduced or transmitted or utilized or stored in any form or by any means now known or hereinafer verted, electronic, digital or mechanical, including photocopying, scanning, recording or by any information storage or retrieval system, without prior written permission from the Publisher.

"Formation contained in this book has been published by Vikas Publishing House Pvt. Ltd, and has been obtained by Ra Authors from sources believed to be reliable and are correct to the best of their knowledge. However, DE-Ray Gandhi University, the publishers and its Authors shall be in no event be able for a errors, omissions or damages arising out of use of this information and specifically daciaim any implied warranty or merchantability or fitness for any particular use"

VIKAS®

Vikas® is the registered trademark of Vikas® Publishing House Pvt. Ltd.

Vikas® PUBLISHING HOUSE PVT LTD

E-28, Sector-8, Noida: 201301 (UP)

Phone: 0120-4078900 Fax: 0120-4078999

Regd. Office: 7561 Ravindra Mansion, Ram Nagar, New Delhi - 110055

Website: www.vikaspublishing.com Email: helpline @vikaspublishing.com

विश्वविद्यालय : एक परिचय

राजीव गाँधी विश्वविद्यालय अरुणाचल प्रदेश के प्रमुख (पूर्व में अरुणाचल विश्वविद्यालय) उच्च संस्थानों में से एक है। स्वर्गीय श्रीमती इंदिरा गांधी ने जो तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री व फरवरी 1984 को रोनो हिल्स पर विश्वविद्यालय की नींव रखी थी यही विश्वविद्यालय का वर्तमान कप विद्यमान है। आरंभ से ही राजीव गांधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो

आरंभ से ही राजीव गाँधी विश्वविद्यालय श्रेष्ठता हासिल करने और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयासरत है जो विश्वविद्यालय अधिनियम में निहित है। 28 मार्च 1985 में विश्वविद्यालय को विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा सेक्शन 2 (F) के अंतर्गत अकादमिक मान्यता प्रदान की गई।

26 मार्च, 1994 में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग के सेक्शन 12.V के अंतर्गत इसे वित्तीय मान्यता मिली। तब से, राजीव गांधी विश्वविद्यालय ने देश के (तत्कालीन अरुणाचल विश्वविद्यालय) शैक्षिक परिदृश्य में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा गठित विशेषज्ञों की एक उच्च स्तरीय समिति द्वारा देश के उन विश्वविद्यालयों में राजीव गांधी विश्वविद्यालय को भी चुना गया जिनमें श्रेष्ठता हासिल करने की संभावनाएं व सामर्थ्य है।

9 अप्रैल 2007 से विश्वविद्यालय को मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार की एक अधिसूचना के माध्यम से केंद्रीय विश्वविद्यालय का दर्जा दिया गया।

यह विश्वविद्यालय रोनो हिल्स की चोटी पर 302 एकड़ के विहंगम प्राकृतिक अंचल में स्थित है जहां से दिक्रोंग नदी का अदभुत दृश्य देखने को मिलता है। यह राष्ट्रीय राजमार्ग 52-A से 6.5 कि.मी . और राज्य की राजधानी ईटानगर से 25 किकी दूरी पर स्थित है। दिक्रोंग पुल के द्वारा कैंपस .मी . राष्ट्रीय राजमार्ग से जुड़ा हुआ है।

विश्वविद्यालय के शैक्षिक व शोध कार्यक्रम इस प्रकार तैयार किए गए है कि वे राज्य के सामाजिक, आर्थिक व सांस्कृतिक विकास में सकारात्मक भूमिका निभा सकें। विश्वविद्यालय स्नातक स्नातकोत्तर एमएड का कोर्स भी .कार्यक्रम भी संचालित करता है। शिक्षा विभाग बी .डी .एच .फिल व पी . चलाता है।

इस विश्वविद्यालय से 15 कॉलेज संबद्ध है। विश्वविद्यालय पड़ोसी राज्यों, विशेषकर असम के छात्रों को भी शैक्षिक सुविधाएं प्रदान कर रहा है। इसके विभिन्न विभागों व इससे जुड़े कॉलेजों में छात्रों की संख्या में निरंतर वृद्धि हो रही है।

यूजीसी व अन्य फडिंग एजेंसियों की वित्तीय सहायता से संकाय सदस्य भी शोध गतिविधियों में सक्रिय रूप से भाग ले रहे हैं। आरंभ से ही विभिन्न फडिंग एजेंसियों द्वारा विश्वविद्यालय के विभिन्न

शोध प्रस्तावों को स्वीकृत किया गया है। विभिन्न विभागों ने अनेक कार्यशालाओं, संगोष्ठियों व सम्मेलनों का आयोजन भी किया है। अनेक संकाय सदस्यों ने देश व विदेश में आयोजित सम्मेलनों व संगोष्ठियों में भाग लिया है देश विदेश के प्रमुख विद्वानों व विशिष्ट व्यक्तियों ने-1 विश्वविद्यालयों का दौरा किया है और अनेक विषयों पर अपने वक्तव्य भी प्रस्तुत किए है।

2000-2001 का अकादमिक वर्ष विश्वविद्यालय के लिए सुदृढीकरण का वर्ष रहा। वार्षिक परीक्षाओं से सेमेस्टर प्रणाली में परिवर्तन व्यवधानविहीन रहा और परिणामत छात्रों के प्रदर्शन में भी विशेष सुधार देखा गया बोर्ड ऑफ पोस्ट ग्रेजुएट स्टडीज़ द्वारा बनाए गए विभिन्न पाठ्यक्रमों को लागू किया गया यूजीसी इंफोनेट कार्यक्रम के तहत ERNET इंडिया द्वारा VSAT सुविधा प्रदान की गई ताकि इंटरनेट एक्सेस प्रदान की जा सके।

मूलभूत संरचनागत सीमाओं के बावजूद विश्वविद्यालय अकादमिक श्रेष्ठता बनाए रखने में सफल रहा है। विश्वविद्यालय अकादमिक कैलेंडर का अनुशासित रूप से पालन करता है परीक्षाएं समय पर संचालित की जाती है और परिणाम भी समय पर घोषित होते हैं विश्वविद्यालय के छात्रों को न केवल राज्य व केंद्रीय सरकार में नौकरी के अवसर प्राप्त हुए है बल्कि वे विभिन्न प्रतिष्ठित संस्थाओं उद्योगों व संस्थानों में नौकरी के अवसर प्राप्त करने में सफल रहे हैं। अनेक छात्र NET परीक्षाओं मैं भी सफल हुए हैं। अनेक छात्र | परीक्षाओं में भी सफल हुए हैं NET

आरंभ से अब तक विश्वविद्यालय ने शिक्षण, पाठ्यक्रम में नवीन परिवर्तन लाने व संरचनागत विकास में महत्वपूर्ण प्रगति की है ।

आईडीई एक परिचय

हमारे देश में उम शिक्षा प्रणाली को सीमित सीटों सुविधाओं और बुनियादी संसाधनों की कमी के कारण अनेक सामना करना पड़ रहा है। विषयों से जुड़े शिक्षाविद मानते है कि शिक्षा की प्रणाली से अधिक महत्वपूर्ण और जानना है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली इन सभी बुनियादी समस्याओं और समाजिकआर्थिक - बाधाओं को दूर करने का यह प्रणाली ऐसे लाखों लोगों की गुणवत्ता युक्त शिक्षा पाने की मांग की पूर्ति कर रही है जो अपनी रखना चाहते है मगर नियमित रूप महाविद्यालयों में प्रवेश नहीं ले पाते। यह प्रणाली उच्च शिक्षा प्राप्त करने की इच्छा रखने वाले बेरोजगार कार्यरत पुरुष और महिलाओं के लिए भी मददगार सिद्ध होती है। दूरस्थ शिक्षा प्रणाली उन लोगों के लिए भी उपयुक्त माध्यम है जो सामाजिक, आर्थिक अथवा अन्य कारणों से शिक्षा और शिक्षण संस्थानों से दूर हो गए या समय नही निकाल पाये। हमारा मुख्य उद्देश्य उन लोगों को उच्च शिक्षा की सुविधाएं प्रदान करना है जो मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालय नियमित तथा व्यावसायिक शैक्षिक पाठ्यक्रमों में प्रवेश नहीं ले पाते विशेषकर अरुणाचल प्रदेश के ग्रामीण व भौगोलिक रूप से दूरदराज स्थित क्षेत्रों में व सामान्यतया उत्तरपूर्वी भारत - के दूरस्थ स्थित क्षेत्रों में रान2008 में दूरस्थ शिक्षा केंद्र का नाम परिवर्तित कर दूरस्थ शिक्षा संस्थान रखा गया दूरस्थ शिक्षार्थियों के लिए शिक्षा के अवसरों का विस्तार करने के प्रयास जारी रखते (आईटीई) हुए आईडीई ने2013-14 के शैक्षणिक सत्र में पांच स्नातकोत्तर विषयों शिक्षा अंग्रेजी), हिंदी, इतिहास और राजनीति विज्ञानको शामिल किया है। (

दूरस्थ शिक्षा संस्थान में विश्वविद्यालय के पुस्तकालय के पास ही शारीरिक विज्ञान संकाय भवन पहली मंजिल का निर्माण किया गया है। विश्वविद्याल)य परिसर राष्ट्रीय राजमार्ग 52 ए के एनईआरआईएसटी बिंदु से 6 किलोमीटर की दूरी पर स्थित है। विश्वविद्यालय की बसें एनईआरआईएसटी के लिए नियमित रूप से चलती रहती है।

दूरस्थ शिक्षा संस्थान की अन्य विशेषताएं

.1 **नियमित माध्यम के समकक्ष**-पात्रता, अर्हताएं, पाठ्यचर्या सामग्री, परीक्षाओं का माध्यम और डिग्री राजीव गांधी विश्वविद्यालय और विश्वविद्यालय के विभागों के समकक्ष हैं।

2. **स्वयं शिक्षण अध्ययन सामग्री** -**(एसआईएसएम)**छात्रों को संस्थान द्वारा तैयार और दूरत्व शिक्षा परिषद नई दिल्ली द्वारा अनुमोदित स्वय (डीईसी)ं शिक्षण अध्ययन सामग्री प्रदान की जाती है। यह सामग्री प्रदेश के समय आईडीई और अध्ययन केंद्रों में उपलब्ध कराई जाती है। यह सामग्री हिंदी विषय के अलावा सभी विषयों में अंग्रेजी में ही उपलब्ध कराई जाती है।

3. **संपर्क और परामर्श कार्यक्रम** शैक्षिक कार्यक -**(सीसीपी)**्रम के प्रत्येक पाठ्यक्रम में व्यक्तिगत संपर्क द्वारा लगभग 7-15 दिनों की अवधि का परामर्श शामिल है। बीपाठ्यक्रमों के लिए .ए.

के लिए सीसीपी में .ए.सीसीपी अनिवार्य नहीं है। हालांकि व्यावसायिक पाठ्यक्रमों और एम उपस्थिति अनिवार्य होगी।

.4 **फील्ड प्रशिक्षण और प्रोजेक्ट** -व्यावसायिक पाठ्क्रमों में फील्ड प्रशिक्षण और संबंधित विषय में प्रोजेक्ट लेखन का आवश्यक प्रावधान होगा।

5. **परीक्षा एवं निर्देश का माध्यम** -परीक्षा और शिक्षा का माध्यम उन विषयों को छोड़कर जिनमें संबंधित भाषा में लिखने की जरूरत हो, अंग्रेजी होगा।

6. **विषय परामर्श संयोजक** -पाठ्य सामग्री को तैयार करने के लिए आईडीई विश्वविद्यालय के अंदर और बाहर विषय समन्वयकों की नियुक्ति करती है। विश्वविद्यालय द्वारा नियुक्त परामर्श समन्वयक पीसीसीपी के अनुदेशों को प्रभावी रूप से लागू करने के लिए विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों से जुड़े रहते हैं ये परामर्श समन्वयक परामर्श कार्यक्रम के सुचारु रूप से संचालन तथा विद्यार्थियों के एसाइनमेंट्स का मूल्यांकन करने के लिए संबंधित व्यक्तियों से संपर्क कर आवश्यक समन्वय करते हैं। विद्यार्थी भी इन परामर्श समन्वयकों से संपर्क कर अपने विषय से संबंधित परेशानियों और शंकाओं का समाधान प्राप्त कर सकते हैं।

SYLLABI-BOOK MAPPING TABLE

आदिकालीन और मध्यकालीन काव्य (ब)

Syllabi- MAHIN-406(ब)	**Mapping in Book**
इकाई 1 कृष्ण काव्य की परंपरा में सूरदास; पुष्टिमार्ग और सूरदास; लोकजीवन और सूरदास; भ्रमरगीत की परंपरा और सूरदास का काव्य, भ्रमरगीत: ज्ञान मार्ग पर भक्ति की विजय, भ्रमरगीत में सहृदयता और भावुकता, सूरदास द्वारा रचित भ्रमरगीत की प्रासंगिकता; सूर के काव्य में वात्सल्य वर्णन और बाल मनोविज्ञान; ब्रज भाषा को सूर की देन; भक्तिकालीन गीति काव्य और सूर; सूर की गोपियां	**इकाई 1** : सूरदास पृष्ठ. (3-58)
इकाई 2 कृष्ण काव्य की परंपरा में मीरा; मीरा की पदावली का विषय; सामंतवाद को चुनौती और मीरा का काव्य; मीरा के काव्य में स्त्री-चेतना; मीरा की काव्य भाषा; प्रेम दीवानी मीरा	**इकाई 2** : मीराबाई पृष्ठ. (59-86)
इकाई 3 रामकाव्य परंपरा और रामचंद्रिका; केशव का आचार्यत्व, केशव की 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' में आचार्यत्व, रीतिकाल के आदि आचार्य एवं प्रवर्त्तक के रूप में केशव; रामचंद्रिका की संवाद-योजना; रामचंद्रिका के लंका कांड से अंगद-रावण संवाद	**इकाई 3** : आचार्य केशवदास पृष्ठ. (87-120)
इकाई 4 श्रृंगार परंपरा और बिहारी सतसई; दरबारी संस्कृति और बिहारी का काव्य; 'सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर' की कसौटी पर बिहारी का काव्य; बिहारी का काव्य-वैभव: भाव पक्ष, कला पक्ष; बिहारी की काव्य-भाषा; बिहारी की बहुज्ञता; मुक्तक काव्य परंपरा और बिहारी	**इकाई 4** : बिहारी पृष्ठ. (121-176)
इकाई 5 'अति सूधो सनेह को मारग है' की कसौटी पर घनानंद का काव्य; स्वच्छंदतावादी काव्य का स्वरूप और घनानंद का काव्य; घनानंद की सौंदर्य चेतना; घनानंद की काव्य-भाषा; घनानंद के काव्य में प्रकृति; घनानंद की सुजान	**इकाई 5** : घनानंद पृष्ठ. (177-222)

विषय-सूची

परिचय

इकाई 1 : सूरदास

1.0 परिचय

1.1 इकाई के उद्देश्य

1.2 कृष्ण काव्य की परंपरा में सूरदास

1.3 पुष्टिमार्ग और सूरदास

1.4 लोकजीवन और सूरदास

1.5 भ्रमरगीत की परंपरा और सूरदास का काव्य

1.5.1 भ्रमरगीत : ज्ञान मार्ग पर भक्ति की विजय

1.5.2 हिंदी साहित्य में भ्रमरगीत परंपरा और सूर

1.5.3 भ्रमरगीत में सहृदयता और भावुकता

1.5.4 सूरदास द्वारा रचित भ्रमरगीत की प्रासंगिकता

1.6 सूर के काव्य में वात्सल्य वर्णन और बाल मनोविज्ञान

1.7 ब्रज भाषा को सूर की देन

1.8 भक्तिकालीन गीति काव्य और सूर

1.9 सूर की गोपियां

1.10 पाठांश

1.11 मुख्य शब्दावली

1.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1.12 अभ्यास हेतु प्रश्न

1.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 2 मीराबाई

2.0 परिचय

2.1 इकाई के उद्देश्य

2.2 कृष्ण काव्यक की परंपरा में मीरा

2.2.1 मीरा की पदावली का विषय

2.3 सामंतवाद को चुनौती और मीरा का काव्य

2.4 मीरा के काव्य में स्त्री-चेतना

2.5 मीरा की काव्य भाषा

2.6 प्रेम दीवानी मीरा

2.7 पाठांश

2.8 सारांश

2.9 मुख्य शब्दावली

2.10 'अपनी प्रगति जाचिए' के उत्तर

2.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

2.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 3 आचार्य केशवदास

3.0 परिचय
3.1 इकाई के उद्देश्य
3.2 रामकाव्य परंपरा और रामचंद्रिका
3.3 केशव का आचार्यत्व
3.3.1 केशव की 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' में आचार्यत्व
3.3.2 रीतिकाल के आदि आचार्य एवं प्रवर्तक के रूप में केशव
3.4 रामचंद्रिका की संवाद-योजना
3.5 रामचंद्रिका की संवाद-योजना
3.6 पाठांश
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
3.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 4 बिहारी

4.0 परिचय
4.1 इकाई के उद्देश्य
4.2 श्रृंगार परंपरा और बिहारी सतसई
4.3 दरबारी संस्कृति और बिहारी का काव्य
4.4 'सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर' की कसौटी पर बिहारी का काव्य
4.5 बिहारी का काव्य-वैभव
4.5.1 भाव पक्ष
4.5.2 कला पक्ष
4.6 बिहारी की काव्य–भाषा
4.7 बिहारी की बहुज्ञता
4.8 मुक्तक काव्य परंपरा और बिहारी
4.9 पाठांश
4.10 सारांश
4.11 मुख्य शब्दावली
4.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
4.13 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.14 आप ये भी पढ़ सकते हैं

इकाई 5 घनानंद

5.0 परिचय
5.1 इकाई के उद्देश्य

5.2 ‘अति सूधो सनेह को मारग है’ की कसौटी पर घनानंद का काव्य
5.3 स्वच्छंदतावदी काव्य का स्वरूप और घनानंद का काव्य
5.4 घनानंद की सौंदय-चेतना
5.5 घनानंद की काव्य-भाषा
5.6 घनानंद के काव्य में प्रकृति
5.7 घनानंद की सुजान
5.8 पाठांश
5.9 सारांश
5.10 मुख्य शब्दावली
5.11 ‘अपनी प्रगति जांचिए’ के उत्तर
5.12 अभ्यास हेतु प्रश्न
5.13 आप ये भी पढ़ सकते है

परिचय

टिप्पणी

प्रस्तुत पुस्तक 'आदिकालीन और मध्यकालीन काव्य (ब)' विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित एम.ए. हिंदी पूर्वार्द्ध के पाठ्यक्रम के अनुरूप लिखी गई है। हिंदी साहित्य का आदिकाल और मध्यकाल साहित्य–रचना और रचना शैलियों की विविधता से परिपूर्ण रहा। पुस्तक के (ब) भाग में हिंदी साहित्य के इतिहास के भक्तिकाल के कवि सूरदास और मीराबाई तथा रीतिकाल के कवि केशवदास, बिहारी और घनानंद के रचना संसार की विस्तृत जानकारी दी गई है, साथ ही इन कवियों द्वारा रचित कुछ चुने हुए पाठांशों की व्याख्या भी की गई है।

सूरदास को हिंदी साहित्य में कृष्ण भक्ति की अजस्र धारा प्रवाहित करने वाले भक्त कवि के रूप में जाना जाता है। 'सूरसागर' और 'साहित्यलहरी' सूरदास की श्रेष्ठ कृतियां हैं। सूरदास ने अपनी बंद आंखों से कृष्ण की बाल लीलाओं का ऐसा सजीव वर्णन किया कि पाठक वात्सल्य के सागर में गोते लगाने लगता है। 'भ्रमरगीत' के माध्यम से उन्होंने गोपियों की प्रेम पाती द्वारा ऊधो के ज्ञान की गांठों को खोल डाला। सूरदास द्वारा रचित 'भ्रमरगीत' से चयनित पद्यांशों की व्याख्या भी यहां दी जा रही है।

मीराबाई कृष्ण भक्ति काव्यधारा में प्रबल विद्रोह का स्वर लेकर अवतरित हुई। लोक लाज त्याग कर कृष्ण भक्ति की दीवानी मीरा ने तत्कालीन रूढ़िवादी समाज का विरोध करने का जो साहस दिखाया वह सराहनीय है। मीरा द्वारा रचित चयनित पद्यांशों की व्याख्या भी यहां दी जा रही है।

आचार्य केशवदास को लक्षण ग्रंथों पर आधारित रचना करने वाला कवि माना जाता है। इन्हें 'काव्य का प्रेत' भी कहा जाता है।

बिहारी रीतिकालीन कवि हैं, इन्हें शृंगारी कवि भी कहा जाता है। 'बिहारी–सतसई' उनका प्रमुख काव्य–ग्रंथ है। रीतिकाल के अन्य कवियों के समान बिहारी भी परंपरा–पालन से बच नहीं पाए, परंतु उनकी कल्पना परंपरा के पिंजरे में बंदिनी होकर भी अवसर मिलते ही उन्मुक्त आकाश की ओर उड़ने को आतुर हो उठती है। बिहारी द्वारा रचित सतसई के चयनित पद्यांशों की व्याख्या भी यहां दी जा रही है।

घनानंद रीतिकाल की स्वच्छंद काव्यधारा के कवि हैं। उन्होंने रीतिकाल के बंधनों से मुक्त होकर काव्य–रचना की। इनका संपूर्ण काव्य प्रेममय है, जो लौकिक जगत की सुंदरी 'सुजान' से शुरू होकर कृष्ण की ओर रुख करता हुआ अलौकिक रूप धारण कर लेता है।

इस पुस्तक में मध्यकालीन काव्य की मूल संवेदना को व्यक्त करने का प्रयास किया गया है। प्रत्येक इकाई के प्रारंभ में विषय का विश्लेषण करने से पहले उसके निहित उद्देश्यों को स्पष्ट कर दिया गया है। इकाई के बीच–बीच में 'अपनी प्रगति जांचिए' के माध्यम से विद्यार्थियों की योग्यता को परखने के लिए प्रश्न दिए गए हैं। 'क्या आप जानते हैं' एवं 'गतिविधि' के माध्यम से विद्यार्थियों की ज्ञानवृद्धि करने तथा पाठ्य सामग्री में रोचकता लाने

का प्रयास किया गया है। अध्ययन की सुविधा के लिए संपूर्ण पुस्तक को पांच इकाइयों में बांटा गया है, जिनका विवरण इस प्रकार है–

टिप्पणी

पहली इकाई में कृष्ण काव्य परंपरा में सूरदास के योगदान का विस्तृत विवेचन किया गया है।

दूसरी इकाई मीराबाई पर केंद्रित है, जिसमें भक्ति आंदोलन की प्रमुख नारी कृष्ण–प्रेम में दीवानी मीरा के काव्य के विद्रोही स्वरों का बखान किया गया है।

तीसरी इकाई के अंतर्गत रीतिकालीन लक्षण ग्रंथों पर आधारित काव्य–रचना करने वाले आचार्य केशवदास की काव्यगत विशेषताओं का वर्णन किया गया है।

चौथी इकाई में अंतर्गत रीतिकाल के शृंगारी कवि बिहारी की काव्यगत विशेषताओं का विश्लेषण किया गया है।

पांचवी इकाई के अंतर्गत रीतिकालीन स्वच्छंद काव्यधारा के प्रमुख कवि घनानंद के काव्य–सौंदर्य का विस्तृत विवेचन किया गया है।

प्रस्तुत पुस्तक में मध्यकालीन काव्य के स्वरूप एवं विशेषताओं का वर्णन किया गया है। संपूर्ण जानकारियों को सरल भाषा में रुचिकर ढंग से प्रस्तुत किया गया है। हमें पूर्ण विश्वास है कि यह पुस्तक छात्र–छात्राओं की जिज्ञासा को शांत कर, उनका ज्ञानवर्द्धन करेगी।

इकाई 1 सूरदास

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

1.0 परिचय
1.1 इकाई के उद्देश्य
1.2 कृष्ण काव्य की परंपरा में सूरदास
1.3 पुष्टिमार्ग और सूरदास
1.4 लोकजीवन और सूरदास
1.5 किसान जीवन और सूर का काव्य
1.6 भ्रमरगीत की परंपरा और सूरदास का काव्य
1.6.1 भ्रमरगीत रचना की पृष्ठभूमि
1.6.2 भ्रमरगीत : ज्ञान मार्ग पर भक्ति की विजय
1.6.3 हिंदी साहित्य में भ्रमरगीत परंपरा और सूर
1.6.4 भ्रमरगीत में सहृदयता और भावुकता
1.6.5 सूरदास द्वारा रचित भ्रमरगीत की प्रासंगिकता
1.7 सूर के काव्य में वात्सल्य वर्णन और बाल मनोविज्ञान
1.7.1 वात्सल्य का संयोग पक्ष
1.7.2 वात्सल्य का वियोग पक्ष
1.8 ब्रज भाषा को सूर की देन
1.9 भक्तिकालीन गीति काव्य और सूर
1.10 अष्टछाप का दर्शन और सूर
1.11 सूर की गोपियां
1.12 पाठांश
1.13 सारांश
1.14 मुख्य शब्दावली
1.15 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
1.16 अभ्यास हेतु प्रश्न
1.17 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1.0 परिचय

हिंदी साहित्य में कृष्ण भक्ति का प्रसार करने वाले व्यक्तियों में सूरदास का मूर्धन्य स्थान है। वे भक्ति के प्रस्तोता एवं सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। कवि और विशेषतः भक्त कवि अपनी विनयशीलता के कारण अपने विषय में कुछ भी कहने में संकोच करते हैं। सूरदास की जन्मतिथि के संबंध में किसी भी ग्रंथ में किसी निश्चित तिथि का उल्लेख प्राप्त नहीं होता। पुष्टिमार्गीय ग्रंथों के अनुसार सूर आचार्य वल्लभ से केवल 10 दिन छोटे थे और इनका जन्म मंगलवार, पंचमी संवत् 1535 को हुआ था। सूर के जन्म स्थान पर भी विद्वान एकमत नहीं हैं। यही कारण है कि पांच स्थानों को सूर के जन्म स्थान कहलाने का गौरव प्राप्त है–

1. गोपांचल
2. मथुरा समीपस्थ कोई ग्राम
3. रूनकता
4. सीही
5. साही

टिप्पणी

'साहित्य लहरी' में सूर के पूर्वजों का स्थान गोपांचल कहा गया है जिसको पीतांबर दत्त बड़थवाल ने 'ग्वालियर' सिद्ध किया है। सूर की जन्मांधता पर भी विद्वान एक मत नहीं हैं। विद्वानों का कहना है कि यदि वे जन्मांध थे तो ऐसे सूक्ष्म और विराट दृश्यों, लीलाओं का जीवंत वर्णन कैसे कर पाए।

सूर का कृतित्व महान है। वह सार्वकालिक भी हैं और सार्वदेशिक भी। कथ्य और शिल्प दोनों में वह विपुल भी हैं और गुणमय भी। सूरदास एक कुशल और प्रतिभा संपन्न कवि थे। उन्होंने 'श्रीमद्भागवत' के 46वें अध्याय की नीरस कथा को एक स्वतंत्र व्यक्तित्व देकर अपनी सर्जनात्मक क्षमता का उत्कृष्ट उदाहरण प्रस्तुत किया है। भागवत की इस वस्तु को हिंदी में लाने का श्रेय सूरदास को है। सूर के 'भ्रमरगीत' का आधार भागवत ही है। सूर की सर्वमान्य प्रामाणिक रचनाएं तीन हैं– सूर–सारावली, साहित्य लहरी तथा सूरसागर। सूर ने ब्रज भाषा में काव्य रचना की। इनका काव्य भक्ति व प्रेम के साथ समाज की यथार्थता को भी प्रकट करता है। प्रस्तुत इकाई में हम सूरदास व उनके काव्य कौशल का विस्तारपूर्वक अध्ययन करेंगे।

1.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- कृष्ण काव्य परंपरा और पुष्टिमार्ग में सूरदास के स्थान का विस्तृत अध्ययन कर पाएंगे;
- सूरदास के काव्य में लोक जीवन से परिचित हो पाएंगे;
- सूर के काव्य में किसान जीवन का अध्ययन कर पाएंगे;
- भ्रमरगीत परंपरा के आधार पर सूरदास के काव्य का विश्लेषण कर पाएंगे;
- भ्रमरगीत में सहृदयता और भावुकता का तुलनात्मक अध्ययन कर पाएंगे;
- वात्सल्य वर्णन और बाल मनोविज्ञान के आधार पर सूर के काव्य का विश्लेषण कर पाएंगे;
- सूर की भाषा तथा उनकी गीतात्मक शैली का विवेचन कर पाएंगे;
- 'अष्टछाप' के दर्शन और सूर की गोपियों की विशेषताओं का वर्णन कर पाएंगे।

1.2 कृष्ण काव्य की परंपरा में सूरदास

महाभारत में अनेक स्थानों पर कृष्ण के पूजे जाने के संकेत प्राप्त होते हैं। महाभारत के कृष्ण का स्वरूप केवल नीति विशारद ही नहीं है अपितु वह धर्मात्मा भी है। कृष्ण को अर्जुन और युधिष्ठिर पूज्य बुद्धि से देखते हैं। ऋषि वेद व्यास कृष्ण को अपने से अधिक धर्म धुरंधर स्वीकार करते हैं। महाभारत के पश्चात काफी समय तक कृष्ण–पूजा का प्रचार अत्यधिक

टिप्पणी

मात्रा में नहीं हो सका। चौथी शताब्दी ईसा पूर्व में मथुरा के आस–पास के क्षेत्रों में कृष्ण भक्ति के विवरण को मेगस्थनीज के यात्रा–वृत्तांत में देखा जा सकता है। कुछ समय उपरांत जैनों व बौद्धों की आपसी प्रतियोगिताओं में भागवत धर्म के उपासकों ने विष्णु के अवतार राम व कृष्ण की उपासना व भक्ति का प्रचार किया। फिर भी मौर्य युग तक आते–आते बौद्ध धर्म की लोकप्रियता के कारण कृष्ण भक्ति का प्रचार–प्रसार अधिक मात्रा में नहीं हो सका। दक्षिण भारत में सातवीं–आठवीं शताब्दी तक कृष्ण भक्ति का प्रचार फिर से जोर पकड़ने लगा। प्रसिद्ध आलवार भक्तों ने कृष्ण की भक्ति को घर–घर तक पहुंचाने का कार्य किया। कृष्ण भक्ति को अत्यंत लोकप्रियता व आकर्षक रूप प्रदान करने वाले 'भागवत पुराण' की रचना भी दक्षिण भारत में ही हुई।

कृष्ण भक्ति का स्वरूप संस्कृत काव्यों में प्राचीन काल से ही संपूर्ण रूप से विकसित हो गया था। प्रथम शताब्दी में अश्वघोष द्वारा रचित बुद्धचरित में गोपाल कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया गया है। हाल सातवाहनों ने लोक प्रचलित प्राकृत गाथाओं का संग्रह किया। इन गाथाओं में कृष्ण की लीलाओं के साथ राधा, गोपी और यशोदा आदि का वर्णन किया गया है। इन गाथाओं में भक्ति भावना प्राप्त नहीं होती। कृष्ण भक्ति का अनेक कवियों व विचारकों ने प्रचार किया। भट्टनारायण, आनंदवर्धन, हेमचंद्र आदि कवियों ने कृष्ण की लीलाओं का वर्णन किया है। जयदेव द्वारा रचित गीत–गोविन्द राधा–माधव के शृंगार का वर्णन करते हुए भी एक धार्मिक काव्य के रूप में प्रचलित है।

कृष्ण काव्य में सरसता ओर प्राणों का संचार करने का पूर्ण श्रेय महाकवि सूरदास को प्राप्त होता है। सूरदास जी के द्वारा कृष्ण काव्य को लोकप्रियता प्राप्त हुई। इसी लोकप्रियता से प्रभावित होकर तुलसी ने अपनी रचना 'कृष्ण गीतावली' में कृष्ण की सरस व मनोहर लीलाओं का चित्रण किया है। पुष्टिमार्ग के अंतर्गत आने वाले अष्टछाप के कवियों ने कृष्ण भक्ति के प्रचार में अपना अमूल्य योगदान किया। इन कवियों में सूरदास का स्थान सर्वप्रथम है। अष्टछाप के अन्य कवि हैं– कुंभनदास, परमानंददास, कृष्णदास, छीतस्वामी, गोविंद स्वामी, चतुर्भुजदास और नंददास। सूरदास ने श्रीमद्भागवत के आधार पर कृष्ण की लीलाओं पर अनेक पदों की रचना की जिनकी संख्या करीब सवा लाख बताई जाती है। परंतु सूरसागर के करीब पांच हजार पद प्राप्त होते हैं।

सूरदास की सूरसारावली में अनेक ऐसे पदों की रचना की गई है जिनका वर्णन सूरसागर में प्राप्त नहीं होता। सूरदास जी की भक्ति भावना का मेरुदंड पुष्टिमार्ग का सिद्धांत 'भगवदनुग्रह' है। इसी सिद्धांत को आधार मानकर उन्होंने वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भाव की अनेक पद्धतियों की रचना की। पुष्टिमार्ग पर भगवान के अनुग्रह पर अधिक बल दिया जाता है। सूर–साहित्य में नारद–भक्ति सूत्र की ग्यारह आसक्तियों का वर्णन है। सूर की कृष्ण भक्ति के अनुसार कृष्ण ही केवल मात्र पुरुष हैं, अन्य सभी जीवात्माएं स्त्रियां हैं जो सदा कृष्ण की लीलाओं तथा उनके विहार में ही लिप्त रहती हैं। सूर राधा–कृष्ण की प्रेम लीलाओं के चित्रण में इतने अधिक तन्मय थे कि उन्होंने शुद्ध भावना से उन्हें आध्यात्मिक रूप प्रदान किया और 'नीवी खोलत धीरे यदुराई' तक बिना किसी संकोच के कह डाला।

टिप्पणी

कहा जा सकता है कि सूरदास जी ने कृष्ण काव्य की परंपरा को विस्तृत व विकसित करने में अपना अमूल्य योगदान प्रदान किया। सूर के कृष्ण सुंदरता, प्रेम, सद्भावना, मित्रता व एकता आदि के प्रतीक के रूप में हम सबके समक्ष प्रस्तुत हैं। सूरदास जी ने अपने अराध्य देव का बड़े ही निश्छल रूप में वर्णन किया है जो अत्यंत उच्च कोटि का है।

1.3 पुष्टिमार्ग और सूरदास

ब्रजमंडल में श्री वल्लभाचार्य द्वारा जिस कृष्ण भक्ति को प्रतिष्ठित व विस्तारित किया गया, उसका दार्शनिक आधार शुद्धाद्वैत–दर्शन है। शुद्धाद्वैत–दर्शन के साथ साधना और व्यवहार के क्षेत्र में जिस भक्ति के स्वरूप को स्थान प्रदान किया गया उसका आधार क्षेत्र 'पुष्टिमार्ग' को बनाया गया। 'पुष्टिमार्ग' सगुण भक्ति धारा में नया प्रयोग न होने के बिना भी शब्द और व्यवहार के क्षेत्र में नवीन है। भगवद् अनुग्रह या कृपा को 'पुष्टि' कहा जाता है–

"पुष्टि किं मे? पोषणंकिम्! तदअनुग्रहः भगवत्कृपा।"

पुष्टि किसे कहते हैं? भगवान के प्रति अनुग्रह या कृपा का नाम ही पोषण है, यही पुष्टि है; और इसी पुष्टि पर पुष्टिमार्ग की भक्ति पद्धति का मेरुदंड स्थापित किया और मर्कट–शावक तथा मार्जार–शावक के उद्धरणों द्वारा भी यह सिद्ध किया गया कि "जिस प्रकार बंदर का बच्चा या बिल्ली का बच्चा स्वयं को अपनी मां के ऊपर छोड़ देता है, उसी प्रकार जो भक्त स्वयं को भगवान के आश्रय में सदैव के लिए छोड़ दे, वही सच्चा भक्त है।" पुष्टिमार्ग का ऐसा ही संकेत 'गीता' में है। भगवान कृष्ण ने अुर्जन से कहा था कि–

"सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज।"

वल्लभाचार्य ने यूं तो भक्ति का विवेचन करते हुए तीन मार्गों को परिलक्षित किया, यथा– मर्यादा मार्ग, प्रवाह मार्ग और पुष्टिमार्ग। परंतु उनका अत्यधिक बल पुष्टिमार्ग पर ही स्थापित रहा। वल्लभाचार्य के कथनानुसार भक्ति का सर्वश्रेष्ठ मार्ग 'पुष्टिमार्ग' ही है। पुष्टिमार्ग 'अनुग्रह' के भाव पर निर्भर है। यथा–

"पुष्टिमार्गेऽनुग्रहैक साध्यः;
कृष्णानुग्रह रूपा ही पुष्टिः
अनुग्रहः पुष्टिमार्गे नियामक इति स्थितिः।"

भक्ति के इस स्वरूप (पुष्टिमार्ग) में किसी भी प्रकार के साधन या कर्मकांड की अपेक्षा नहीं की जाती। पुष्टिमार्गीय भक्ति के तीन फल हैं–

1. रसरूप पुरुषोत्तम के स्वरूपानंद की शक्ति को प्राप्त कर उसकी लीला में प्रवेश प्राप्त कर जाना,
2. पूर्ण पुरुषोत्तम के श्री अंग अथवा आभूषणादि का अंग बनना,

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. 'भागवत पुराण' की रचना कहां हुई?
2. लोक प्रचलित प्राकृत गाथाओं का संग्रह किसने किया?
3. तुलसी ने अपनी किस रचना में कृष्ण की सरस व मनोहर लीलाओं का चित्रण किया है?
4. सूरदास जी की भक्ति भावना का मेरूदंड क्या है?

3. प्राकृत देहेन्द्रियादि से मुक्त होकर अप्राकृत शरीर में भगवान के बैकुंठ आदि लोकों में आनंद–भोग की स्थिति को प्राप्त करना।

पुष्टिमार्ग के कृष्ण भक्त कवियों ने भी इन्हीं आधारों (फल) का पालन किया और उस प्रभु के रूप–सौंदर्य को श्रृंगार मंडित किया।

टिप्पणी

सूर की भक्ति भावना का मेरुदंड (रीढ़) भी यही पुष्टिमार्गीय भक्ति भावना है। भगवान के द्वारा भक्त की कृपा का नाम ही पोषण है–

'पोषणं तदनुग्रहः'

इसी पोषण के स्वरूप को स्पष्टतया समझाने के लिए ही भक्ति भावना के दो स्वरूप बताए गए हैं–

(क) **साधन रूप**– भक्ति के इस रूप में भक्त को अपने आराध्य को पाने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है।

(ख) **साध्य रूप**– भक्ति के इस रूप में भक्त स्वयं को पूर्ण रूप से (अपना सब कुछ त्याग कर) भगवान की शरण में समर्पित कर देता है।

साधन भक्ति में भक्त को प्रभु को पाने के लिए प्रयत्न करना पड़ता है परंतु साध्य रूप की भक्ति में भक्त अपना सब कुछ न्यौछावर करके स्वयं को प्रभु की भक्ति में छोड़ देता है। पुष्टि मार्गीय भक्ति को अपनाने के बाद प्रभु स्वयं अपने भक्त का ध्यान रखता है। भगवान का अनुग्रह ही भक्त का कल्याण कर भक्त को इस लोक से मुक्त करने में सफलता प्राप्त करता है। यथा–

जा पर दीनानाथ ढरै।
सोइ कुलीन बड़ौ सुंदर सोइ जा पर कृप करै।
सूर पतित तरि जाय तनक में जो प्रभु नेक ढरै।।

भगवान को प्राप्त करने के लिए सूर की भक्ति पद्धति की भावना में 'अनुग्रह' का ही प्राधान्य है। इस भक्ति में ज्ञान, कर्म, योग ओर यहां तक कि उपासना पद्धति भी निरर्थक समझी जाती है। सूर ने अपनी भक्ति पद्धति में भगवदासक्ति के एकादश रूपों का वर्णन किया है। 'नारदभक्ति सूत्र' के अनुसार आसक्ति के एकादश रूप निम्न प्रकार से हैं–गुणमहाल्यासक्ति, रूपासक्ति, पूजासक्ति, स्मरणासक्ति, दास्यासक्ति, संख्यासक्ति, कान्तासक्ति, वात्सल्यासक्ति, आत्मनिवेदनासक्ति, तन्मयासक्ति और परम विरहासक्ति।

सूरदास ने भक्ति के इन सभी एकादंश रूपों का वर्णन किया है परंतु उनका हृदय साख्य, वात्सल्य, रूप, कान्त और तन्मयासक्ति में अधिक मग्न रहा है। तन्मयासक्ति का एक उदारहण–

"उर में माखन चोर गड़े।
अब कैसेहूं निकसत नहिं ऊधौ, तिरछे ह्वै जु अड़े।।"

सूरदास जी को वल्लभाचार्य ने पुष्टिमार्ग में दीक्षा देकर कृष्णलीला के पद गाने के लिए प्रेरित किया। पुष्टिमार्ग में सूरदास की वाणी का आदर बहुत कुछ सिद्धांत वाक्य के रूप में भी होता है। वल्लभाचार्य ने सूरदास और परमानंददास को संप्रदाय में प्रशिक्षित करते

टिप्पणी

समय गोपालकृष्ण के वात्सल्य भाव के पद गाने का आदेश दिया था। इस बात से यह सिद्ध होता है कि प्रारंभ में पुष्टिमार्ग में वात्सल्य भाव की भक्ति का विशेष महत्व था। वल्लभाचार्य ने भक्ति के क्षेत्र में सख्य और कांतारति को स्वीकार किया है। इस विषय पर एक स्थान पर वह कहते हैं कि 'मेरे ह्रदय में गोपियों के विरह का दुःख पैदा हो जाय'। सूरदास और परमानंददास की रचनाओं में सख्य और कांतारति का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है।

सूरदास की रचनाओं से यह प्रमाणित होता है कि पुष्टिमार्ग में भी दास्य, वात्सल्य, साख्य और माधुर्य चारों प्रकार की भक्ति–पद्धति का वर्णन प्राप्त होता है परंतु भावावेश और घनिष्ठता की दृष्टि से सबसे अधिक महत्व माधुर्य भाव की कांतारति का ही है और जिसकी आदर्श स्वयं स्वामिनी राधा ही हैं। भगवान के साथ एकीकरण तथा सेवा उपयोगी देह को पुष्टिमार्ग की भक्ति का परिणाम कहा जा सकता है। भक्ति ही सच्ची सेवा है। पुष्टिमार्ग में भगवान के परमानंद रूप को उपास्य माना गया है। वे सौंदर्य, आनंद और रस के आगार हैं।

पुष्टिमार्ग का रास्ता स्त्री–पुरुष, द्विज–शूद्र सबके लिए खुला है। मनुष्य मात्र इसके अधिकारी हैं। पुष्टिमार्ग गहरी मानवीय संलग्नता और माधुर्य–भाव से ओत–प्रोत है। पुष्टिमार्ग में क्रियात्मक सेवा और भावात्मक सेवा दोनों ही प्रकार की विधियों को सम्मिलित किया गया है। परंतु अत्यधिक बल क्रियात्मक सेवा पर ही दिया गया है। महाकवि सूरदास तो पुष्टिमार्ग में दीक्षित थे और जनमानस में 'पुष्टिमार्ग के जहाज' के अनुरूप गुरु–सेवा, संत–सेवा और प्रभु–सेवा से संबंधित अनेक प्रकार के पद मिलते हैं। पुष्टिमार्गीय सेवा भक्ति में भोग, राग और शृंगार की व्यवस्था की गई है। भोग के अंतर्गत उत्कृष्ट व्यंजन एवं नैवेद्य–अर्पण के द्वारा श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने का प्रयास किया गया है इसलिए सूरदास ने भी भोग की विविध सामग्रियों के द्वारा सूरदास के 1014 पदों के द्वारा अपने अराध्य को प्रसन्न करने का प्रयास किया है। महाकवि सूरदास के काव्य में राग–रागनियों का भी विस्तृत वर्णन मिलता है। सूरदास जी स्वयं कितनी राग–रागनियों के प्रयोक्ता एवं संगीत के आचार्य थे; यह कहने की आवश्यकता नहीं है। गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने भगवान कृष्ण के आठ शृंगारों की संकल्पना की थी। सूर के निम्न पद के द्वारा श्रीकृष्ण के शृंगार का अत्यंत रमणीय चित्र प्रस्तुत होता है–

> *"एक हार मोहि कहा दिखावति।*
> *नख–सिख लौं अंग–अंग निहारहु, ये सब कतहिं दुरावति।।*
> *मोतिनि माल जराइ कौ टीकौ, करन फूल नकबेसरि।*
> *कंठसिरी दुलरी तिलती तर, और हार इक नौसरि।।"*

सूर–साहित्य में पुष्टिमार्ग के अनुरूप ही क्रियात्मक एवं भावात्मक तथा मानसिक सेवा का भी वर्णन मिलता है। सूरदास ने अपने अनेक पदों में भक्ति के ऐसे भाव प्रकट किए हैं जिसके परिणामस्वरूप भगवत् भक्ति का द्वार सबके लिए खुला है। वहां छोटे–बड़े, स्त्री–पुरुष और जाति–पांति के भेद–भाव के लिए कोई स्थान नहीं है। श्रीकृष्ण की भक्ति

'अपनी प्रगति जांचिए'

5. ब्रजमंडल में श्री वल्लभाचार्य द्वारा जिस कृष्ण भक्ति को प्रतिष्ठित व विस्तारित किया गया, उसका दार्शनिक आधार क्या है?
6. पुष्टि किसे कहते हैं?
7. पुष्टिमार्गीय भक्ति के कितने फल होते हैं?
8. भक्ति भावना के कितने स्वरूप होते हैं?

एक ऐसे पत्थर के समान है जिसके संस्पर्श से लोहे का दुर्गुण भी समाप्त हो जाता है। वास्तविक अर्थों में श्रीकृष्ण भाव के ग्राहक हैं। सूर की यह भक्ति भावना पुष्टिमार्ग के सर्वथा अनुरूप है। पुष्टिमार्ग का प्रत्यक्ष उल्लेख सूरदास के अनेक पदों में प्राप्त होता है। यथा–

"हरि मैं तुमसों कहा दुराऊं।

जानत की पुष्टि पंथ मोसो कहि कहि जस प्रगटाऊं।।"

टिप्पणी

निष्कर्षत : कहा जा सकता है कि महात्मा सूरदास पुष्टिमार्ग में विधिवत दीक्षित हुए थे और उन्होंने अपनी रचनाओं में पुष्टिमार्ग के सिद्धांतों का निर्वाह और निरूपण भी किया, लेकिन उनके काव्य का उद्देश्य अत्यंत व्यापक एवं मनुष्यतापरक है।

1.4 लोकजीवन और सूरदास

सूरदास लोक–संस्कृति के कवि हैं। लोक संस्कारों से प्रकट होती है 'लोक–संस्कृति' और लोक–संस्कार 'लोकजीवन' के विविध कलारूपों–काव्य, संगीत, नृत्य और चित्र में जन्म लेते हैं। लोक–संस्कारों में ही लोकजीवन का एक सजीव भावात्मक इतिहास व्यक्त होता है। सूरदास का काव्य भावनात्मक उल्लास और आत्म–शक्ति के विकास के स्तर पर विश्व प्रसिद्ध है। सूर के काव्य में सांस्कृतिक स्तर पर संपूर्ण भारतीय संस्कृति के मौलिक उपादानों का उपेयाग होता है लेकिन क्षेत्रीय संस्कृति या ब्रज संस्कृति का तो वह समृद्ध कोश है। सूरदास के काव्य ब्रज के लोकजीवन के विभिन्न संस्कारों का और उनमें व्यक्त विभिन्न कलाओं का अत्यंत परिष्कृत रूप में चित्रण किया गया है। ब्रज के लोकजीवन, लोक चेतना और लोकमेधा का कलात्मक उपयोग सूरदास के सूरसागर में पर्याप्त रूप से मिलता है। भारतीय हिंदू संस्कृति में एक व्यक्ति का जीवन जन्म से मृत्यु पर्यंत तक संस्कारों से बंधा रहता है। यह संस्कार दो प्रकार के होते हैं– 1. शास्त्र प्रतिपादित मुख्य संस्कार, और 2. लोकगृहित ग्रहकार्य या क्षेत्रीय संस्कार। सूरदास ने अपने काव्य में अपने अराध्य श्रीकृष्ण को लोकजीवन के निकट लाने का प्रयास किया है, जनसामान्य के जीवन से सहज तादात्म्य स्थापित करने का प्रयास किया है। यही कारण है कि कृष्ण का जीवन भी संस्कारों में बंधा हुआ है। इन्हीं संस्कारों से बंधे हुए श्रीकृष्ण का जनसामान्य से सहज आत्मीय संबंध स्थापित हो जाता है।

सूरदास जी भक्ति के क्षेत्र में इतने अधिक रम गए कि समाज की आवश्यकताओं का उन्हें ध्यान ही नहीं रहा। वह पहले भक्त हैं और कवि बाद में। एक शुद्ध लीलावादी कवि होने के नाते 'कला कला के लिए' के समान होने के साथ उनका काव्य 'स्वान्तः सुखाय' है। कृष्ण के भक्ति रंग में वह इतने खो गए कि समाज रहे या नष्ट हो जाए उन्हें कोई परवाह नहीं थी। कृष्ण के सामने उन्हें किसी प्रकार का प्रलोभन नहीं था। सूर का अपना एक लोकजीवन है जिसमें उनके बाल–गोपाल कृष्ण हैं, गोप और गोपियां हैं, मनसुखा और राधा है, रास और रंग है, लीला और विहार है, मुरली और तानपुरा है, माखन और दूध है, गौएं और बछड़े हैं, यमुना और कुंज है, यशोदा और नंद आदि सभी जन हैं। इस जीवन में उल्लास, माधुर्य और आनंद विद्यमान है तथा इसमें कहीं भी खिन्नता का आभास तक

उपलब्ध नहीं है। वहां नित्य नये–नये जीवन की क्रियाएं तथा यौवन और उन्माद विद्यमान रहता है। उनकी मथुरा नगरी तीनों लोकों से प्यारी व न्यारी है। इस नगरी में सिर्फ और सिर्फ कृष्ण की लीलाओं का धाम है। इस धाम में रीति और नीति का प्रवेश नहीं होता।

टिप्पणी

सूरदास का साहित्य तत्कालीन राजनीतिक घात–प्रतिघातों तथा सामाजिक क्रियाओं–प्रतिक्रियाओं से अछूता है। उनका साहित्य कृष्ण रस से सराबोर है। उनके अनुसार सभी लोग विविध दुखों से घिरे हुए हैं और उनके सभी प्रकार के दुखों का निवारण श्रीकृष्ण की लीलाओं में प्रवेश के द्वारा संभव है।

लोक जीवन में पाया जाने वाला मैत्री का भाव सूर ने सुदामा व कृष्ण की मैत्री भावना के द्वारा बड़े ही सटीक रूप में प्रस्तुत किया है। समाज में एकता स्थापित करने के लिए तथा साथ रहने के लिए मित्रता कितनी अनिवार्य है यह सूर के काव्य को पढ़कर आभास होता है।

लोकजीवन का सच्चा चित्र लोक गीतों में ही व्यक्त होता है। भारत में विभिन्न अवसरों के अनुकूल लोकगीत प्रचलित हैं। सूरदास का संपूर्ण वात्सल्य वर्णन पूर्णरूप से गीतमय है। सूरदास के काव्य का वात्सल्य–वर्णन पूर्णतः गीतमय है। इनके वात्सल्य वर्णन का सबसे महत्वपूर्ण अंग 'मातृहृदय का प्रकाशन' है। मातृहृदय की इच्छाओं, आशाओं और कोमल भावनाओं की जैसी सूक्ष्म और सजीव व्यंजना सूरसागर में हुई है, वह अद्वितीय है। यशोदा श्रीकृष्ण की ललित लीलाओं में असीम आनंद की अनुभूति करती है। यशोदा कृष्ण को पालने में झुलाकर सुलाने का प्रयास कर रही है। यशोदा गा रही है–

"मेरे लाल को आउ निंदरिया, काहे न आनि सुवावै।
तू कहो नहिं वेगिहिं आवै तोकों कान्ह बुलावै।"

यशोदा कृष्ण को सोया जानकर गाना बंद कर देती है तब कृष्ण दुबारा उठ जाते हैं और यशोदा फिर से लोरी गाना शुरू कर देती हैं–

"जसोदा हरि पालनै झुलावै।
लंहरावै, दुलराइ मल्हावै, जोइ–सोइ कछु गावै।
मेरे लाल कौ आउ निदरिया, काहैं न आनि सुवावै।
तू काहैं नहीं वेगिहिं आवै, तोकों कान्ह बुलावै।"

सूर ने यशोदा और नंद के द्वारा एक गृहस्थ जीवन का सुंदर चित्र उकेरा है। उनके द्वारा किया गया गृहस्थ चित्रण इतना सजीव प्रतीत होता है कि ऐसा लगता है कि वह नित्य जीवन में घटित होने वाली क्रिया है। सूर को माता–पिता के हृदय और बालकों के मन की गहरी पहचान थी। नंद और यशोदा को कृष्ण की प्राप्ति प्रौढ़ अवस्था में हुई थी अतः कृष्ण के प्रति उनका अतिशय स्नेह स्वाभाविक था।

सूर के समय लोक जन में कृष्ण ही समाया हुआ था। गांव के ग्वालों से लेकर, बालक, गोपियां, सामान्य जन यहां तक कि पशु–पक्षी भी उन्हीं के प्रेम रस में डूबे रहते थे। समाज में राजनीतिक विषमता तो व्याप्त थी परंतु फिर भी उनके समय का समाज भक्ति

के रस में डूब गया था, इसलिए राजनीतिक और अन्य प्रकार की क्रियाओं का उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था। सभी लोग उसी तरह कार्य करते थे जैसे आज के युग में करते हैं अंतर सिर्फ इतना था कि उस समय वह पूर्ण रूप से कृष्ण भक्ति में समाए हुए थे व समाज में कहीं न कहीं प्रेम व मैत्री का भाव उच्च श्रेणी पर था।

टिप्पणी

कहा जा सकता है कि सूरदास जी का लोकजीवन एक ऐसे समाज को हमारे सामने प्रस्तुत करता है जिसमें सिर्फ कृष्ण प्रेम धारा प्रवाहित होती है। इस प्रेम के द्वारा मनुष्य अपने दुखों से निजात पाता है तथा एक स्वस्थ समाज का निर्माण करता है। उनके द्वारा किया गया लोक जीवन का चित्रण 'स्वान्तः सुखाय' की भावना को प्रस्तुत करता है।

1.5 किसान जीवन और सूर का काव्य

सूरदास को भक्त कवि माना जाता है। कृष्ण की भक्ति के अलावा इनकी रचनाओं में जीवन के विभिन्न रंगों को देखा जा सकता है। उन्होंने अपने पदों में किसानों की गरीबी, कर्मचारियों के अनाचार और सामंतों की लूट का भी जिक्र किया है। सूरदास समाज में वर्ण व्यवस्था को स्वीकार करते हैं और उच्च वर्ण या ब्राह्मणों का शूद्रों या निम्न वर्ण के लोगों के साथ बैठकर भोजन करना, हंस और कौए या लहसुन और कपूर के योग के समान है। सूर ने ब्रज में रहने वाले पशुपालक अहीरों के साफ और निश्छल जीवन तथा उसी क्षेत्र में रहने वाले किसानों के कठिन और अभावग्रस्त जीवन को चित्रित किया है।

सूरदास ने यमुना के कछारों के बीच गोचारण के बड़े सुंदर–सुंदर दृश्यों का विधान किया है; जैसे

मैया री! मोहिं दाऊ टेरत
मोकों बनफल तोरि देत हैं, आपुन गैयन घेरत।।

सब सखा समुना के तट पर किसी विशाल वृक्ष के नीचे बैठकर आपस में कलेऊ बांटकर खाते हैं और कभी इधर से उधर और उधर से इधर दौड़ते हैं। उनमें से कोई जोर से चिल्लाते हुए कहता है–

द्रुम चढ़ि काहे न टेरत, कान्हा गैया दूरि गईं।
धाईं जाति सबन के आगे जे वृषभान दईं।

सूरदास जी ने पशु–प्रकृति का सुंदर परिचय देने के लिए 'जे वृषभान दईं' शब्दों का उपयोग किया है।

सूर ने अपनी कविता में व्यक्त किसान–जीवन की विविध दशाओं, महाजनी सभ्यता का क्रूर चेहरा, सामंतों द्वारा गरीब किसानों के शोषण को निर्ममता और राजनीतिक अभिप्रायों को बड़ी बारीकी और बेबाकी के साथ उद्‌घाटित किया है। अपने पदों में खेती–बाड़ी का जिक्र करते हुए सूर जी ने लिखा है कि–

प्रभु जू यौं कीन्ही हम खेती
बंजर भूमि गाउं हर जोते, अरू जेती की तेती

'अपनी प्रगति जांचिए'

9. सूर ने अपने काव्य में किसके द्वारा एक गृहस्थ जीवन का चित्र उकेरा है?
10. सूर के समाज में किसके प्रेम की धारा प्रवाहित होती है?
11. सूर ने काव्य में पशु–प्रकृति के परिचय के लिए किन शब्दों का उपयोग किया है?
12. किसानों की यातना को मूर्त और इंद्रियग्राह्य बनाने के लिए सूर ने किसका सहारा लिया है?

टिप्पणी

काम क्रोध दोउ बैल बली मिलि, रज तामस सब कीन्हौं
अति कुबुद्धि मन हांकनहारे, माया जूआ दीन्हौं
इंद्रिय मूल किसान, महातृन अग्रज बीज बई
जन्म–जन्म को विषय वासना, उपजत लाता नई
कीजै कृपादृष्टि की बरषा, जन की जाति लुनाई
सूरदास के प्रभु सो करियै, होई न कान कटाई

सूर के काव्य में जिस किसान जीवन का चित्रण है उसका एक विशेष सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भ है। वह संदर्भ सामंती व्यवस्था का है, जिसके भीतर किसान जीवन के अनुभवों का स्वरूप बना है। सूर की विशेषता यह है कि उन्होंने सामंती व्यवस्था के संदर्भ के साथ किसान जीवन के अनुभवों का चित्रण किया है। उसमें सामंती व्यवस्था के अत्याचार और किसानों की यातना को मूर्त और इंद्रियग्राह्य बनाने के लिए रूपक का सहारा लिया गया है। सूर के काव्य में न केवल खेती से जुड़ी हर छोटी–बड़ी बात का मार्मिक वर्णन है, बल्कि सामंती व्यवस्था में लगान की लूट के साथ सूदखोरी की प्रथा और महाजनी सभ्यता का बर्बर रूप भी प्रकट हुआ है।

सूरदास ने अपने पदों में किसानों की गरीबी, कर्मचारियों के अत्याचार और सामंतों की लूट का जिक्र करते हुए लिखा है–

अधिकारी जब लेखा मांगै, तातैं हौं अधीनौ
घर मैं गथ नहिं भजन तिहारो, जौन दिय मैं छूटौं
धर्म जमानत मिल्यों न चाहै, तातैं ठाकुर लूटो
अहंकार पटवारी कपटी, झूठी लिखत बही
लागै धरम, बतावै अधरम, बाक़ी सबै रही
सोई करौ जु बसतै रहियै, अपनौ धरियै नाउं
अपने नाम की बैरख बांधौ, सुबस बसौं इहिं गाउं

इतना ही नहीं, इनके काव्य में तत्कालीन शासन व्यवस्था की राजनीति के रूप और अभिप्राय की पहचान है और साथ में जनता के हित की राजनीति की चिंता भी। अतः सामंती युग में प्रजातंत्र की आकांक्षा की अभिव्यक्ति है। हल खेती का साधन है और भारतीय किसान का मुख्य सहारा भी है इसीलिए किसान को हलजीवी और हलधर कहा जाता है। बलराम का भी एक नाम हलधर है क्योंकि वे हमेशा हल धारण किए रहते हैं। हल ही उनका शस्त्र है। भारतीय देवताओं की परंपरा में एक से एक विलक्षण अस्त्र–शस्त्र धारण करने वाले देवता हैं लेकिन खेती के एक प्रमुख साधन को अपना शस्त्र और पहचान का प्रतीक बनाने वाले देवता केवल बलराम हैं। कृष्ण के अग्रज का हल धारण करना स्वाभाविक ही है और यह कृषि–कर्म से कृष्ण–कथा के घनिष्ठ संबंध की ओर संकेत है। कृष्ण–कथा में ऐसे अनेक तत्व हैं जिनका आधार किसान जीवन है। वास्तव में कृष्ण–कथा मूलतः कृषि से जुड़ी कल्पना की रचना है, जिसमें सूर ने किसान जीवन की वास्तविकताओं और आकांक्षाओं को अभिव्यक्त किया है।

1.6 भ्रमरगीत की परंपरा और सूरदास का काव्य

टिप्पणी

भ्रमरगीत शब्द 'भ्रमर' तथा 'गीत' दो शब्दों के जुड़ने से बना है। भ्रमर को भंवरा भी कहा जाता है, जो रस–लोलुप तथा प्रवंचक रसिक व्यक्ति का प्रतीक माना गया है। भंवरा किसी एक फूल का नहीं होता। वह कभी किसी फूल पर बैठता है तो कभी अन्य फूल पर। अपनी इसी मूल प्रवृत्ति के कारण असंख्य फूलों का रसपान करता है फिर भी वह तृप्त नहीं होता। हमारा समाज पुरुष प्रधान है। यद्यपि वैदिक युग में नारी को समुचित स्थान प्राप्त था और वह सामाजिक कार्यों में पुरुषों के समान सहभागिणी मानी जाती थी। परंतु धीरे–धीरे समाज में पुरुषों का वर्चस्व बढ़ने लगा। वह अपनी शारीरिक शक्ति तथा बल के आधार पर नारी को दबाकर रखने लगा। यही नहीं उसे घर की चाहरदीवारी में कैद कर लिया गया। मध्य युग में भी नारी को केवल उपभोग की एक वस्तु माना गया और पुरुष वर्ग नारी वर्ग का निरन्तर शोषण करने लगा। समाज के कुछ पुरुष एक नारी के अतिरिक्त अन्य नारियों के साथ संबंध स्थापित करने लगे और बहु–विवाह प्रथा को बल मिलने लगा। इसीलिए कवियों ने अनेक रमणियों के साथ काम–क्रीड़ा करने वाले पुरुषों को भ्रमर की संज्ञा दी। इस प्रकार भ्रमरगीत अपने आप में एक प्रतीक है जो पुरुष की निष्ठुरता, प्रवंचकता, लम्पटता आदि के अर्थ को व्यंजित करता है।

1.6.1 भ्रमरगीत रचना की पृष्ठभूमि

16वीं तथा 17वीं शताब्दी में भारतीय जनमानस हठयोगियों, अघोरियों, कपालियों तथा तंत्र–मंत्र का प्रयोग करने वाले साधकों से अत्याधिक प्रभावित था। योग की साधना करने वाले संन्यासी विभिन्न प्रकार की शारीरिक यातनाएं सहन करते थे और सामान्य लोगों में भय तथा विस्मय उत्पन्न करके उन्हें अपनी ओर आकर्षित करते थे। समाज के थोड़े बहुत लोग शिक्षित थे उन पर शंकराचार्य के वेदांत का अत्यधिक प्रभाव था। इस प्रकार संपूर्ण हिंदू समाज धर्म के नाम पर हठयोगियों तथा कनपठे योगियों से अत्यधिक प्रभावित था। दूसरी ओर शैव, और बौद्ध आचार–विचार की दृष्टि से भारतीय समाज में अपनी उज्ज्वल छवि नहीं बना सके। यही नहीं राजनैतिक परिस्थितियां हिंदुओं के सर्वाधिक प्रतिकूल थीं। ये राजनीतिक परिस्थितियां सर्वथा धार्मिक परिस्थितियों को अत्यधिक प्रभावित कर रही थीं। मुस्लिम शासक छल–बल का प्रयोग कर हिंदुओं का धर्मांतरण कर रहे थे जिस समय श्रीमद्भागवत् की रचना हुई उस समय यवनों के आक्रमण बढ़ते जा रहे थे जिससे भारतीय समाज धार्मिक तथा नैतिक दृष्टि से जर्जर होता जा रहा था। जीवन के उच्च आदर्श तथा मूल्य नष्ट होते जा रहे थे। योग साधना तथा ज्ञान के नाम पर भारतीय समाज को गुमराह किया जा रहा था।

जहां तक तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों का प्रश्न है तो वे भी सर्वथा प्रतिकूल थीं। यद्यपि महाभारत काल से ही नारियों तथा शूद्रों के उद्धार के प्रयास चल रहे थे, परंतु अभी तक इन दोनों वर्गों की स्थिति दयनीय बनी हुई थी। अधिकांश शूद्र हिंदू धर्म को छोड़कर मुस्लिम धर्म ग्रहण करते जा रहे थे। 16वीं शताब्दी के बाद हिंदू तथा वैष्णवों के

टिप्पणी

सिद्धांतों का प्रचार हुआ। वैष्णव तो वेद तथा लोक विरोधी थे और इनके सिद्धांत विष्णु पर ही आधारित थे। भागवत् पुराण की रचना का यही मूल आधार है। भागवत् पुराण में आराधना, पूजा तथा प्रार्थना का विशद् वर्णन किया गया है परंतु उसमें वामाचार के लिए कोई स्थान नहीं है। व्यावहारिक जीवन की दृष्टि से ही श्रीमद्भागवत की रचना हुई थी। सूर के दार्शनिक सिद्धांतों का आधार यही श्रीमद्भागवत पुराण है। इस संदर्भ में डॉ. विशंभर नाथ उपाध्याय लिखते भी हैं– "यही नहीं, श्रीमद्भागवत् की समन्वयवादी बुद्धि ने जैनियों के आदि तीर्थंकर तथा अवधूत जड़ भारत की तपस्या मार्ग व योगमार्ग का पूर्ण आदर किया है। गृहस्थों के लिए निष्काम कर्मयोग व भक्ति का उपदेश देकर मुक्ति संभव बताई है। अभिप्राय यह है कि स्थल वामाचारी साधनाओं को छोड़कर भागवत पुराण में सब कुछ स्वीकृत है।" इस विवेचन से स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि श्रीमद्भागवत् में तत्कालीन कठोर साधना पद्धतियों की अपेक्षा सहज, सरल तथा बोधगम्य व्यावहारिक भक्ति का प्रतिपादन किया गया है। बोलचाल की भाषा में हम कह सकते हैं कि कि श्रीमद्भागवत् का मूल धर्म भाव साधना है। यह भक्त को भगवान के प्रति सर्वात्म समर्पण करने का संदेश देता है। आचार्य बल्लभाचार्य का मूल तत्व भी यही था। इस सन्दर्भ में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल लिखते भी हैं–"जिस प्रकार ज्ञान की चरम सीमा ज्ञाता और श्रेय की एकता है, उसी प्रकार प्रेमभाव की चरम सीमा आश्रय और आलम्बन की एकता है। अतः भगवत् भक्ति की साधना के लिए इसी प्रेम–तत्व को बल्लभाचार्य ने सामने रखा और उनके अनुयायी कृष्ण भक्त कवि इसी साधना को लेकर आगे बढ़े।" सूरदास के सम्पूर्ण काव्य में यही प्रेम तत्व विद्यमान है। उनके काव्य में प्रेम के अनेक रूप देखे जा सकते हैं। इसमें भगवत् विषयक रति, वात्सल्य तथा दाम्पत्य रति प्रमुख हैं। सूर के विनय परक पद भगवत विषयक रति से संबंधित हैं। बालक श्रीकृष्ण की लीलाएं तथा क्रीड़ाएं वात्सल्य से जुड़ी हुई हैं तथा भ्रमरगीत में गोपियों से संबंधित पद दाम्पत्य रति से संबंधित है।

1.6.2 भ्रमरगीत : ज्ञान मार्ग पर भक्ति की विजय

पहले स्पष्ट किया जा चुका है कि सूरदास के काल में ज्ञानमार्गियों ने भक्ति की दशा को शोचनीय बना दिया था। तत्कालीन ज्ञानी, संत तथा नाथ भक्तिमार्गियों से जब–तब शास्त्रार्थ करते रहते थे। सूरदास एक सगुणमार्गी कवि थे। अतः उन्होंने अपने महत्वपूर्ण ग्रन्थ 'सूरसागर' में सगुणवाद का ही प्रतिपादन किया। उन्होंने 'सूरसागर' में भ्रमरगीत की उद्भावना करके ज्ञान तथा भक्ति की विजय का प्रतिपादन किया। श्रीकृष्ण ने उद्धव को ब्रज में इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए भेजा ताकि गोपियों की सहृदयता को देखकर उद्धव का ज्ञान गर्व नष्ट हो जाए और वे भी गोपियों की तरह प्रेम रसिक बन जाएं। उद्धव हमेशा श्रीकृष्ण के साथ रहते थे और ज्ञानमार्ग की नीरस बातें करते रहते थे। श्रीकृष्ण उद्धव के समक्ष अपने ब्रज प्रेम का वर्णन नहीं कर पाते थे। अतः उद्धव की शुष्क प्रवृत्ति को सरस बनाने के लिए उन्हें गोपियों के पास भेजा। उद्धव ने ब्रज में पहुंचते ही गोपियों के समक्ष ज्ञान मार्ग की चर्चा प्रस्तुत कर दी। उनकी सारी उक्तियां तर्क तथा विचार से परिपूर्ण थीं। उनकी प्रत्येक बात नीरस व शुष्क थी जिसमे प्रेम की रसता का अंश मात्र भी नहीं था।

गोपियां उनके नीरस कथनों से प्रभावित नहीं हुईं, क्योंकि वे तो एकनिष्ठ प्रेम में ही विश्वास रखती थीं।

ब्रज की गोपियों ने श्रीकृष्ण के साथ प्रगाढ़ प्रेम किया था। श्रीकृष्ण के सिवाय उन्हें संसार की किसी वस्तु की कामना नहीं है वे श्रीकृष्ण के प्रेम में रंगी हुई हैं। उनके प्रेम का आधार श्रीकृष्ण हैं। ऐसी स्थिति में वे उद्धव के ज्ञान तथा उपदेश को कैसे ग्रहण कर सकती हैं। वे उद्धव से स्पष्ट कहती हैं कि हम तो नंद के गांव की निवासिनी हैं। हमारा नाम गोपाल है। जाति तथा कुल गोपों का है। गोप होने के कारण हम श्रीकृष्ण की उपासना करने वाली हैं। वही हमारे इष्टदेव है।

गोपियों के प्रेम का रंग पक्का है, उस पर कोई दूसरा रंग नहीं चढ़ सकता। यद्यपि उद्धव नाना प्रकार के तर्क देकर गोपियों को निर्गुण ब्रह्म तथा ज्ञान की ओर अग्रसर करना चाहता है, परंतु गोपियों पर उनका तनिक भी प्रभाव नहीं पड़ता। उन्हें यह जानकर दुःख होता है कि उद्धव श्रीकृष्ण को भुलाने की अनेक विधियां तो बता रहे हैं परंतु वे कोई ऐसी विधि नहीं बताते कि जिससे श्रीकृष्ण के साथ ब्रज की कुंज लताओं की शीतल छाया में उन्मत होकर विचरण किया जाए। लेकिन अब उनको यह समझाया जा रहा है कि वे कृष्ण को भूलकर निर्गुण ब्रह्म की साधना करें। परंतु यह गोपियों के लिए सम्भव नहीं है।

सूरदास भ्रमरगीत द्वारा निर्गुण ब्रह्म के स्थान पर साकार ब्रह्म अर्थात् श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा स्थापित करना चाहते हैं। कवि का दृढ़ विश्वास था कि उपासना तथा पूजा के लिए निर्गुण ब्रह्म की कल्पना करना व्यर्थ है। भ्रमरगीत की गोपियां उद्धव के साथ तर्क करती हुई यही प्रश्न उठाती हैं कि तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म का लक्षण क्या है। वह किस देश का वासी है और उसकी रूपरेखा क्या है? यदि तुम हमें अपने निर्गुण ब्रह्म का सही परिचय दो तो हम उसको स्वीकार करने के बारे में सोच सकती हैं।

अन्त में उद्धव अपनी पराजय को स्वीकार करता हुआ सगुण भक्ति के मार्ग की ओर लौट आता है। इस संबंध में सूरदास लिखते भी हैं–

"ऊधौ कहै, 'धन्य ब्रजबाल! जिनके सर्बस मदनगोपाल।
वह मत त्याग्यो, यह मति आई। तुम्हरे दरस भगति मैं पाई।
तुम मम गुरू मैं दास तुम्हारो। भगति सुनाय जगत निस्तारो।
भ्रमरगीत जे सुनै सुनावैं। प्रेमभक्ति सो प्रानी पावैं।
सूरदास गोपी बड़भागी। हरि दरसन की ठगौरी लागी।"

1.6.3 हिंदी साहित्य में भ्रमरगीत परंपरा और सूर

हिंदी साहित्य में भ्रमरगीत परंपरा का श्रेय विद्यापति को दिया जा सकता है। उनकी पदावली में भ्रमरगीत से संबंधित दो पद हैं। लेकिन इतना निश्चित है कि विद्यापति ने इन पदों में गोपियों तथा राधा की विरह–वेदना का सुन्दर वर्णन किया है। यहां गोपियां उद्धव को ही संबोधित करके श्रीकृष्ण को उपालम्भ देती हैं। प्रत्यक्ष रूप से वे किसी भ्रमर को संबोधित नहीं करती। अतः कुछ विद्वान इन पदों को भ्रमरगीत परंपरा से नहीं जौड़ते।

टिप्पणी

इसलिए वह हिंदी साहित्य में भ्रमरगीत परंपरा का प्रवर्त्तन करने का श्रेय केवल सूरदास को देते हैं। सूर के अतिरिक्त, तुलसीदास, आचार्य भिखारीदास, अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', जगन्नाथ दास रत्नाकर, सत्य नारायण कवि रत्न तथा मैथिलीशरण गुप्त आदि ने भ्रमरगीत परंपरा को आगे बढ़ाने का प्रयास किया। यहां हम भ्रमरगीत परंपरा के प्रवर्त्तक सूरदास का विवेचन करेंगे।

सूर के भ्रमरगीत का स्थान—इन सभी भ्रमरगीतों में सूरदास द्वारा रचित भ्रमरगीत सर्वाधिक महत्वपूर्ण रचना है। वस्तुतः हिंदी साहित्य में सूरदास ने ही भ्रमरगीत परंपरा का प्रवर्त्तन किया। भ्रमरगीत का उद्‌गम श्रीमद्‌भागवत से हुआ। सूरदास ने तीनों भ्रमरगीतों की रचना की। प्रथम भ्रमरगीत भागवत के भ्रमरगीत का अनुवाद मात्र है। यह "दोहा, चौपाई, सार छंद में रचित है।" अतः इसमें कोई उल्लेखनीय प्रवृत्ति दिखाई नहीं देती। दूसरे भ्रमरगीत का केवल एक ही पद लिखा गया जिसमें उद्धव गोपियों को उपदेश देता है। गोपियां उसे उपालम्भ देती हैं और वह मथुरा लौट कर श्रीकृष्ण के समक्ष गोपियों की विरह व्यथा का वर्णन करता है और जिसे सुनकर श्रीकृष्ण मूर्छित हो जाते हैं। तृतीय भ्रमरगीत 'सूरसागर' का महत्वपूर्ण अंश है। इसमें कवि ने भागवतकार की कल्पना को साहित्यिक जामा पहनाया है। तृतीय भ्रमरगीत में सूर भ्रमरगीत के माध्यम से श्रीकृष्ण तथा उद्धव को खरी–खोटी सुनाते हैं। अंत में उद्धव के ज्ञानयोग तथा निर्गुण भक्ति की पराजय होती है। अतः सूर के भ्रमरगीत में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को श्रेष्ठ सिद्ध किया गया है। भागवत पुराण के भ्रमरगीत और सूरदास के भ्रमरगीत में काफी बड़ा अन्तर है। श्रीकृष्ण के प्रति गोपियों के अनन्य प्रेम को दर्शाने के लिए भ्रमरगीत को काफी विस्तार दे दिया है।

सूर कृत 'भ्रमरगीत' में 'भ्रमर' शब्द मुख्य रूप से तीन अर्थों—श्रीकृष्ण, उद्धव तथा भंवर के लिए प्रयुक्त हुआ है। अपने एकनिष्ठ श्रीकृष्ण प्रेम को दर्शाने के लिए 'सूरकाव्य' की गोपियां भंवरे के माध्यम से उद्धव को खरी–खोटी सुनाती है। उन्हें लगता है कि कि उनके पास श्रीकृष्ण रूपी जो मूलधन था, उसे तो अक्रूरजी अपने साथ ले गए हैं, जबकि यह उद्धव उस मूलधन पर लगे ब्याज को (श्रीकृष्ण की यादों को) वसूलने आया है —

ताकौ कहा परेख कीजै, जानत छाद न दूधौ।
सूर मूर अक्रूर गयौ लै, ब्याज निबेरत ऊधौ।।

इसी प्रकार सूर के भ्रमरगीत में कभी गोपियां भ्रमर के माध्यम से श्रीकृष्ण की लम्पटता पर व्यंग्य करती हैं और कहती हैं कि हे भ्रमर! प्रेम करके तो अब हम पछताती हैं। हमने तो सोचा था कि हमारी प्रेम–रीति का ऐसे ही निर्वाह होता रहेगा, परंतु हमें क्या पता था कि श्रीकृष्ण ने अपने में कुछ और ही विचार कर रखा है। अब उस मीठी वाणी वाले मोहन की बातों का कौन विश्वास करेगा ? वह हमें तो योग–साधना का संदेश लिखकर भेजता है, जबकि स्वयं राजधानी मथुरा में भोग–विलास करता है, यथा —

मधुकर प्रीति किये पछितानी।
हम जानी ऐसैहि निबहैगी, उन कछु औरै ठानी।
वा मोहन कौ कौन पतीजै, बोलत मधुरी बानी।

हमकौ लिखि लिखि जोग पठावत, आपु करत रजधानी।
सूनी सेज सुहाइ न हरि बिनु, जागति रैनि बिहानी।
तब तै गवन कियौ मधुवन कौ नैनति बरषत पानी।
कहियौ जाइ स्याम सुंदर कौ, अन्तरगत की जानी।
सूरदास प्रभु मिले के बिछुरै, तातै भई दिवानी।

सूरदास के 'भ्रमरगीत' में विरहिणी गोपियां कुब्जा को भी लक्षित करके अपनी विरह–वेदना को प्रकट करती हैं क्योंकि उसी ने मथुरा में श्रीकृष्ण को अपने प्रेम–पाश में बांध रखा है, यथा –

हम अहीरि अतनी का जौ, कुबिजा सौ संजोग।
सूर सुबैद कहा लै लीजै, कहै न जानै रोग।

चूंकि उद्धव इस उद्देश्य से ब्रजमंडल में आए हैं कि वे गोपियों को निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने तथा श्रीकृष्ण को भूल जाने के लिए सहमत कर सकें परंतु उन विरहिणी गोपियों के पास तो श्रीकृष्ण की यादों रूपी पूंजी ही शेष है, फिर भला वे अपनी इस अनमोल पूंजी को त्यागकर उद्धव के ज्ञान, योग–साधना के साथ–साथ निर्गुण ब्रह्म पर भी व्यंग्य न करें तो क्या करें? तभी तो उद्धव को उपहास उड़ाते हुए पूछती हैं कि तुम्हारा निर्गुण ब्रह्म किस देश का निवासी है, वहां कहां रहता है। उसके माता–पिता कौन हैं, यथा –

निरगुन कौन देस को वासी ?
मधुकर कहि समुझाइ सौह दै, बूझाति सांचि न हांसी।
को है जनक, कौन है जननी, कौन नारि, को दासी ?
कैसे बरन भेष है कैसो, किहि रस में अभिलाषी ?
पावैगो पुनि कियो आपनो, जो रे करैगो गांसी।
सुनत मौन हैं रह्यो बावरौ, सूर सबै मति नासी।।

तो कभी वे उद्धव के निर्गुण ब्रह्म को मूली के पत्ते, निबौली के समान तुच्छ व व्यर्थ बताती हैं और वे अपने सगुण ब्रह्म श्रीकृष्ण को मोतियों, अंगूर के समान मूल्यवान बताती हैं, यथा –

"जोग ठगौरी ब्रज न बिकैहै।
मूरी के पातनि के बदले, को मुक्ताहल दैहे।
यह व्यापार तुम्हारौ ऊधौ, ऐसे, ही धरयो रैहे।
जिन पै तै लै आए ऊधौ, तिनहि के पेट समैहै।
दाख छांड़ि जै कटुक निबौरी, को अपने मुख खैहै।
गुन करि मोही सूर सांवरै, को निरगुन निरबैहै।।"

सूरदास के भ्रमरगीत की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि गोपियां एक ओर तो निष्ठुर प्रेमी श्रीकृष्ण को उपालम्भ देती हैं कि पहले तो उन्होंने किसी शिकारी की भांति उन्हें चिड़िया मानकर तथा प्रेम रूपी चुग्गा डालकर फंसाया और फिर हमारे साथ बधिक की तरह दुर्व्यवहार किया–

टिप्पणी

प्रीति कर दीन्ही गरे छुरी।
जैसे बधिक चुगाय कपट–कन पाछे करत बुरी।

तो कभी वे उनके समस्त अवगुणों को नकार उनके प्रति अनन्य प्रेम को प्रकट करती हैं, यथा–

नंद–नंदन सौ इतनी कहियौ।
जदपि ब्रज बनाथ करि डारयौ, तद्यपि सुरति किये चित रहियौ।
तिनका तौर करहु जनि हम सौ, एक बास की लाज निबहियौ।
गुन औगुननि दोष नहि कीजतु, हम दासिनी की इतनी सहियौ।
तुम बिनु प्रान कहा हम करिहे, यह अवलंब न सुपनेहु लहियौ।
सूरदास पाती लिखी पठई, जहां प्रीति तहं ओर निबहियौ।

सूरदास एक सोद्देश्य कलाकार थे। उन्होंने 'सूरसागर', 'साहित्य लहरी' तथा 'सूरसारावली' तीन काव्य कृतियों की रचना की। प्रत्येक रचना के पीछे कवि का कोई–न–कोई उद्देश्य अवश्य रहा है। 'भ्रमरगीत' का आधार श्रीमद्भागवत है। सूरदास ने हिंदी साहित्य में भ्रमरगीत प्रसंग को आधार बनाकर निर्गुण तथा निराकार भक्ति की अपेक्षा सगुण तथा साकार भक्ति को श्रेष्ठ सिद्ध कर दिखाया। अतः हिंदी में भ्रमरगीत परंपरा का उद्भव सूरदास के भ्रमरगींत का अनुवाद मात्र है। इसमें दौहा, चौपाई तथा सार दोहा छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसमें न तो विशेष मान्यता है और न ही ज्ञान वैराग्य की चर्चा। दूसरे भ्रमरगीत में केवल एक ही पद लिखा गया। इसमें उद्धव गोपियों को उपदेश देते हैं तथा गोपियां उसे उपालम्भ देती हैं और उद्धव मथुरा लौटकर श्रीकृष्ण के समक्ष गोपियों की विरह व्यथा का वर्णन करता है जिसे सुनकर श्रीकृष्ण मूर्च्छित हो जाते हैं। यह सब एक ही छंद में वर्णित है। सूर का तीसरा भ्रमरगीत सूरसागर का महत्वपूर्ण अंश माना गया है। यह सूरसागर के 4078वें पद से लेकर 4710वें पद तक चलता है। सूरदास ने अपने भ्रमरगीत में भागवत् की कल्पना को संपूर्ण काव्य का रूप दिया है। उसमें कथ्य एवं भाव का क्रमबद्ध संयोजन है। तीसरे 'भ्रमरगीत' में सूरदास भ्रमर के माध्यम से श्रीकृष्ण और उद्धव को गोपियों के मन में भरे उपालम्भ देते हैं। अंत में उद्धव के ज्ञान योग और निर्गुणोपासना की पराजय होती है और गोपियों के सगुणोपासना की विजय होती है। सूर ने 'भ्रमरगीत' का उद्देश्य परंपरानुसार ग्रहण कर अपनी अद्‌भुत प्रतिभा का परिचय दिया है। सूर के युग में साकार तथा निराकार की उपासना का भीषण द्वंद्व चल रहा था जिसका अंत करके सूरदास ने साकारोपासना का प्रतिपादन किया। सूर के 'भ्रमरगीत' में ज्ञान की अपेक्षा भक्ति को श्रेष्ठ सिद्ध किया गया है।

सूरदास भक्तिकालीन कृष्ण काव्यधारा के श्रेष्ठ कवि हैं। भक्तियुगीन साहित्य का मूल उद्देश्य भक्ति की प्रतिष्ठा स्थापित करना है और सूरदास ने भी भ्रमरगीत में भक्ति की ही प्रतिष्ठा की है। परंतु इतना कहना मात्र ही पर्याप्त नहीं हैं सत्य तो यह है कि उन्होंने ज्ञान तथा योग पर भक्ति की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है और इस उद्देश्य की पूर्ति में सूरदास को पूर्ण सफलता प्राप्त हुई है। अन्य शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि सूर

के सामने तत्कालीन विभिन्न प्रकार की कठिन साधना पद्धतियां थीं और कवि को उन्हें सारहीन सिद्ध करना था। साथ ही भक्ति के राजमार्ग की प्रतिष्ठा भी स्थापित करनी थी। भ्रमरगीत में दो पक्ष उभरकर आते हैं। पहला पक्ष उद्धव का है और दूसरा गोपियों का। उद्धव ज्ञान योग के पक्षधर हैं और वे निर्गुण ब्रह्म की उपासना पर बार–बार बल देते हैं। श्रीकृष्ण ने मजबूर होकर उद्धव को इसीलिए ब्रज भेजा ताकि वह अपने निर्गुण ब्रह्म की सारहीनता को प्रत्यक्ष रूप से जान सकें। दूसरी ओर गोपियां श्रीकृष्ण से सच्चा प्रेम करती हैं। वे उनको ईश्वर का अवतार मानकर उनसे प्रेम करती हैं। गोपियों का भक्ति का राजमार्ग सीधा–सादा और सरल है परंतु उद्धव कठिन योग साधना की चर्चा करता है जो कि तत्कालीन भयंकर व्रतधारियों तथा वामाचारों का खोखला हठयोग है। सूरदास ने भ्रमरगीत में इसी योग साधना का डटकर विरोध किया।

1.6.4 भ्रमरगीत में सहृदयता और भावुकता

सूरदास पुष्टि–मार्गी कवियों में प्रमुख कवि हैं। पुष्टिमार्ग से दीक्षा लेने से पहले वे दास्य भाव के पद गाया करते थे, परंतु स्वामी वल्लभाचार्य से प्रेरणा लेकर वे माधुर्य भक्ति के पदों की रचना करने लगे। उन्होंने पुष्टिमार्ग के सिद्धांतों के अनुसार श्रीकृष्ण की बाल–लीला तथा प्रेमलीला का व्यापक चित्रण किया। बाल–लीला का वर्णन करते समय सूरदास ने एक माता रूप में बालक कृष्ण की क्रीड़ाओं का वर्णन किया जो यह स्पष्ट करता है कि वे निश्चय ही सहृदय और भावुक कवि थे और बाल वर्णन करने के लिए सहृदय और भावुक हृदय का होना नितांत आवश्यक है। यहां हम सूरदास के काव्य में सहृदयता तथा भावुकता के साथ–साथ उनकी वाग्विदग्धता का भी वर्णन करेंगे–

(क) **सूर के काव्य में सहृदयता और भावुकता**–सूरदास ने बालक कृष्ण की बालोचित भंगिमाओं तथा चेष्टाओं का स्वाभाविक एवं सजीव चित्रण किया है। बालक कृष्ण जितने चंचल हैं, उतनी ही उनकी क्रीड़ाएं मनमोहक और आकर्षक हैं। परंतु सूरदास की सहृहयता बाल क्रीड़ाओं को अत्यधिक सहज और सजीव बना देती है। उदाहरण के लिए यशोदा कन्हैया को पालने में झुला रही है। वह दुलार करती हुई लोरी गाती है ताकि वह सो जाए, जब कृष्ण अपनी पलकों को मूंद लेते हैं तब यशोदा संकेत करके सभी को चुप हो जाने को कहती हैं। वह नहीं चाहती थी कि बालक कृष्ण कच्ची नींद से जग जाए।

जसोदा हरि पालै झुलावै।
हलंरावै, दुलरावै, मल्हावै, जोइ–सोइ कछु गावै।

श्री कृष्ण के बाल रूप का वर्णन करने में कवि ने अपना सारा वात्सल्य उड़ेल कर रख दिया है। यद्यपि वे बालक कृष्ण के विलक्षण सौंदर्य का वर्णन खुले हृदय से करते हैं, परंतु फिर भी उन्हें लगता है कि कुछ कहना शेष रह गया है।

कवि ने सूरसागर में बाल गोपाल की क्रीड़ा के ऐसे सुंदर चित्र अंकित किए हैं कि अनेक विद्वानों को यह शंका होने लगती है कि वे अंधे थे। उन्होंने अपने काव्य में

टिप्पणी

बालक कृष्ण के जितने चित्र अंकित किए हैं वह उनके सहृदय के परिचायक हैं। उनके काव्य में कहीं तो बालक कृष्ण पांव के अंगूठे को मुंह में रखकर क्रीड़ा करते हैं, कहीं मुख पर दही का लेप करके तथा कहीं हाथ में वनीत लिए हुए घुटनों के बल चलते हैं।

कवि ने कृष्ण के शैशवकाल से लेकर उनकी किशोरावस्था तक का वर्णन बड़ी सहृदयता पूर्वक किया है। सूरदास बाल मनोविज्ञान से पूर्णतः परिचित थे। वे इस तथ्य को भली प्रकार जानते थे कि बच्चों में जिज्ञासा की भावना सहज रूप से होती है। इसी भाव का वर्णन करते हुए कवि कृष्ण के मुख से कहलवाता है। सत्य तो यह है कि तू मुझे माखन रोटी नहीं देना चाहती।

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी?
किती बार मोहिं दूध पियत भई, यह अजहुं है छोटी।
तू जो कहति बल की बेनी ज्यों है है लांबी–मोटी।

सूरदास ने बाल चेष्टाओं के बड़े स्वाभाविक, मनोहारी तथा पाठक के हृदय को भावुक बनाने वाले चित्र अंकित किए हैं। लगता है कि माता यशोदा के हृदय के साथ कवि के हृदय का पूर्णतः तादात्म्य हो गया था। ऐसा लगता है कि कवि ने एक ममतामयी माता का हृदय प्राप्त किया है। वे बालक कृष्ण की क्रीड़ाओं को देखकर न केवल प्रसन्न होते हैं, बल्कि आनंद भी प्राप्त करने लगते हैं। एक स्थल पर कवि अपनी भावुकता को व्यक्त करते हुए कहता है–

हरि अपने आंगन कछु गावत।
तनक तनक चरननि सो नाचत मनहिं मनहिं रिझावत।।
बाहं ऊंठाए काजरी–धौरि गैयनि टेरि बुलावत।
कबहुंक बाबा नंद बुलावत कबहुंक घर में आवत।।

सूर के काव्य में यह सहृदयता और भावुकता केवल संयोग वात्सल्य में ही नहीं देखी जा सकती है, बल्कि वियोग वात्सल्य में भी देखी जा सकती है। संयोग वात्सल्य में कवि ने कृष्ण के बाल–सौंदर्य का और बाल लीलाओं का वर्णन किया है। इसके साथ–साथ कवि बाल मनोभावों तथा बाल अंतः प्रकृति का भी वर्णन करता है। एक उदाहरण देखिए–

"मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीनो, तेहि जसुमति कब जायौ
कहा कहौ एहे रिस के मारें, खेलन हौं नहिं जात।
पुनि–पुनि कहत कौन है माता, को है तुम्हरे तात।"

वात्सल्य के वियोग के अंतर्गत भी कवि ने अपनी सहजता और भावुकता का सहज परिचय दिया है। जब कृष्ण मथुरा गमन करते हैं तो उस समय ऐसा लगता है मानो सूरदास स्वयं यशोदा के रूप में अपनी आंखों से आंसू बहा रहे हैं। उनके

टिप्पणी

प्रत्येक शब्द से वात्सल्य का स्रोत उमड़ रहा है। जब यशोदा माता का रोम–रोम पुकार कर यह कहता है ऐसा कौन ब्रज में हमारा हितैषी है जो कृष्ण को जाने से रोक सके। तब पाठक का हृदय भी भावुक हो उठता है और उसकी आंखों में भी आंसू भर जाते हैं।

इसके बाद कवि ने कृष्ण की किशोरावस्था का वर्णन किया है। अब कृष्ण राधा तथा गोपियों के साथ प्रेम लीलाएं करने लगते हैं। संयोग श्रृंगार के अंतर्गत कवि ने राधा–कृष्ण प्रेम के बड़े ही भावुक वर्णन प्रस्तुत किए हैं। सूरदास ने श्रीकृष्ण तथा राधा और गोपियों की परस्पर छेड़छाड़, हास परिहास, प्रेम तथा प्रेम क्रीड़ाओं का बड़ा ही मनोहारी वर्णन किया है। उदाहरण के रूप में जब कृष्ण और भोली राधा का आमना–सामना होता है तो रसिक शिरोमणि ने राधा को अपनी ओर आसक्त कर लिया।

"बूझत श्याम, कौन तू गोरी।
कहां रहति, काकी है बेटी देखी नहीं कहूं ब्रज–खोरी।
काहे कौ हम ब्रज–तन आवति, खेलति रहति अपनी पौरी।"

राधा–कृष्ण के प्रथम मिलन के पश्चात् दोनों में प्रेम पल्लवित होने लगता है। राधा कृष्ण से मिलने के लिए बहाने खोजने लगती है। गाय को दुहते हुए श्रीकृष्ण राधा के साथ छेड़खानी करते हैं, दोनों एकांत में मिलते हैं और एक–दूसरे को स्पर्श करते हैं। कवि ने दान–लीला, मान–लीला, रास–लीला आदि प्रसंगों के अंतर्गत राधा–कृष्ण की और कृष्ण–गोपियों की प्रेम लीलाओं का बड़ा ही सुखद वर्णन किया है। रास–लीला का एक सुंदर उदाहरण देखिए–

"मानो माई घन–घन अन्तर दामिनि।
घन दामिनि दामिनि घन अंतर सोभित हरि ब्रज भामिनि।
जमुन पुलिस मल्लिका मनोहर, सरद सुहाई जामिनि।
सुंदर ससि गुण रूप राग निधि, अंग अंग अभिरामिनि।

(ख) **वाग्वैदग्ध्य**–वाग्वैदग्ध्य का शाब्दिक अर्थ होता है–बात करने में चतुराई अर्थात् जब किसी भाव को अलग–अलग ढंग से प्रस्तुत किया जाए और हर बार उस भाव का सही सम्प्रेषण हो, तब वहां वाग्वैदग्ध्य होता है। वस्तुतः जब कोई वक्ता या रचनाकार भावहीन शब्द क्रीड़ा करता है, सब वह चमत्कारवाद की ओर अग्रसर होता है, जबकि भावपूरित शब्द कौशल उसे भाव–प्रेरित वचन वक्रता की ओर ले जाता है।

'भ्रमरगीत' में सूर के वाग्वैदग्ध्य की सभी विद्वानों ने भूरि–भूरि प्रशंसा की है। 'भ्रमरगीत' में जो सरसता दिखाई देती है, उसके मूल में वैदग्ध्यपूर्ण कथन शैली का वैशिष्ट्य है। भाव प्रेरित यह वैदग्ध्य गोपियों की तीव्र विरहानुभूति की व्यजंना करता है।

टिप्पणी

सूरदास की वक्रोक्तियां हिंदी साहित्य की अनूठी संपत्ति है। इसी को हम वाग्वैदग्ध्य भी कह सकते हैं– विरह–व्यथित गोपियां उद्धव को बार–बार उपालंभ देती हैं। वे निर्गुण के संदेश को सुनना नहीं चाहता क्योंकि वह सगुण प्रेम भक्ति की पक्षधर हैं। गोपियां नंददास की गोपियों के समान शास्त्रार्थ नहीं करती बल्कि वे अपनी विवशता का प्रदर्शन करती हैं। वे उद्धव को उपालम्भ देती हुई कहती हैं कि हमने जितने संदेश भेजे हैं, उनसे मथुरा के सब कुएं भर गए होंगे, परंतु वहां से कोई उत्तर नहीं आया।

जब गोपियां श्रीकृष्ण या मथुरा के लोगों के प्रति उपालंभ व्यक्त करती हैं तब वे कुब्जा को खास तौर से निशाना बनाती हैं। श्रीकृष्ण के प्रेम की पूंजी उनके हाथों से निकल गई है। इसलिए वे कृष्ण को कपटी, प्रवंचक और लम्पट कहने से नहीं चूकतीं। यहां गोपियों की वचनवक्रता दर्शनीय है, क्योंकि वह भाव प्रेरित वक्रता उनके हृदय से प्रकट हुई है। इसलिए वे कहती हैं कि कुब्जा ने अच्छा किया जो कपटी कृष्ण को अपने प्रेम का शिकार बना लिया।

ब्रज की गोपियों को सभी मथुरावासियों के तन–मन काले प्रतीत होते हैं। इस संदर्भ में वे श्रीकृष्ण, अक्रूर और यहां तक कि भ्रमर को भी माफ नहीं करती। उन्हें लगता है कि मथुरा से आने वाला प्रत्येक व्यक्ति काले हृदय का है। निम्नलिखित पद में गोपियों का वाग्वैदग्ध्य बड़ा ही सजीव प्रभावशाली बन पड़ा है। यहां कवि ने गोपियों के एकनिष्ठ तथा अनन्य प्रेम का सुंदर चित्रण किया है–

बिलग जनि मानौ ऊधौ कारे।

वह मथुरा काजर की ओवरि, जे आवै ते कारे।

तुम कारे सुफलक सुत कारे कारे कुटिल भंवारे।

भ्रमरगीत की गोपियां उद्धव को अपने वाग्वैदग्ध्य का भी शिकार बनाती हैं। उद्धव गोपियों को योग साधना, वैराग्य तथा निर्गुण ब्रह्म का संदेश देने के लिए ब्रज में आया है। वह गोपियों के संकेत को न समझकर अपनी धुन में मस्त रहता है और बार–बार निर्गुण ब्रह्म योग साधना की बातें करता है। गोपियां एक–एक करके उद्धव के निर्गुण ब्रह्म का उपहास उड़ाती हैं और उसके ज्ञान गर्व को चूर–चूर कर देती हैं। वस्तुतः गोपियां वाक्वैदिग्धता में अत्यंत निपुण हैं। इसलिए एक स्थल पर वे कहती हैं–

आए जोग सिखावन पांडे।

परमारथी पुराननि लादे ज्यों बनजारे टांड़े।।

हमरी गति पति कमलनयन की जोग सिखै ते रांडे।

कहो, मथुरा, कैसे समायेंगे एक ग्यान दो खांडे।।

उद्धव कृष्ण के सखा हैं। प्रियतम का सखा होने के कारण वह गोपियों को प्रिय और अनोखा लग रहा है इसलिए वे उसके साथ–साथ बीच में परिहास करती हैं

टिप्पणी

और कभी–कभी करारे व्यंग्य करती हैं। गोपियों के वचन सीधे हैं परंतु उनके कहने का ढंग टेढ़ा है। वे उद्धव से कहती हैं कि अब हमने अच्छी प्रकार समझ लिया है कि तुम कैसे ज्ञानी हो। जैसे कृष्ण राजा बन गए हैं वैसे हमने ज्ञानी होने का स्वांग धारण कर लिया है। अहीर का छोकरा राजाओं जैसी बातें करने की कोशिश करता है और तुम भी उसी के अनाड़ी मित्र हो, लेकिन फिर भी गोपियां अपनी प्रेम की उदारता को व्यंजित होकर कह उठती हैं–

ऊधो! जाहु वांह धररि लावौ सुंदर स्याम पियारो।
ब्याहैं लाख धरै दस कुबरी, अंतहु कान्ह हमारो।।

गोपियों को उद्धव का संदेश अच्छा नहीं लगता परंतु वह अपनी बात को विनोद का पुट देकर व्यक्त करती हैं। इसलिए वे कहती भी हैं– *"उद्धव! भली करी तुम आए"* वस्तुतः गोपियां कृष्ण से अत्यधिक रुष्ट हैं और उद्धव भी उसी का सखा है इसलिए वे उसको घोर कपटी भी कह जाती हैं। गोपियों की वचन–भंगिमा देखिए–

मधुकर! जानत है सब कोऊ।
जैसे तुम और मीत तुम्हारे, गुननि निपुन हो दोऊ।
पाके चोर, हृदय के कपटी, तुम कारे औ दोऊ।।

भ्रमरगीत में गोपियों ने कुब्जा को लक्ष्य करके भी अपने वाग्वैदग्ध्य का परिचय दिया है। जब उद्धव ब्रज आते हैं तो कुब्जा उनसे अपना संदेश गोपियों को सुनाने के लिए कहती है। वह उनको याद दिलाती है कि उन्होंने ही कृष्ण को रस्सी के द्वारा ऊखल से बांधा था, उन्हें माखन चोरी के लिए प्रताड़ित किया और सवेरे–सवेरे गाय चराने के लिए वन में भेजा। इसलिए अब उनको कृष्ण के वियोग में व्याकुल नहीं होना चाहिए। फलतः गोपियां एक ओर तो कुब्जा के कुबड़पन व दासत्व पर व्यंग्य करती हैं तो दूसरी ओर श्रीकृष्ण का संदेश सुनकर गोपियों का यह नहीं लगता कि यह संदेश कृष्ण ने ही दिया होगा। वे तो सोचती हैं कि इस संदेश के पीछे निश्चय ही कुटिल बुद्धि वाली कुब्जा की कोई चाल है। अतः वे कहती हैं कि उनके प्रियतम कृष्ण तो कुब्जा के हाथों बिक गए हैं और उसी के संकेतों पर चलते हैं।

अब लौं कहा रहे हौ ऊधौ, लिखि–लिखि जोग पठायो।
सूरदास हम कहै परेखौ, कुबरी हाथ बिकायौ।

इतना ही नहीं, गोपियों की दृष्टि में तो कुब्जा ऐसे चंचल स्वभाव वाली स्त्री है, जिनका मन किसी भी व्यक्ति पर आसक्त हो जाता है। अगले ही क्षण वह किसी दूसरे पर आसक्त हो जाती है। यहां गोपियां उद्धव के ज्ञान व योग साधना के उपदेश को ऐसी चंचल युवती के लिए उपयुक्त मानते हुए कहती है जिसका मन स्थिर नहीं है। अतः वे उसे कहती हैं–तुम अपना यह उपदेश कुब्जा को जाकर

कह दो, हम गोपियां तो हारिल पक्षी के समान हैं और अपने मन में सदैव श्रीकृष्ण (लकड़ी का टुकड़ा) को पकड़े रहती है।

टिप्पणी

गोपियों को यह जानकर खुशी होती है कि उनके साथ छल–कपट करने वाले कृष्ण को कुब्जा ने छल लिया और उस दासी ने सभी गोपियों का बदला ले लिया। इससे स्पष्ट होता है कि गोपियों की दृष्टि में कुब्जा कुटिल बुद्धि वाली युवती है। एक स्थल पर गोपियां एक ही कथन से कुब्जा तथा कृष्ण दोनों की कुटिलता पर दोहरे व्यंग्य का प्रहार करती हैं–

दूत हाथ उन लिखि जु पठायौ, ज्ञान कह्यौ गीता को।
तिनको कहा परेखी कीजै, कुबिजा के मीता कौ।

जब गोपियां बहुत खीझ उठती हैं तब वे कृष्ण के प्रति स्नेह के कारण मनोहारी वचन कहती हैं लेकिन इसमें भी विनोदशीलता उत्पन्न हो जाती है। फिर भी गोपियां उपालंभ देने में चूकती नहीं और प्रिय की उपेक्षा पर व्यंग्य करती चली जाती हैं। गोपियों के विनोद व्यंग्य बड़े तीखे, मार्मिक तथा चुभने वाले हैं।

संक्षेप में हम कह सकते हैं कि सूरदास के काव्य में जितनी सहृदयता और भावुकता है प्रायः उतनी ही वाग्विदग्धता भी है। सूरसागर में ऐसे अनेक स्थल हैं जहां पर भावुकता और वाग्वैदग्ध्यता का वर्णन करते हैं तो भ्रमरगीत में सहृदयता और वाग्वैदग्ध्य दोनों का वर्णन करते हैं।

1.6.5 सूरदास द्वारा रचित भ्रमरगीत की प्रासंगिकता

भ्रमरगीत शब्द 'भ्रमर' तथा 'गीत' दो शब्दों के मेल से बना है। इसका प्रथम शब्द भ्रमर विशेष महत्व रखता है। इसे 'भंवरा' भी कहा जा सकता है। भ्रमर अथवा भंवर रस का लोभी तथा प्रेम प्रवंचक रसिक व्यक्ति का प्रतीक माना गया है। भ्रमर कभी किसी एक कली या पुष्प का रसपान करके तृप्त नहीं होता। उसका स्वभाव बड़ा चंचल होता है इसलिए वह फूलों पर मंडराता रहता है। वह किसी एक फूल पर टिक कर नहीं बैठता। हमारे समाज में कुछ पुरुष भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति के होते हैं। वे किसी एक नारी के होकर नहीं बैठ सकते। इसका कारण यह है कि हमारा समाज पुरुष प्रधान है। परंतु आरंभ में ऐसा नहीं था। वैदिक काल में भारतीय समाज में नारी को पुरुष के बराबर ही अधिकार प्राप्त थे। वह समाज एवं सामाजिक कार्यों में पुरुषों के समान ही सहभागी मानी जाती थी, परंतु कालांतर में ज्यों–ज्यों समाज में पुरुष का वर्चस्व बढ़ने लगा और वह अपनी शारीरिक शक्ति के बल पर अधिकाधिक अधिकारों को अपने हाथों में लेने लगा, त्यों–त्यों वह स्त्री या नारी को घर की चहारदीवारी में कैद करता गया। इस प्रकार अब नारी शिक्षा प्राप्त करने के अधिकारों से भी वंचित की जाने लगी। फलतः परिणाम यह निकला कि अशिक्षित व घर की चहारदीवारी में कैद नारी पुरुष के हाथों की कठपुतली बन गई। अब वह पुरुष पर आश्रित रहने लगी। शनैः शनैः पुरुष अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने लगा और नारी को मात्र भोग–विलास की वस्तु मानना आरंभ कर दिया। समाज के शक्तिशाली व धनाढ्य वर्ग के पुरुष अब अपनी काम–लिप्सा के लिए अधिक से अधिक नारियों के साथ विलास करने का

टिप्पणी

प्रयास करने लगे। पुरुष का नारी के प्रति कोई सम्मान न रहा। इस प्रकार पुरुष शोषक बन गया और नारी शोषित बनकर रह गई। पुरुष का यह प्रयास रहने लगा कि किसी तरह नारी को अपने प्रेम–पाश में बांध लें, ताकि उसके साथ काम–केलि का भरपूर अवसर मिले। एक नारी के साथ काम–केलि करने के बाद वही पुरुष भ्रमर की भांति दूसरी नारी के सौंदर्य का आस्वादन करने के लिए आगे बढ़ जाता है। सहृदय कवि की मर्म भेदी आंखों से यह तथ्य छिपा न रह सका। अतः उसने ऐसे कामी एवं लोलुप पुरुष के मनोभावों, कामासक्ति आदि का प्रतीकात्मक वर्णन करने के लिए भ्रमर या भंवरे को साधन बनाया। ऐसे रस के मर्मज्ञ कवियों ने पुष्प के समान सुकोमल देह नारी के हृदय में पल्लवित प्रेम का परित्याग करके पुरुष को जब अन्य रमणी के साथ काम–क्रीड़ा करते देखा तो उसे 'भ्रमर' कहकर संबोधित किया। इस प्रकार कवि ने पुरुष की प्रवंचकता तथा सुकोमल नारी की विरह–व्यथा से भरे अपने गीत को 'भ्रमरगीत' नाम से अभिहित किया है।

दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि 'भ्रमरगीत' में प्रतीकात्मक शैली द्वारा पुरुष या नायक की निष्ठुरता, प्रवंचकता, लंपटता आदि और नारी की मूक व्यथा, विरह वेदना एवं उसके उपालंभ या उलाहने का अंकन किया गया है।

1.7 सूर के काव्य में वात्सल्य वर्णन और बाल मनोविज्ञान

'वात्सल्य' शब्द की उत्पत्ति 'वत्स' से हुई है तथा इस शब्द का प्रयोग संतान के लिए किया जाता है अथवा हम कह सकते हैं कि वत्स संतान स्नेह का याचक है। भारतीय ग्रंथों में संतान को माता–पिता की आत्मा का अंश कहा जाता है। दास्य और साख्य भाव के अतिरिक्त महाकवि सूरदास ने कृष्ण के प्रति वात्सल्य भाव की भक्ति का पर्याप्त चित्रण किया है। सूरदास से पहले नारद भक्ति सूत्र में कुछ पद वात्सल्य भक्ति से संबंधित मिलते हैं। सूरदास ने नन्द तथा यशोदा के माध्यम से वात्सल्य भाव की भक्ति को प्रकट किया है, बल्कि वात्सल्य भाव का वर्णन करने में सूरदास बेजोड़ कवि हैं।

इस प्रकार सूरदास ने वात्सल्य भाव के अन्तर्गत मातृ–हृदय का बड़ा ही स्वाभाविक और मर्मस्पर्शी चित्रण किया है। यह चित्रण पुष्टि–मार्गीय सम्प्रदाय के सर्वथा अनुकूल है। इस सन्दर्भ में हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा भी है–"अपने आप को मिटाकर, अपना सर्वस्व न्यौछावर करके जो तन्मयता प्राप्त होती है, वही श्रीकृष्ण की इस बाल लीला को संसार का अद्वितीय काव्य बनाए हुए है।" जिस प्रकार शृंगार के दो भेद माने गए हैं, उसी प्रकार वात्सल्य के दो भेद माने गए हैं –

(क) संयोग वात्सल्य

(ख) वियोग वात्सल्य

1.7.1 वात्सल्य का संयोग पक्ष

सूरदास वात्सल्य के प्रत्येक पक्ष के कुशल चितेरे हैं। कृष्ण के जन्म से लेकर उनके बाल सुलभ प्रत्येक करतब को सूर ने बड़ी कुशलता से चित्रित किया है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

13. हिंदी साहित्य में भ्रमरगीत परंपरा का श्रेय किस कवि को दिया जाता है?
14. सूर कृत 'भ्रमरगीत' में 'भ्रमर' शब्द मुख्य रूप से कितने अर्थों में प्रयुक्त हुआ है?
15. सूर द्वारा रचित काव्य कृतियों के नाम बताइए।
16. भक्तियुगीन साहित्य का मूल उद्देश्य क्या है?
17. भागवतपुराण में किसके लिए कोई स्थान नहीं है?
18. वाग्वैदग्ध्य का शाब्दिक अर्थ क्या है?

टिप्पणी

श्रीकृष्ण के जन्म का सामाचार पूरे ब्रज में फैल गया। नन्द बाबा व यशोदा मैया को बधाई देने और शिशु श्रीकृष्ण का सुंदर मुख देखने के लिए पूरा ब्रज उमड़ पड़ा। पुत्र के जन्मोत्सव पर नंद व यशोदा की प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं है। आज कोई भी ब्रजवासी अपने कार्य के लिए घर से दूर नहीं था, बल्कि सीधे ही नंद के घर जा पहुंचा। पूरे गोकुल में आनंद व प्रसन्नता का वातावरण है।

यथा–

द्वारै भीर, गोप–गोपनि की, महिमा बरनि न जाइ।
अति आनंद होत गोकुल मैं, रतन भूमि सब छाइ।
नाचत वृद्धि, तरुन अरु, बालक, गोरस कीच समाइ।

इसी प्रकार कवि ने बालक कृष्ण के जन्मोत्सव संस्कार का बड़ा ही प्रभावशाली वर्णन किया है। जब वासुदेव रात के समय श्रीकृष्ण को गोकुल ले जाकर प्रसव पीड़ा से थकित यशोदा मैया के निकट सुला देते हैं और उनकी पुत्री को उठाकर ले जाते हैं, तब सवेरा होने पर यशोदा मैया देखती है कि रात को उन्होंने पुत्र को जन्म दिया। अपने नवजात पुत्र को देखकर यशोदा मैया का हृदय गदगद हो गया। प्रसन्नता के मारे उनके मुख से बोल नहीं निकल रहा है। वे अपने पति नंद को बुलाने भेजती हैं। यथा –

जागी महरि, पुत्र मुख देख्यो, पुलिक अंग उनमें न समाई।
गदगद कंठ, बोल नहीं आवै, हरषवंत है, नंद बुलाई।

सूरदास ने श्री कृष्ण के न केवल जन्मोत्सव का सुंदर वर्णन किया है, बल्कि उनकी वर्षगांठ, कान छेदन, नामकरण आदि का भी वर्णन किया है। कृष्ण की प्रथम वर्षगांठ के अवसर पर माता यशोदा उत्साहपूर्वक अनेक कार्यक्रमों का आयोजन करती है। वह सब नारियों को बुला कर मंगल गान करना चाहती हैं और अपने आंगन को चंदन से लिपाई करके ओर उसमें मोतियों का चौक पूरना चाहती हैं। वह कहती भी हैं–

अरी मेरे लाल की आजु वरष गांठि सबै,
जिन कौ बुलाइ मंगल–गान करावौ।
चंदन आंगन लिपाइ मुतियन चौकैं पुराइ।
उमंग अंगनि आनंद सौं तूर बजावौ।

बालक श्रीकृष्ण की बाल–लीलाओं का वर्णन

रूप सौंदर्य के अतिरिक्त कवि ने कृष्ण की बाल–लीला का हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। संयोग वात्सल्य के अंतर्गत बालक कृष्ण की तुतलाती भाषा, घुटनों के बल चलना, धीरे–धीरे खड़ा होना, फिर गिरना, नंद को बाबा कहना, शरीर पर मिट्टी का लेप करना, मुख पर दही का लेप करना आदि न जाने कितनी बाल चेष्टाएं हैं जिनका वर्णन सूर ने बड़े मर्मस्पर्शी और स्वाभाविक रूप से किया है। संभवतः बाल विज्ञान के बड़े–बड़े विद्वान भी इस प्रकार का वर्णन नहीं कर पाएंगे।

टिप्पणी

संयोग वात्सल्य के वर्णन में कृष्ण की तुतलाती भाषा, घुटनों के बल चलना, धीरे–धीरे खड़ा होना फिर गिर पड़ना, नंद को बाबा कहना, शरीर पर धूल लपेटना, मुंह पर दही लगाना, ऐसी कितनी बाल–सुलभ चेष्टाएं हैं जो बाल मनोविज्ञान के वैज्ञानिकों को भी शायद अज्ञात हो। वात्सल्य भक्ति के चित्रण में सूर ने अनेक मौलिक उदाहरणों को जन्म दिया है।

सूरदास जी ने संयोग वात्सल्य भाव–परक पदों में भगवान श्रीकृष्ण को भी भक्त के साथ बाल–सुलभ क्रीड़ा करते दिखाया है। यद्यपि वे बीच–बीच में अपने परब्रह्म होने का संकेत भी देते हैं, परंतु उनकी माया व प्रेम के वशीभूत होकर भक्त उनके बाल–स्वरूप का ही स्मरण करता रहता है।

संयोग–वात्सल्य के भक्तिपरक पदों में कवि ने अपने आराध्य देव को अपने पुष्टि–मार्गी सम्प्रदाय के सिद्धांतों के अनुरूप ही आह्लादकारी चित्रित किया है। बालक श्रीकृष्ण का सौन्दर्य न केवल यशोदा के लिए बल्कि स्वयं कवि सूरदास के लिए भी आह्लादकारी है। तभी तो वे बाल रूप की छवि के निहारने का अवसर देने वाले एक क्षण के जीवन को सैकड़ों कल्पों के दीर्घ जीवन की तुलना में श्रेष्ठ मानते हैं।

बालकों की रुचि का कवि को कितना ज्ञान था वह निम्न उदाहरण से देखा जा सकता है–

"जशोदा हरि पालनै झुलावै।
हलरावै, दुलरावै, मल्हावै, जोई सोइ कछु गावै।
मेरे लाल कौं आउ निंदरिया काहे न आनि सुलावै।
तू काहै नहिं बेगहि आवै तोकौं कान्ह बुलावै।
कबहुं पलक हरि मूंदि लेत हैं कबहुं अधर फरकावै।
सोवत जानि मौन है कै रहि करि जसुमति फरकावै।
जो सुख सूर अमर मुनि दुर्लभ सो नंद भामिनि पावै।"

इसी प्रकार जब बाल कृष्ण पैरों के बल चलने लगते हैं तो यशोदा उसे देखकर आनंदित हो उठती हैं और नंद को यह दृश्य देखने के लिए बार–बार बुलाती हैं। जब कृष्ण चलते हैं तो उनके पैरों की पाजेब बजने लगती है और वे मन को हर लेती हैं।

धीरे–धीरे बाल कृष्ण तनिक बड़े होने लगते हैं। वे दूध पीने से मन चुराने लगते हैं तब यशोदा माता उसे चोटी बढ़ने का प्रलोभन देती हैं और कहती हैं कि यदि वह गाय का दूध पिएगा तो उसकी चोटी बड़ी हो जाएगी तब सब बच्चों में चोटी की अधिक शोभा होगी। यशोदा द्वारा फुसलाने पर कृष्ण दूध पीने लग जाते हैं परंतु जब वह अपने हाथों से चोटी टटोलते हैं तो वह बड़ी नहीं होती। तब कृष्ण यशोदा माता से कहते हैं–

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहिं दूध पिवत भई, यह अजहूं है छोटी।।
तू जो कहति बल के बैनी ज्यों, है है लांबी मोटी।
कांचौ दूध पियावत पचि–पचि, देत न माखन रोटी।।

कृष्ण द्वारा कही गई बातों को सुनकर यशोदा निरुत्तर हो गई। अतः उसे मजबूर होकर कृष्ण को उनकी प्रिय वस्तु माखन–रोटी देनी पड़ी। सूर द्वारा किया गया यह बाल वर्णन बड़ा ही स्वाभाविक और हृदयस्पर्शी बन पड़ा है। माखन–रोटी प्रसंग में तो कृष्ण का बुद्धि–चातुर्य देखते ही बनता है। कृष्ण अपने सखाओं को साथ लेकर जाते हैं। एक दिन संध्या के समय वह किसी गोपी के घर माखन चोरी के लिए घुसे। उन्होंने दही में हाथ डाला ही था कि उस गोपी ने आकर कृष्ण को जकड़ लिया । लेकिन कृष्ण घबराने वाले नहीं थे। उन्होंने उस गोपी से कहा मैं तो इसे अपना घर समझकर आया था। गोरस में जब मैंने चींटी देखी तो मैंने दधि भाजन में हाथ डाल दिया। गोपी उनकी चालाकी से प्रसन्न हो गई और उसे छोड़ दिया। एक बार कृष्ण अपने ही घर में माखन चोरी में पकड़े गए। उनके मुख में माखन लगा हुआ था। इससे स्पष्ट था कि उन्होंने माखन चुरा कर खाया था। परंतु माता यशोदा से सफाई देते हुए कहते हैं–

"मैया मैं नाहिं माखन खायौ।
ख्याल परे ये सखा सबै मिलि बरबस मुख लपटायौ।।
देखि तुहि छींके पर भाजन ऊँचे धरि लटकायौ।
तुही निरखि नान्हें कर अपने मैं कैसे करि पायौ।।
मुख दधि पोंछि कहत नंद नंदन दौना पीठि दुरायौ।
डारि सांटि मुसुकाई तबहिं गहि सुत को कंठ लगायौ।।

बाल मनोभावों तथा बाल–अन्तःप्रवृत्ति का वर्णन

बाल मनोभावों तथा बाल–अन्तःप्रवृत्तियों का चित्रण करने में सूरदास एक सिद्धहस्त कवि हैं। उन्होंने बालकों के हृदयगत मनोभावों, बुद्धि, स्पर्धा, खीझ आदि के बड़े हृदयग्राही चित्र अंकित किए हैं। एक वर्णन देखिए जिसमें बलराम ने कृष्ण को चिढ़ा दिया कि तू नंद और यशोदा का पुत्र नहीं है और तुम्हें तो मोल खरीदा गया है क्योंकि नंद, यशोदा दोनों गोरे हैं और तू काला है। इस पर कृष्ण के हृदय में खीझ उत्पन्न हो जाती है और वह यशोदा को शिकायत करते हुए कहते हैं–

"मैया मोहि दाऊ बहुत खिझायो।
मोसों कहत मोल को लीनो, तोहि जसुमति कब जायो।

इसी प्रकार गौदोहन और गौचारण के प्रसंग में कवि ने वात्सल्य भाव की बड़ी सुन्दर अभिव्यक्ति की है। पहले तो यशोदा कृष्ण को गौचारण के लिए जाने नहीं देती, वह कहती हैं कि हे कन्हैया! अभी तुम बहुत छोटे हो और तुम्हें बहुत सवेरे–सवेरे गऊ चराने के लिए जाना पड़ेगा। लेकिन कृष्ण अपने हठ पर अड़ जाता है। अन्ततः वह गौचारण के लिए वन में जाने लगता है तब यशोदा उसके छाछ का प्रबन्ध करने लगती है–

"जोरति छाक प्रेम सों मैया।
ग्वालन बोलि लए अधजेंवत उठि धाये दोउ भैया।

टिप्पणी

1.7.2 वात्सल्य का वियोग पक्ष

जब कृष्ण ब्रज से मथुरा चले जाते हैं, तब कवि ने वियोग वात्सल्य भाव की भक्ति का अवसर खोज निकाला है। कविवर सूरदास ने वियोग वात्सल्य भाव की भक्ति में यशोदा तथा नंद को कृष्ण के वियोग में अत्यधिक व्याकुल चित्रित किया है। कवि ने कुछ स्थलों पर वियोग वात्सल्य के पदों में दास्य भाव की भक्ति का मिश्रण कर दिया है। यशोदा को कृष्ण से बड़ा प्रेम था। वह पल भर के लिए भी अपने पुत्र से अलग होना नहीं चाहती। परंतु दुर्भाग्य से वह दिन भी आ गया जब अक्रूर श्रीकृष्ण को लेने के लिए आ गए। तब यशोदा विलाप करने लगी। नंद तो मथुरा वापिस लौट आए, परंतु कृष्ण को साथ नहीं लाए। वह नंद को धिक्कारने लगी और कहने लगी कि एक तो वह राजा दशरथ थे जिन्होंने पुत्र–वियोग में तड़प–तड़पकर प्राण गंवा दिए और एक तुम हो जो पुत्र को छोड़कर मुझे यहां बधाई देने आ गए हो।

कृष्ण की प्रिय वस्तुएं यशोदा के वात्सल्य भाव को अत्यधिक उद्दीप्त करती हैं, और वह इनको याद करके कहने लगती हैं–

"मेरे कुंवर कान्ह बिनु सब वैसे ही धरयौ रहै।
को उठि प्राप्त होत, लै माखन को कर नेत गहै।

मथुरा लौटते हुए उद्दव से यशोदा कह रही है–

"संदेसों देवकी सौं कहियौ।
हौ तौ धाय तिहारे सुत की कृपा करति ही रहियौ।

सूरदास ने वात्सल्य के संयोग पक्ष के साथ–साथ उसके वियोग पक्ष का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। वियोग वात्सल्य की प्रथम स्थिति तब उत्पन्न होती है जब कृष्ण मथुरा गमन करते हैं। उस समय ऐसा लगता है कि सूरदास स्वयं यशोदा के रूप में अपनी आंखों से आंसू बहा रहे हैं। उनके प्रत्येक शब्द से वात्सल्य का स्रोत उमड़ रहा है। इस अवसर पर माता का रोम–रोम पुकार कर कह उठता है–

"यशोदा बार–बार यों भाखै।
है कोई ब्रज में हितू हमारौ, चलत गोपालहिं राखै।

परंतु यशोदा की बात को कोई नहीं सुनता और कृष्ण मां की पुकार सुनकर भी नहीं रुकते। फलस्वरूप यशोदा का वियोगजन्य हृदय वात्सल्य के प्रबल वेग को सहन नहीं कर पाता। वह कटे वृक्ष के समान पछाड़ खाकर भूमि पर गिर पड़ती है।

कृष्ण के नंद बाबा भी मथुरा जाते हैं लेकिन वे कृष्ण को मथुरा छोड़कर अकेले वापिस लौट आते हैं। माता यशोदा उन्हें अकेला देखकर क्रोध के मारे व्याकुल हो उठती हैं। उस समय तो यशोदा माता के हृदय से वात्सल्य की असंख्य धाराएं फूट पड़ती हैं और वह व्यथित होकर अपने पति नंद को फटकारती हुई कहती हैं–

"जसुदा कान्ह–कान्ह कै बूझै।
फूटि न गई तुम्हारी चारों कैसे मारग सूझै।

परंतु यशोदा को इतने से संतोष नहीं होता, वह आकुल होकर यहां तक कह डालती है–

"छाड़ि सनेह चले मथुरा, कत दौरि न चीर गह्यौ।
फाटि न गई ब्रज की छाती, कत यह सूल सह्यौ।"

टिप्पणी

वात्सल्य जन्य वियोग की तीसरी स्थिति वह है जब कृष्ण मथुरा जाकर वहीं पर रहने लग जाते हैं। वे लौटकर ब्रज नहीं आते। इस वियोग वात्सल्य की जो सुन्दर झांकी सूरदास ने प्रस्तुत की है, तो अद्वितीय बन पड़ी है। माता यशोदा कृष्ण की अनुपस्थिति में कृष्ण की उन सभी वस्तुओं को नित्य–प्रतिदिन देखती हैं जिनमें कृष्ण खेलते थे। उसे बार–बार पुरानी बातें याद आती हैं। वह प्रतिदिन यह अभिलाषा करती है कि वह दिन कब आएगा जब वह अपने स्याम सलोने को छाती से लगाकर खिलाया करेंगी। इस वात्सल्य वियोग के कारण माता यशोदा पागल सी रहने लगती हैं। उन्हें कुछ अच्छा नहीं लगता। उन्हें अपने लाडले के खान–पान, रहन–सहन की चिन्ता लगी रहती है। इसलिए वह देवकी को यह संदेशा भेजती है–

"संदेसो देवकी सौ कहियौ।
हौं तौधाय तिहारे सुत की, मया करत ही रहियौ।
जदपि टेव तुय जानति है, हौं तऊ मोहि कहि आवै।
प्रात होत मेरे लाल लडैते, माखन रोटी भावै।
तेल उबटनौं अरु तातौं,
जोई–जोई मांगत सोई–सोई देती, क्रम–क्रम करि कैन्हाते।
सूर पथिक सुनि मोहि रैनि दिन, बढ़्यौ रहत उर सोच
मेरी अलक लडैतो मोहन, है है करत संकोच।"

सूरकाव्य में वियोग वात्सल्य की दशाओं का वर्णन

जिस प्रकार वियोग शृंगार के अन्तर्गत विरह की विभिन्न अवस्थाएं मानी जाती हैं, उसी तरह वियोग वात्सल्य की भी विभिन्न दशाएं मानी गई हैं। सूरदास ने उन सभी अवस्थाओं को अपने काव्य में चित्रित किया है,

यथा–

1. **अभिलाषा**–कब वह मुख बहुरौ, देखैगी, कब वैसौ सचु जैहौ।
2. **स्मरण**–सूल होत नवनीत देखि मेरे मोहन के मुख जोग।
3. **व्याधि**–विह्वल भई यशोदा झेलती, दुखित नंद आनंद।
4. **प्रलाप**–(मोहन) अपनी गैया घेरि लै।

बिडरी जति काहु नहिं मानति, नैकु मुरली की टेर दै।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सूरदास जी ने वात्सल्य वर्णन में एक ओर जहां बालक कृष्ण के स्वभाव, उनकी वेशभूषा तथा क्रीड़ाओं का सुन्दर वर्णन किया है, वहां दूसरी ओर माता यशोदा तथा नंद बाबा के भावों का सूक्ष्म, मनोवैज्ञानिक तथा हृदयस्पर्शी वर्णन किया है। सूर के वात्सल्य वर्णन की विद्वानों ने अत्यधिक प्रशंसा की है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

19. 'वात्सल्य' शब्द की उत्पत्ति किस शब्द से हुई है?
20. वात्सल्य के कितने भेद माने गए हैं?
21. सूर के काव्य में वियोग वात्सल्य की प्रथम स्थिति कब उत्पन्न होती है?
22. सूर ने वियोग की कितनी अवस्थाओं को अपने काव्य में चित्रित किया है?

टिप्पणी

1.8 ब्रज भाषा को सूर की देन

सूरदास ब्रज भाषा में साहित्य रचना की परंपरा का निर्माण करने वाले महत्वपूर्ण कवि हैं। यही कारण है कि कुछ विद्वान सूरदास को ब्रजभाषा का बाल्मीकि कहते हैं। सूरदास ब्रजभाषा के 'आदि कवि' भले ही न हों, लेकिन वे ब्रजभाषा के पहले महान कवि अवश्य हैं। सूरदास की अपनी कविता में ब्रजभाषा की अभिव्यक्तिशक्ति और सौंदर्य का जो रूप दिखाई देता है वह आश्चर्यजनक है। सूरदास द्वारा कृत सूरसागर ब्रज भाषा की प्रथम साहित्यिक कृति है जिसमें राग–रागनियों का अक्षय भंडार है, कृष्ण लीला का सुंदर कीर्तन है और सूरदास की पुष्टिमार्गीय भक्ति का आत्मोद्गार है। ब्रजभाषा में इतनी बड़ी रचना इससे पहले नहीं लिखी गई। उनके हृदय की भाषधारा में प्रवाहित होकर ब्रजभाषा में ऐसी कोमलता सरलता व सरसता आ गई कि वह परवर्ती कवियों के लिए सर्वगुण संपन्न हो गई! 16वीं शती के उत्तरार्द्ध में केवल वह ब्रज की ही भाषा न रहकर समस्त उत्तरी भारत की साहित्यिक भाषा बन गई जिसमें भक्त, शृंगारी और दरबारी सभी प्रकार के कवियों ने काव्य रचना की। सूर की ब्रजभाषा में भाषा के विविध स्तर मिलते हैं, जिनमें सहजता और कलात्मकता का चरमोत्कर्ष लक्षित होता है।

सूर की ब्रजभाषा की संपन्नता का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उसमें सामान्य लोकप्रचलित प्रयोगों से लेकर परिष्कृत प्रयोगों के जो रूप मिलते हैं, वे ही आगे चलकर साहित्यिक ब्रजभाषा के आधार बने। अपनी भाषा के रूप–निर्माण में सूर ने तत्सम, तद्भव, देशज और नाना विदेशी कोटियों के शब्दों को उन्मुक्त रूप में आत्मसात करके ब्रजभाषा की प्रकृति के अनुरूप बना लिया। इस प्रक्रिया में सूर ने वस्तुगत संदर्भो और ब्रजभाषा के माधुर्य को ही सर्वोपरि रखा। मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोगों से सूर की ब्रजभाषा में अर्थवत्ता का अपूर्व स्तर पर समावेश हुआ। सूर ने परंपरित लोकोक्तियों को साहित्यिक गरिमा प्रदान करके ब्रजभाषा को स्थायी संपन्नता प्रदान की। सूर की सहज उद्भावक प्रतिभा के द्वारा लोकसमर्थित व्यापक सत्य को उद्घटित करने वाली अनेक उक्तियां लोकोक्तियों के रूप में प्रतिष्ठित हो गई। सूर की ब्रजभाषा में ब्रज के लोकप्रचलित साहित्यिक रूपों को परिनिष्ठित संस्कार मिला।

सूर से पहले मुख्यतः दो प्रकार की भाषाओं का प्रयोग किया जाता था : अपभ्रंश मिश्रित डिंगल तथा साधु–संतों आदि द्वारा प्रयुक्त पंचमेल खिचड़ी। चलती हुई ब्रज भाषा में सर्वप्रथम और सर्वोच्च रचना सूर की ही उपलब्ध होती है। कोमल पदावली के साथ सूर की ब्रजभाषा सानुप्रयास, स्वाभाविक, प्रवाहमयी, सजीव और भावों के अनुरूप बन पड़ी है। सूर ने ब्रजभाषा के बोली वाले स्वरूप को समृद्ध किया और संस्कृति के तत्सम शब्दों के प्रयोग से ब्रजभाषा को मध्ययुगीन श्रेष्ठतम साहित्य की भाषा का गौरव प्रदान किया। सूर की भाषा की एक अन्यतम–विशेषता उसकी प्रवाहमयता है। भाषा स्वतः भाव का अनुगमन सी करती दिखती है। सूरदास की ब्रजभाषा के स्वरूप को गोपियों के कथन के माध्यम से समझा जा सकता है।

टिप्पणी

यथा–

"लरिकई को प्रेम कहौ अलि, कैसे करि कै छूटत?
कहा कहौ ब्रजनाथ–चरित अब अंतरग हि यों लूटत।
चंचल चाल मनोहर चितवानी, वई मुसुकानि मंद धुनि गावत।
नटवर भेस नंदनंदन को है विनोद गृह वन तें आवत।"

सूरदास की भाषा में कहीं भी कृत्रिमता के दर्शन नहीं होते। सूर ने ब्रजभाषा को साहित्यिक स्वरूप प्रदान करने के लिए अनेक मौलिक प्रयोग किए हैं। उदाहरण के लिए उन्होंने ब्रजभाषा में अनुनासिकता पर अधिक बल दिया है और परिमाणत : भाषा अधिक कोमल हो गई है। सूर ने अपनी भाषा को भावानुकूल बनाने के लिए प्रसंग की आवश्यकतानुसार फारसी, अवधी, तथा अरबी आदि भाषाओं के कतिपय शब्दों का भी प्रयोग किया है। सहजता उनकी भाषा की सबसे बड़ी पहचान है। इस प्रकार सूर ब्रजभाषा के प्रथम कवि हैं।

सूर ने ब्रजभाषा के साहित्यिक स्वरूप को निर्मित किया परंतु वे ब्रजभाषा के लोकप्रचलित शब्दों को सर्वथा छाड़ नहीं सके। उनकी भाषा में संज्ञा, सर्वनाम, परसर्ग, क्रियापद, अव्यय आदि परिनिष्ठित शब्दरूपों के साथ–साथ विशिष्ट अर्थ व्यंजक लोक रूपों को भी बराबर प्रश्रय मिला है। सूर ने ब्रजभाषा की सहजता मधुरता को संगीत का अनुशासन प्रदान कर और भी प्रखरता प्रदान की। इस प्रकार सूर के पदों में अनुरणनात्मक वर्णयोजना, आनुप्रासिक पदावली और तुक की संगीतनिष्ठता के प्रभाव स्वरूप लय का अविरल प्रवाह आहत नहीं होने पाया। वीप्सा, पुनरुक्ति और वर्णमैत्री के प्रयोगों ने तो सूर की भाषा की संगीतमयता को और भी उद्दीप्त कर दिया। सूर के प्रत्येक पद का एक–एक चरण और प्रत्येक चरण का एक–एक शब्द उत्कृष्ट संगीत का प्रसार करता चलता है। विशेषता यह है कि यह पूरी प्रक्रिया कहीं भी अर्थ को स्खलित नहीं होने देती, प्रत्युत उसकी ध्वनित ही करती है। सूर की ब्रजभाषा में हमें भाषा के प्रौढ़ एवं व्यापक रूप के दर्शन होते हैं। वह अपनी प्रसंगानुकूलता के कारण कहीं लोक भाषा है तो कहीं परिनिष्ठित भाषा। रसानुकूल रागों के अनुशासन के कारण सूर की ब्रजभाषा काव्य भाषा के साथ ही संगीत की भी भाषा बन गई।

1.9 भक्तिकालीन गीति काव्य और सूर

आदिकाल से मानव ह्रदयगत रागात्मक अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिए गीतों का आश्रय लेता आया है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि जब मानव ह्रदयगत मार्मिक अनुभूतियों को सजीव तथा संगीतात्मक भाषा के रूप में प्रस्तुत करता है तब गीतिकाव्य का जन्म होता है। विद्वानों ने गीतिकाव्य के बारे में अलग–अलग परिभाषाएं दी है। इस संदर्भ में डॉ. मुंशीराम शर्मा लिखते हैं–"गीतिकाव्य की शैली आत्माभिव्यंजक की अतीव उत्कृष्ट शैली है। मुक्तक काव्य रचना के लिए अत्यंत उपयुक्त है। यदि भाव की एक–एक शृंखला को सुसज्जित गुलदस्ते के रूप में सजाना है, भाव–धारा की एक लहर का सजीव चित्र

'अपनी प्रगति जांचिए'

23. ब्रज भाषा की पहली साहित्यिक कृति कौन–सी है?
24. किस शताब्दी में ब्रज भाषा समस्त उत्तरी भारत की भाषा बन गई?

उपस्थित करना है, अपनी अनुभूति का अंग–अंग आकर्षक रूप में प्रकट करना है, तो उसके लिए गीति–काव्य के अतिरिक्त अन्य कौन सी शैली उपादेय सिद्ध होगी।"

टिप्पणी

गीतिकाव्य के संबंध में विभिन्न विद्वानों के विभिन्न मत हैं किंतु उनकी मूल बातों में समानता है। हीगल का कथन है कि–"जब कवि विश्व के अंतःकरण में पहुंचकर आत्मानुभूति करता है, तब उसे अपनी चित्तवृत्ति के अनुसार काव्योचित भाषा में व्यक्त कर देता है–गीत का जन्म यहीं होता है।" **अर्नेस्ट राइस** का कहना है कि "सच्चा गीत वही है जो भाव या भावात्मकता या विचार का भाषा में स्वाभाविक विस्फोट हो।" महादेवी वर्मा के अनुसार, "गीत का चिरंजन विषय रागात्मकतावृत्ति से संबंध रखने वाली सुख–दुःखात्मक अनुभूति से रहेगा। साधारणतः गीत व्यक्तिगत सीमा में सुख–दुःखात्मक अनुभूति का वह शब्द रूप है जो अपनी ध्वन्यात्मकता में गेय हो सके।" भारतीय साहित्य–शास्त्रियों ने गीतिकाव्य को काव्य से अभिन्न माना था। यहां काव्य स्वतः ही गेय होता था। अतः गेय काव्य ही गीत कहलाता था।

आत्मानुभूति को ही गीत का प्राण कहा जा सकता है। लेकिन इस आत्मानुभूति का प्रकाशन ऐसे चुने हुए शब्दों में होना चाहिए जो गेयात्मक हों। डॉ. भागीरथ मिश्र की इस संबंध में दी गई परिभाषा द्रष्टव्य है–"कि कविता की मुख्य प्रेरणा आत्मानुभूति है और वह जब स्वाभाविक गीतिमय और गेय स्वर लहरी में तीव्रता के साथ प्रकट होती है तो 'गीत' हो जाती है।"

गीतिकाव्य परंपरा और हिंदी साहित्य

यूं तो गीत गाना मानव का स्वभाव है परंतु भारतभूमि विशेष रूप से गान विद्या के लिए प्रसिद्ध रही है। भारत की प्राचीनतम पुस्तक वेद है जिसमें गीतिकाव्य विद्यमान है। सामवेद के गीत गीतिकाव्य के सर्वप्रथम उदाहरण कहे जा सकते हैं, क्योंकि इनमें गेय तत्व विद्यमान है। इससे यह स्वतः सिद्ध हो जाता है कि भारतीय साहित्य में गीत रचने की प्रवृत्ति आरंभ से रही है। यह प्रवृत्ति आज तक निर्बाध रूप से चलती आ रही है और यह आशा की जाती है कि भविष्य में भी यह प्रवृत्ति चलती रहेगी।

भारतीय विद्वानों ने गीतिकाव्य के निम्नलिखित तत्व निर्धारित किए हैं। वे सभी तत्व सूर के काव्य में देखे जा सकते हैं। ये तत्व हैं–

1. वैयक्तिकता
2. संगीतात्मकता व लयात्मकता
3. रागात्मकता
4. एकान्विति या भावगत एकरूपता
5. संक्षिप्तता
6. काल्पनिकता
7. सुकोमल शैली

टिप्पणी

1. वैयक्तिकता—यह गीतिकाव्य का प्रधान तथा प्राण तत्व होता है। इसे आत्मभिव्यंजना भी कहा जाता है। गीतिकाव्य में वैयक्तिकता का तात्पर्य—कवि की स्वच्छंद मनोवृत्ति से है। दूसरे शब्दों में यह भी कहा जा सकता है कि गीतिकाव्य में कवि अपने निजी जीवन की और जगत से मिलने वाले दुःख—सुख, करुणा—आनंद, हर्ष—शोक, हास—रुदन आदि को अभिव्यक्त करता है। उसके हृदय में न सभी भावनाओं, अनुभवों आदि का संचित भण्डार होता है। जब ये सभी अनुभूतियां कवि को बहुत अधिक उद्वेलित और विचलित करने लगती हैं, तब उसके हृदय से निकलने वाले मनोभाव संगीत की मधुर लहरी के साथ मिलकर गीतिकाव्य का रूप लेते हैं।

सूर काव्य में गीतिकाव्य का वैयक्तिकता तत्व मुख्य रूप से उनके दास्य व विनय के पदों में और दसवें अध्याय के पदों में अधिक मुखरित होता है। अपनी कृति 'सूरसागर' के प्रथम स्कंध में भक्त सूरदास की दैन्य भावना इसी में प्रकट हुई है कि हे प्रभु! मैं माया के वशीभूत होकर इस संसार में बहुत नाच चुका हूं। एक कुशल नर्तक की भांति मैंने काम—क्रोध रूपी जामा पहन रखा है और गले में विषय—वासनाओं की माल डाल रखी है। माया के वशीभूत होने के कारण मैं अपनी सारी सुध—बुध भूल चुका हूं। अतः अब आप मेरी सारी अविद्या दूर करो यथा –

"अब मैं नाच्यौं बहुत गुपाल।
काम, क्रोध कौ पहिरि चोलना, कंठ विषय की माल।
महामोह के नुपूर बाजत, निंदा—शब्द रसाल
भ्रम—भोयौ मन भयो पखावज, चलत असंगत चाल।
तृष्णा नाद करति घट भीतर, नाना विधि दै ताल।
माया की कटि फेंटा बांध्यो, लोभ—तिलक दियौ भाल।
कोटिक कला काछि दिखराई, जल थल सुधि नहिं काल।
सूरदास के सबै अविद्या, दूर करौं नंदलाल।"

इसी प्रकार उनकी कृति सूरसागर के दसवें अध्याय में भी कवि की आत्माभिव्यंजना प्रकट हुई है। निस्संदेह वहां पर कथावस्तु के आधार पर कवि ने गोप, गोपियों, नंद, यशोदा आदि पात्रों का चित्रण किया है, परंतु हमें यह ध्यान रखना होगा कि कृष्ण—लीला विषयक इन पदों में प्रत्येक भाव कवि के हृदय में उपज रहा है जिसे कवि पात्र के माध्यम से प्रकट कर रहा है। इस संबंध में **डॉ. मनमोहन गौतम** ने उचित ही कहा है—"कृष्ण की सरस लीलाओं का आश्रय पाकर उनकी समस्त अवरुद्ध मनोवृत्तियां, 'कृष्णार्पणमस्तु' बोलकर शत—शत धाराओं में प्रवाहित हो उठी। गोप, गोपांगना और ब्रजांगना के माध्यम से सूरदास जी अपने ही हृदयोद्‌गारों का वैयक्तिकरण करने लगे हैं।" अतः उनके श्रीकृष्ण लीला विषयक पदों में जो भाव माता यशोदा, नंद, गोपियों के मन में उत्पन्न हो रहे हैं, वे सभी वास्तव में कवि की वैयक्तिक अनुभूति हैं। इस सन्दर्भ में आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी का यह कथन द्रष्टव्य है— "गीतिकाव्यात्मक मनोरागों पर आधारित विशाल महाकाव्य ही सूरसागर है।"

टिप्पणी

2. संगीतात्मकता–सूरदास को सभी राग–रागनियों का समुचित ज्ञान था और संगीत गीतिकाव्य का प्रधान तत्व माना गया है। संगीत ही गीतिकाव्य में प्राण चेतना का संचार करता है तथा उसमें अखण्ड रस धारा का प्रवाह करता है। संगीत गीतिकाव्य में गहन अनुभूति को जगाता है और गीतकार के मार्मिक उद्‌गारों की अभिव्यंजना करता है। सूर के पदों में संगीत के अनुकूल कोमल तथा मधुर शब्दों का उल्लेख किया गया है। वे कई शब्दों को लोचयुक्त बनाकर संगीत की मधुरता को उत्पन्न करते हैं। उदाहरण के रूप में वे भ्रमर को भंवरे के रूप में प्रस्तुत करते हैं और अवगुण और औगुण का प्रयोग करके भाषा में मधुरता उत्पन्न करते हैं यथा–

"तुम कारे सुफलक सुत कारे, कारे मधुप भंवारें।

× × × × × × × ×

हमारे प्रभु औंगुन चित न धरौ
समदरसी है नाम तुम्हारौ, सोई पार करौ।"

सूर के काव्य को संगीत ने उत्कृष्टता प्रदान की है। संगीत शब्द सौरस्य का अर्थ है– सौरस्य में किसी प्रकार का विघ्न उत्पन्न नहीं करना। वह तो शब्दों की रमणीयता, ध्वन्यात्मकता और स्वरलहरी से अर्थ में सौष्ठव और कल्पना मे कमनीयता उत्पन्न करता है।

सूर के संगीत की विशेषता है कि उन्होंने विषय के अनुसार राग–रागिनियों का चयन किया है। जहां कहीं हर्ष और उल्लास का प्रसंग आता हैं वहां राग, धनाश्री, राग, तोड़ी आदि का प्रयोग करते हैं परंतु विप्रलम्भ तथा गंभीरता के स्थलों पर वह राग जैतश्री, राग सारंग, राग मल्हार आदि का प्रयोग करते हैं। आवश्यकता पड़ने पर वे नए रागों का भी प्रयोग कर देते हैं।

भ्रमरगीत में कवि ने विभिन्न राग–रागिनियों का सफल प्रयोग किया है। विशेषकर शृंगार के प्रसंग में रामकली, आसावरी, विलावल, बसन्त, नट, सारंग, गुजरी, राग आदि का प्रयोग किया है। इस प्रकार सूर के काव्य में मिश्रित संगीत का अवलोकन करने पर यह कहा जा सकता है कि उनके काव्य में संगीत की मधुर धारा प्रवाहित हुई है जो कि उनके काव्य को मार्मिक तथा मधुर बना देती है। समस्त भक्तिकालीन कवियों में सूर का स्थान संगीत विषयक ज्ञान की दृष्टि से सर्वश्रेष्ठ कहा जाएगा।

3. रागात्मकता–रागात्मकता गीतिकाव्य का अन्य महत्वपूर्ण तथ्य है। अन्य शब्दों में यह कह सकते हैं कि राग तत्व के बिना गीतिकाव्य निष्प्राण है। सूरदास का गीतिकाव्य राग तत्व का सरोवर है। इसका प्रमुख कारण यही है कि सूरदास एक कुशल गायक तथा संगीतकार थे। उन्होंने अपने सभी पदों की रचना राग–रागिनियों में की है। इसका मतलब यह है कि सूरदास को राग–रागिनियों का समुचित ज्ञान था। यही नहीं, कवि ने अपनी विलक्षण बुद्धि का परिचय देते हुए नवीन राग–रागनियों की रचना की है। यही कारण है कि आज भी गायकों द्वारा उनके पद गाए जाते हैं। दूसरा, कवि ने पद रचना करते समय इस बात का ध्यान रखा है कि कौन सा पद किस समय के लिये गाने

टिप्पणी

योग्य है। तदनुसार वे राग का समुचित प्रयोग करते हैं। उदाहरण के रूप में जो राग प्रातःकाल के लिए उपयुक्त माना गया है, उसमें उन्होंने दोपहर तथा शाम को गाए जाने वाले पदों की रचना की है। सूरदास स्वयं श्रीनाथ के मन्दिर में अपने पदों का गायन करते थे जिन्हें सुनकर श्रोता भी भाव विभोर हो जाते थे। उदाहरण के लिए प्रातःकाल के लिए राग ललित तथा राग भैरव उपयुक्त हैं। कृष्ण को नींद से जगाने के लिए इन्हीं रागों का प्रयोग किया गया है। यथा –

"जागिए गोपाल लाल आनन्द निधि नन्दलाल।
जसमुति कहै बार–बार भोर भयो प्यारे।
× × × × × × × ×
उठो नन्दलाल भयौ मिनसार, जगावति नन्द की रानी।
झारी लै दल बदन पखारौ सुभ करि सारंग पानी।"

4. एकान्विति–गीतिकाव्य का प्रत्येक पद एक ही भाव पर केन्द्रित होता है, इसी प्रकृति के कारण गीतिकाव्य काव्य की अन्य विधाओं से अलग अस्तित्व रखता है। सूरदास ने अपने प्रत्येक पद में एक ही भाव की अभिव्यक्ति की है। एक पद की सभी पद्य पंक्तियां उसी एक भाग से सम्बद्ध हैं। अगले पद में हमें दूसरे भाव का वर्णन पढ़ने को मिलता है। इससे पाठक गीतिकाव्य का समुचित आनन्द उठा सकता है। वस्तुतः सूरदास का भाव जगत संकुचित नहीं है। उन्होंने अपने पदों में विविध रसों की धारा प्रवाहित की है। शृंगार और वात्सल्य रस अति कोमल माने गए हैं और सूरसागर में इन दोनों रसों से संबंधित पदों की अधिकता है। उदाहरण के रूप में निम्नलिखित पद लिया जा सकता है जिसमें कवि अपने स्वामी श्रीकृष्ण के एक ही गुण अर्थात् उनकी भक्त–वत्सलता पर प्रकाश डालता है –

"वासुदेव की बड़ी बड़ाई।
जगत पिता, जगदीस, जगत गुरु निज भक्तनि की सहत ढिठाई।
भृगु कौ चरन राखि उर ऊपर, बोले बचन सकल सुखदाई।
सिवि बिरंचि मारन कौं धाए, यह गति काहू देवर नहिं पाई।
बिनु बदले उपकार करत हैं, स्वारथ बिना करत मित्राई।
रावन अरि कौ अनुज विभीशण, ताकौ मिले भरत कीं नाई।
बली कपट करि मारन आई, सो हरि जू बैकुंठ पठाई।
बिनु दीन्हें ही देत सूर प्रभु, ऐसे हैं जदुनाथ गुसाई।"

5. संक्षिप्तता–संक्षिप्तता गीतिकाव्य का एक अन्य महत्वपूर्ण तत्त्व है। गीतिकाव्य में कवि की अनुभूति जितनी तीव्र और सघन होगी, उतनी उसकी अभिव्यक्ति सुन्दर और सहज रूप से ग्राह्य होगी। गीतिकाव्य में उद्दाम भावों को भी संक्षिप्त रूप से प्रस्तुत करना आवश्यक है, क्योंकि अनावश्यक विस्तार गीतिकाव्य के प्रभाव को नष्ट कर देता है। दूसरा गीतिकाव्य का आकार छोटा होता है। फिर भी यह अन्य काव्य–धाराओं की अपेक्षा अधिक समय तक स्थान बनाए रखता है। अनेक बार गीतिकाव्य का आधार इतना स्थायी होता है कि प्रबन्ध काव्य भी उसके सामने हीन लगने लगता है।

टिप्पणी

सूरदास के गीतिकाव्य में संक्षिप्तता का विशेष ध्यान रखा गया है। उनके पद आकारगत लघुता के बावजूद अत्यधिक प्रभावशाली सिद्ध हुए हैं।

6. काल्पनिकता—यद्यपि मुक्तक काव्य में प्रबन्ध काव्य के समान रस का परिपाक संभव नहीं है लेकिन कवि अपनी कल्पना के प्रयोग द्वारा गीति—काव्य में ऐसे तत्वों का समावेश कर देता है जिसके फलस्वरूप उसमें भी रस का परिपाक हो जाता है। उदाहरण के रूप में सूरदास ने वाग्वैदग्ध्य की उक्ति—वैचित्र्य का सहारा लेकर भ्रमरगीत के पदों में रसात्मकता उत्पन्न कर दी है। यही नहीं, कवि ने सुकोमल भावनाओं की इस प्रकार अभिव्यक्ति की है कि पाठक की चित वृत्ति सहज ही आन्दोलित हो जाती है और वह भावमग्न होकर आनन्दानुभूति प्राप्त करने लगता है। यहां इस तथ्य का उल्लेख करना आवश्यक होगा कि गीतिकाव्य में प्रभाव का समाहित होना आवश्यक है। यह प्रभाव जितना अधिक होता है, गीत उतना ही सुन्दर माना जाता है और भाव उत्पन्न करने के लिए रसात्मकता का होना भी अनिवार्य है। 'सूरसागर' में सभी रसों को प्रवाहित किया गया है। परंतु भक्ति शृंगार तथा वात्सल्य को उन्होंने विशेष स्थान दिया है।

भ्रमरगीत वस्तुतः विप्रलम्भ शृंगार की रचना है। इसमें विरह की सभी दशाओं का सजीव वर्णन किया गया है। इस संदर्भ में आचार्य शुक्ल ने कहा है कृ "न जाने कितने प्रकार की मानसिक दशाएं ऐसी मिलेगी जिनके नामकरण तक नहीं मिलेंगे।" जब से कृष्ण मथुरा गए हैं,, तब से गोपियां विरह से व्याकुल हैं। उनके नेत्रों से लगातार आंसू बरसते रहते हैं। एक क्षण को भी आंसू बंद नहीं होते। गोपियां उद्धव से कहती हैं —

"निस दिन बरसत नैन हमारे,
सदा रहति पाव रितु हम पै, जब तै स्याम सिधारे।
दृग अंजन लागत नहि कबहूं, उर कपोल भए कारे।
कंचुकि पट सूखत नहिं कबहूं उर बिच बहत पनारे।"

इस प्रकार रसात्मकता की दृष्टि से सूर काव्य विशेष महत्व रखता है। सारांश यह है कि शृंगार तथा वात्सल्य के क्षेत्र में इतनी अन्तर्दृष्टि शायद ही किसी अन्य कवि को प्राप्त हुई है। शृंगार रस के प्रायः सभी संचारी भावों का स्वाभाविक रूप से प्रस्फुटन यहां पर देखा जा सकता है।

7. सुकोमल शैली—सूर के गीतिकाव्य में सर्वत्र कोमलकान्त पदावली का ही प्रयोग हुआ है। कवि ने शब्द—चयन की ओर विशेष ध्यान दिया है। कवि ने भावानुरूप ब्रज भाषा का प्रयोग तो किया ही है, परंतु कहीं—कहीं वे बोलचाल के शब्दों का प्रयोग करने लगते हैं। सूक्ष्म मानसिक परिस्थितियों के अनुसार भाषा के अनेक रूपों का प्रयोग करते हैं, लेकिन कोमलकान्त पदावली ही उनके काव्य को चार चांद लगाती है। एक उदाहरण देखिए —

"खेलत मैं को काको गुसैयां।
हरि हारे जीत सुदामा, बरबस ही कत करत रिसैयां।
जाति—पांति हमतै बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयां।

अति अधिकार जनावत यातै जातै अधिक तुम्हारे गैयां।
रूठहि करै तासौ को खेलै, रहे बैठि जहं–तहं ग्वैयां।
सूरदास प्रभु खेल्यौइ चाहत, दाऊं दियो करि मंद–दुहैयां।''

टिप्पणी

सूरदास ने प्रायः ब्रज भाषा का ही प्रयोग किया है। उनको ब्रज भाषा का वाल्मीकि कहा जाता है। कवि ने ब्रज भाषा को न केवल सजाया और संवारा, बल्कि उसे साहित्यिक रूप भी प्रदान किया। वे भावानुरूप ही भाषा का प्रयोग करते हैं और कोमलकान्त पदावली के प्रयोग द्वारा अपने पदों को मार्मिक बना देते हैं।

यदि ध्यान से देखा जाए तो सूर के गीतों की विशेषता और प्रसिद्धि का श्रेय उनकी कोमल और सरस ब्रजभाषा को ही दिया जाएगा। ब्रजभाषा ही अपनी कोमलता और सरसता के लिए प्रसिद्ध है। सूर ने इस बात का अत्यधिक ध्यान रखा है। उन्होंने कठोर शब्दों का बहिष्कार किया है तथा कोमल, सरल एवं कानों को सुख देने वाले शब्दों को ही विशेष स्थान दिया है।

माधव राधा के रंग रांचे राधा माधव रंग रई।
माधव राधा प्रीति निरंतर, रसना करि सो कहि न गई।
बिहंसि कह्यो हम तुम नहिँ अन्तर, यह कहिकै उन ब्रज पठई।
सूरदास प्रभु राधा माधव, ब्रज–बिहार नित नई नई।।

अतः संक्षेप में कहा जा सकता है कि सूरकाव्य की राधा चंचल, चपल, चतुर नवयौवना है जो अपने अद्‌भुत सौन्दर्य के बल पर श्रीकृष्ण की प्रेयसी बनती है, परंतु अपने इसी सौंदर्य के कारण दारूण मानिनी भी बन जाती है। ज्यों ही वह श्रीकृष्ण के वियोग का सामना करती है, वह अन्तर्मुखी विरहिणी बन जाती है और उसके हृदय में उदारता समा जाती है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

25. भारत की वह प्राचीनतम पुस्तक कौन–सी है जिसमें गीतिकाव्य विद्यमान है?
26. गीतिकाव्य में वैयक्तिकता का क्या तात्पर्य है?
27. सूरदास स्वयं अपने पदों का उच्चारण कहां करते थे?
28. ब्रज भाषा का वाल्मीकि किसे कहा जाता है?

1.10 अष्टछाप का दर्शन और सूर

श्री वल्लभाचार्य द्वारा जिस पुष्टिमार्गीय भक्ति संप्रदाय की स्थापना की गई, तथा उस भक्ति पद्धति का जिन हिंदी भक्त–कवियों द्वारा पल्लवन किया गया उन्हें अष्टछाप के कवि कहा जाता है। वैसे तो पुष्टि के मार्ग को स्वीकार करने वाले अनेक भक्त कवि विद्यमान थे परंतु जिन आठ कवियों पर गोस्वामी विट्‌ठनाथ जी ने अपने आशीष की छाप रखी वे 'अष्टसखा' व 'अष्टछाप' के नाम से प्रचलित हुए। इन अष्ट कवियों में चार वल्लभाचार्य के शिष्य– कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास और कृष्णदास थे। गोविंदस्वामी, नंददास, धीतस्वामी और चतुर्भुजदास। श्रीनाथ जी की नित्य लीला में ये आठों भक्त अंतरंग सखाओं के रूप में सदैव उन्हीं के साथ एक रहते थे यही कारण था कि इन्हें 'अष्टसखा' कहा जाता है।

गोस्वामी विट्‌ठलनाथ जी द्वारा श्रीनाथ जी की आठ प्रहर की सेवा–अर्चना के लिए उनकी लीला–भावना के अनुसार कीर्तन की व्यवस्था समय और ऋतु के विशिष्ट रागों द्वारा की गई। अष्टछाप के ये कवि सेवक ही नहीं पुष्टिमार्ग के ज्ञाता भक्त और उच्च कोटि के कवि भी थे। ये भक्त कवि, संगीतज्ञ भी थे। गोस्वामी हरिराय जी ने अष्टछाप के इन आठ

सखाओं के महत्व को प्रस्तुत करते हुए लिखा है कि– "अष्टसखाओं में लीलात्मक स्वरूपों की दो प्रकार की स्थिति है। दिन के समय ये ठाकुर जी के सख्य भाव में उनकी वनलीला का आनंद प्राप्त करते हैं और रात्रि के समय स्वामिनी श्री राधा के सखी रूप में निकुंज लीला (श्रृंगार भाव) का आनंद प्राप्त करते हैं। इस प्रकार ये आठों भक्त कवि श्रीनाथ जी के अंग रूप ही हैं।"

सांप्रदायिक दृष्टि से अष्टछाप के ये आठ भक्त कवि सामान्य मनुष्य से उच्च स्थान रखते हैं तथा इनका लीला की दृष्टि से अत्यधिक महत्व है। सख्य भक्ति के द्वारा सूर ने भक्ति को सरल और सर्वजन सुलभ बनाने के लिए वात्सल्य भाव के द्वारा भगवान की आराधना की। वात्सल्य भाव में भक्त को अपने ईष्ट का अधिक सामीप्य प्राप्त होता है। बाल–लीला में रस की मग्नता इतनी अधिक होती है कि कृष्ण का असीम शक्ति का ज्ञान व वैभव कुछ समय–विशेष के लिए धुंधला (तिरोहित) सा हो जाता है तथा भक्त प्रभु के निकट उसी रूप में पहुंच जाता है जिस प्रकार बालक के पास माता–पिता, बंधु, सखा आदि।

वैष्णव संप्रदायों में माधुर्य भक्ति पद्धति व अन्य भक्ति की पद्धतियों की अपेक्षा अत्यधिक उच्चता का स्थान प्रदान किया गया है। व्यक्तिगत संबंध के निकटता और अनन्यता की दृष्टि से माधुर्य–भाव में जो चमक व उल्लास उत्पन्न होता है वह अन्य भक्ति भाव में परिलक्षित नहीं होता। सूर की भक्ति में अनेक प्रकार की लीलाओं के प्रसंग माधुर्य के भाव को बड़े ही मनोरम रूप से प्रस्तुत किया गया है। इस भक्ति में भगवान की असीम शक्ति को अपने पति के रूप में प्राप्त कर गोपियां सुख की अनुभूति को प्राप्त करती हैं।

अतः सूर के काव्य में अष्टछाप के दर्शन व उसकी भक्ति भावना, तथा भक्ति के रूपों का पूर्ण रूप से वर्णन प्राप्त होता है।

1.11 सूर की गोपियां

सूरदास जी ने प्रेम की विश्व व्यापक भावभूमि को भक्ति के रस में डुबो कर श्रेष्ठता की उस श्रेणी तक पहुंचा दिया जहां उसे उज्ज्वल रस की संज्ञा से विभूषित किया जाता है। सूर के आराध्य देव श्रीकृष्ण हैं और उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन अपने आराध्य की स्तुति में व्यतीत किया था 'सूरसागर' महाकाव्य की रचना की। सूरसागर में सूर ने कृष्ण की सभी लीलाओं का वर्णन किया है। सूरसागर अपने अंतस में प्रेम के रस को समाए हुए है और यह प्रेम श्रृंगार के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है। कृष्ण के प्रेम ने सूर को ही नहीं अपितु माता यशोदा, पिता नंद, राधा, गोपियां, पशु–पक्षी, प्रकृति आदि सभी को अपने में रंग लिया। सूर की गोपियां पूर्ण रूप से स्वयं को कृष्ण भक्ति में समर्पित कर चुकी हैं।

सूर की गोपियों में प्रेम के सभी संस्कार हैं। विद्यापति की गोपियों की भांति इनमें रूपलिप्सा ही नहीं अपितु सहचार की भावना है। वास्तव में सूरदास की गोपियां आरंभ से अंत तक एक सरल बालिका हैं। उनके प्रेम में सास–ननद का भी डर नहीं है। सूर द्वारा

रचित रास के प्रसंगों में गोपियों का प्रेम उज्ज्वलतम है। गोपियों का प्रेम विलासिता पूर्ण नहीं अपितु आत्मानुराग का स्वच्छंद प्रकाशन है, उसमें किसी प्रकार का लुकाव–छिपाव नहीं। गोपियों के स्वकीया प्रेम में सात्विकता है।

टिप्पणी

सूर की गोपियां माधुर्य भाव की उपासिका हैं। वे समाज से अपने संबंधों को तोड़कर कृष्ण लीला में सम्मिलित होती हैं। ऐसा लगता है कि सूरदास स्वयं एक गोपी का रूप धारण कर उस लीला–बिहारी के साथ बिहार करते होंगे। प्रेम की पूर्ण प्राप्ति लोक समाज और शास्त्र की अवहेलना में ही होती है। मर्यादाओं के पालन में प्रेम मिलना असंभव है। यथा–

प्रेम प्रेम ते होई, प्रेम ते पारहिं पइए।
प्रेम बन्ध्यौ संसार, प्रेम परमारथ लहिए।।
एकै निश्चय प्रेम कौ, जीवन मुक्ति रसाल।
सांचौ निश्चय प्रेम को, जहिरै मिलें गोपाल।।

सूरदास की गोपियों के स्वरूप को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

1. **हठयोगिनी**–गोपियां बड़ी सावधानी से प्रेम और भक्ति की प्रतिष्ठा करने के लिए ऐसे साधनों का प्रयोग कर रही हैं जिनसे उद्धव विवश होकर मथुरा लौट जाते हैं। वे विरोध कर सामने आ खड़ी होती हैं। सबसे पहले वे हठयोग का विरोध करती हैं। निम्न उदाहरण से गोपियों के हठ के स्वरूप को समझा जा सकता है–

   (क) उद्धव मन अभिलास बढ़ायौ।
   जदुपति जोग जानि जिय सांचौ, नयन अकाश चढ़ायौ।

   (ख) नैन नसिका अग्र है, तहां ब्रह्म को बास,
   अविनासी विनसे नहीं, हो सहज ज्योति परगास।

   (ग) हमरे कौन जोग वृत साधे।
   मृग त्वच भस्म अधारि जटा को, को इतनो अवराधै।

2. **शास्त्रों को साधन मानने वाली**–कहने की आवश्यकता नहीं कि गोपियां योग का विरोध करती हैं और उन्होंने भक्ति और प्रेम की प्रतिष्ठा के लिए जो साधन अपनाये हैं उन सबका उल्लेख यहां किया जा सकता है। पहिले तो वे उद्धव से सीधे–सीधे बात करती हैं किंतु जब उद्धव नहीं मानते तो वे अपनी पर आ जाती हैं।

   गोपियों ने प्रेम और भक्ति की प्रतिष्ठा के लिए शास्त्रों को साधनवत स्वीकार किया है। उन्होंने बल्लभाचार्य के भक्त सिद्धांत का सहारा लेकर उद्धव से अनेक तर्क किये हैं। निर्गुण के खंडन में ही सगुण की प्रतिष्ठा निहित है; जिन गोपियों ने कृष्ण को देखा है, उनके अधरों का रसपान किया है तथा जिनके साथ नाच–कूद करते हुए जिन्होंने गलबहियां डालकर खेल–कूद किया है वैसे कृष्ण को भूल जाना गोपियों के लिए संभव नहीं है; फिर निर्गुण को अपनाना और उसकी खोज में अपने मन को चकई की तरह घुमाना और भी कठिन है।

3. **योग और प्रेम की तुलना करने वाली**–गोपियों ने अनेक स्थलों पर योग और प्रेम की तुलना भी की है। इस तुलना में वे इस निष्कर्ष पर पहुंची है कि योग किसी

टिप्पणी

काम का नहीं है, वह तो 'बिनु जल सूखो सागर है।' ये कहती हैं कि हमारा कृष्ण के प्रति प्रेम और उनका निर्वाह योग से किसी प्रकार हल्का नहीं पड़ता। योग तो हम भी कर रही हैं किंतु उसमें प्रेम की ऊहा अधिक है। स्पष्ट है कि गोपियां योग पर अनेक प्रकार के व्यंग्य करती हैं। अंत में वे यह कहती हैं कि हम तो अपने ढंग का प्रेम कर रही हैं। वे योग के सभी साधनों को प्रेम के माध्यम से व्यक्त करती हुई कहती हैं–

हम अलि गोकुल नाथ आराध्यो।

मन क्रम बच हरि सों धरि परिव्रत प्रेम जो तप साध्यो।

मातु–पिता–हित–प्रीति निगम–पथ तनि दुख–सुख भ्रम नाख्यो।

4. **कृष्ण की एकमात्र उपासिका**–गोपियां कृष्ण को ही परमात्मा का स्वरूप मानती हैं। इनकी सगुणोपासना शास्त्र–समर्थित है। वे कृष्ण की अनुगामिनी हैं। उन्हें छोड़कर किसी दूसरे की चर्चा सुनना भी गोपियों को सह्य नहीं है। इसी कारण वे यह कहती हैं–

मधुकर! स्याम हमारे ईस।

जिनको ध्यान धरे उर अंतर आनहिं नए न उन बिन सीस।

जोगिनी आय जोग उपदेसौ जिनके मन दस बीस।

यथार्थता तो यह है कि सूर ने राग तत्व को भक्ति के मार्ग में स्वीकार किया है। उनका विश्वास था कि राग द्वारा ही वासुदेव कृष्ण प्राप्त होते हैं। प्रेम से ही संसार बंधा हुआ है। प्रेम ही वह तत्व है जिनके सहारे संसार–सागर को पार किया जा सकता है तथा प्रेम ही परमार्थ का जनक है।

5. **तर्कशील एवं वाक्चातुर्य की धनी**– गोपियों के पास तर्कों की कमी नहीं है। वे बात–बात में अपनी तर्कणा से उद्धव का उपहास, व्यंग्य, विनोद, उपेक्षा और अव्यावहारिकता की ओर संकेत करती हैं। वे प्रेमाभक्ति की प्रतिष्ठा में तर्कों के दौरान जिन पद्धतियों को अपनाती हैं उनमें से प्रमुख हैं–

(क) **हठयोग**–गोपियां हठयोग का विरोध कैसे करती हैं, यह बताया जा चुका है। अब शेष साधनों पर विचार करके ही यह माना जा सकता है कि सूर ने भक्ति की प्रतिष्ठा कैसे कराई है?

(ख) **लोकनीति**–गोपियों का पक्ष प्रेमाभक्ति का पक्ष है। वे इसकी पूर्ति के लिए लोकनीति का सहारा लेती हैं। गोपियों के विविध वाक्यों में इस माध्यम को विशेष महत्व प्राप्त है। उदाहरणार्थ–

सब तजे प्रेम के नाते।

तऊ स्वांति चातक नहिं छांडत प्रकट पुकारत ताते।

समुझत मीन मीन की बातें तऊ प्रान हठि हारत।

टिप्पणी

(ग) **अनुभूति–** गोपियों ने अपने प्रेम और भक्ति के संदर्भ को अनुभूति के माध्यम से भी प्रतिष्ठापित किया है। उद्धव के ज्ञानोपदेश को सुनकर गोपियां पहला उत्तर आंसुओं से ही देती हैं। उद्धव की ज्ञान–चर्चा के उत्तर में निकले आंसू ही सबल तर्क बन जाते हैं। शंका यह हो सकती है कि आंसू उत्तर का कार्य कैसे पूरा कर सकते हैं? इसका उत्तर बल्लभाचार्य ने दिया है। वे कहते हैं कि 'अनुभव' ही सर्वत्र महत्व का अधिकारी होता है। ज्ञानमार्गी जब पुस्तक के पृष्ठों को टटोलता है तब प्रेमभार्गी गुरु 'अनुभवसाक्ष्य' के आधार पर अपनी बात करता है।

6. **अनुभवी व्यक्तित्व**–सूरदास ने 'अनुभवसाक्ष्य' के आधार पर गोपियों से बहुत सी बातें कहलवाई हैं। उन सभी में उनकी सहृदयता के दर्शन होते हैं। उद्धव का मत ज्ञान का मत है। अतः गोपियों की अभिलाषा तो यही है कि वे हमारी बातें मान लें। इसी कारण सूर ने 'अनुभव' को प्रमाण मानकर गोपियों से अनेक तर्क दिलवाये हैं। उद्धव जी जब कृष्ण की पाती लेकर आते हैं तो गोपियां उनका कोई ठोस उत्तर नहीं देती हैं, केवल रो देती हैं और उनकी आंखों से प्रेमाश्रु छलक आते हैं। उनकी यह दशा हो जाती है–

निरखत अंक स्याम सुन्दर के बार–बार लावति छाती।
लोचन–जल कागदमसि मिलि कै है गई स्याम–स्याम की पाती।

गोपियां कृष्ण को निर्मोही बतलाती हुई रो पड़ी हैं क्योंकि उन्हें प्रेम का स्मरण हो आता है। प्रेम की अनन्यता तो इसी से प्रकट हो जाती है कि वे निष्ठुर प्रिय कृष्ण के विहर में अभी तक, जबकि उससे मिलने की कोई आशा नहीं है आंसू बहाकर रो रही हैं–

निरमोहिया सों प्रीति कीन्हीं काहे न दुख होय।
कपट–करि–करि प्रीति कपटी लै गयो मन गोय।

7. **उपालंभी**–भ्रमरगीत में गोपियों ने जिस भक्ति की प्रतिष्ठा की है उसे प्रमाणित करने के निमित्त सूर ने 'उपालंभ' को भी अपनाया है। उपालंभ या शिकवा–शिकायत के माध्यम से गोपियां अपने मन की बात को भली–भांति व्यक्त कर सकी हैं। उनके उपालंभ का आधार कृष्ण और उद्धव दोनों ही बनते हैं। उद्धव सामने हैं, वे गोपियों को कोई भी संतोषजनक उत्तर नहीं दे पाते हैं। उद्धव की समस्त ज्ञान गरिमा उस समय विलीन हो जाती है जिस समय गोपियां उनसे पूछती हैं–

काहे को गोपीनाथ कहावत।
जो पै मधुकर कहत हमारे गोकुल काहे न आवत।
सपने की पहिचानि जानि कै हमहिं कलंक लगावत।

गोपियों की नजर से कृष्ण का कपटपूर्ण व्यवहार भी छिपा नहीं है। वे उपालंभों के दौरान कृष्ण की इस प्रवृत्ति की ओर भी इंगित करती चलती हैं। उद्धव के माध्यम से वे कहते हैं–

प्रीति कर दीन्हीं गरे छुरी।

मुरली मधुर चुगाय कपटकन पाछे करत बुरी।

मुरली मधुर चैपकरि कांपों मोर चन्द्र ठटबारी।

टिप्पणी

8. **उपहास करने वाली**–भक्ति की प्रतिष्ठापना के लिए गोपियों ने उपहास को भी अपनाया है। कहने की आवश्यकता नहीं कि उद्धव के विरोध में गोपियों के दूसरे तर्क हैं जो उद्धव का उपहास करते समय दिये गये हैं। गोपियों ने उद्धव का उपहास करके उन पर अनेक व्यंग्य–बाण छोड़कर भी उन्हें निरुत्तर करने की चेष्ठा की है तथा अपने प्रेम और भक्ति के मार्ग का औचित्य प्रतिपादित किया है। वे अकाट्य तर्कों को चाहे मानें या न मानें, किंतु गोपियों के मजाक और व्यंग्य–बाण सहकर वे निरुत्तर हो जाते हैं। उपहास के अनेक संदर्भों में से दो प्रमुख संदर्भ ये हैं–

   (क) उद्धव सर्वज्ञ होकर भी मूर्ख हैं।

   (ख) उद्धव को औचित्य–अनौचित्य का ध्यान नहीं है। वे मनमाने ढंग से व्यवहार करते हैं।

   उद्धव की मूर्खता का सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि बिना–समझे बूझे ही गोपियों को शिक्षा देने के लिए आ गये हैं।

   कृष्ण भी उनके व्यंग्य–बाणों और उपहासमय वचनों का निशाना बनते हैं। उनका कथन है–

   बरुवै कुब्जा भलो कियो।

   सुनि–सुनि समाचार ऊधो मो कछुक सिरात हियो।

9. **बौद्धिकता से परिपूर्ण**–सूर की गोपियां पूरी भावुकता में ही जीती हों–ऐसी बात नहीं है। उनके पास हृदय के साथ ही मस्तिष्क भी है। वे भक्ति की प्रतिष्ठा के दौरान उद्धव से जो तर्क और प्रश्न करती हैं वे उद्धव को बगलें झांकने के लिए विवश कर देते हैं। वे हार मान लेते हैं। भोली गोपियां विविध युक्तियों से उद्धव की बुद्धिमती चेतना को झकझोरती हैं–

   हमसों कहत कौन की बातें?

   सुनि ऊधो! हम समुझत नाहीं फिरि पूछति हैं ताते।।

10. **अधिकारी भेद का सिद्धांत**–सूर की गोपियां ज्ञान और योग का विरोध करती हुई भक्ति की प्रतिष्ठापना में जो तर्क प्रस्तुत करती हैं इनमें 'अधिकारी भेद का सिद्धांत' भी महत्वपूर्ण है। इस सिद्धांत का अर्थ है–सभी मनुष्यों की रुचियों में समानता नहीं होती है, अतः उनकी साधना के ढंग भी पृथक–पृथक होते हैं। हर मनुष्य हर प्रकार की साधना पद्धति के अनुसरण का अधिकारी नहीं होता। गृहस्थ और संन्यासी की साधना में समानता नहीं हो सकती है, उसी प्रकार बालक, वृद्ध, युवक, स्त्री आदि सबकी साधना पद्धतियां एक समान नहीं हो सकती हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

29. 'अष्टछाप' के कवियों में वल्लभाचार्य के शिष्य कौन थे?
30. गोस्वामी हरिराम के अनुसार 'अष्टछाप' के कवि श्रीनाथ जी के लीलात्मक स्वरूपों के कितने रूप मानते हैं?
31. सूर की गोपियां किस भाव की उपासिका हैं?
32. गोपियों ने प्रेम और भक्ति की प्रतिष्ठा के लिए किसे साधनवत् स्वीकार किया है?

1.12 पाठांश

राग बिलावल

काहे को रोकत मारग सूधो?
सुनहु मधुप! निर्गुन–कंक तें राजपंथ क्यों रूधो?
के तुम सिखै पाठाए कुब्जा, 'कै' कही स्यामधन जू धौं?
ताको कहा परेखी कीजै जानत छाछ न दूधौ।
सूर मूर अक्रूर गए लै ब्याज निबेरत ऊधौ।।62।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद सूरदास विरचित सूरसागर के दशम् स्कन्ध के 'भ्रमरगीत सार' प्रकरण से उद्धृत है। सगुण भक्ति का मार्ग अत्यंत सरल है। निर्गुण की आराधना द्राविड़ी प्राणायाम है। 'जो बनि आवे सहज में ताही में चित देह' वाली बात हो स्पष्ट करती हुई प्रेम के मार्ग को निर्गुण की अपेक्षा सरल बताती हुइ गोपियां उद्धव से कहती हैं–

व्याख्या

हे उद्धव जी! तुम हमारे सीधे सरल मार्ग (प्रेम मार्ग) में क्यों बाधा उपस्थित करते हो? अरे सुनो! तुम अपने निर्गुण ब्रह्म रूपी कांटों से सगुण–भक्ति रूपी प्रशस्त मार्ग में रुकावटें क्यों खड़ी करते हो? मालूम होता है कि तुम्हें या तो कुब्जा ने सिखा–पढ़ाकर भेजा है अथवा तुम्हें घनश्याम ने ही सिखा–पढ़ाकर भेजा है। हो सकता है उन्होंने हमसे अपना पिंड छुड़ाने के लिए ऐसा किया हो! कुछ भी हो और किसी ने भी तुम्हें भेजा हो, पर वेद, पुराण स्मृति ग्रंथ सभी छान डालो और बताओ कि कहीं भी युवतियों के लिए योग का विधान लिखा हुआ है? यदि यह बात हो कि भले ही वेद पुराण आदि में नहीं लिखा है, तथापि श्रीकृष्ण का संदेश होने के कारण वह हमको मान्य होना चाहिए कि उसका समाधान गोपियां इस प्रकार करती हैं कि भला उस मूर्ख का क्या विश्वास किया जाए जो छाछ और दूध के मध्य उत्कृष्टता का विचार नहीं कर सकता है। सूरदास कहते हैं कि गोपियां कहती हैं कि मूलध ान रूपी श्रीकृष्ण को तो अक्रूर जी ले गए और ब्याज रूपी उनकी स्मृति को हमसे अलग करने के लिए अब आप पधारे हैं।

विशेष

1. 'निर्गुण कंटक' पद में रूपक अलंकार है।
2. 'राजपंथ क्यों रूँधो' में केवल उपमान का कथन होने से रूपकातिशयोक्ति अलंकार है।
3. 'कै तुम सिखै पठाए' में संदेह अलंकार का प्रयोग हुआ है।
4. उग्रता संचारी भाव की व्यंजना।

टिप्पणी

राग सारंग

निर्गुन कौन देस की बासी?
मधुकर! हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति साँच, न हाँसी।
को हे जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी?
कैसो बरन, भेस है कैसो केहि रस कै अभिलासी।।
पावैगो पुनि कियो आपनो जो रे! कहैगो गाँसी।।
सुनत मौन है रह्यो ठग्यो सो सूर सबै मति नासी।।64।।

प्रसंग

प्रस्तुत सूरदास विरचित 'सूरसागर' के दशम् स्कन्ध के 'भ्रमर गीत सार' प्रकरण से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में गोपियां उद्धवजी द्वारा बताए गए निर्गुण ब्रह्ममय योग के मार्ग का विरोध करती हैं एवं निर्गुण ब्रह्म के स्वरूप के विषय में पूछ कर उद्धव का उपहास करती हैं। गोपियां कह रही हैं कि वह निर्गुण ब्रह्म जिसके बारे में तुम बता रहे हो वह कैसा दिखता है? कौन उसकी माता एवं कौन उसका पिता है? वह क्या पहनता है? कैसा उसका रंग है? हे मधुकर! यदि तू कपट वाणी बोलेगा तो किये का फल भोगेगा।

व्याख्या

गोपियां निर्गुण के नाम का उपहास उड़ाती हुई पूछती हैं–मधुकर! तुम्हारा वह निर्गुण ब्रह्म किस देश का रहने वाला है? हम सौगंध खाकर कहती हैं कि हम तुमसे यह प्रश्न पूरी गंभीरता के साथ कर रही हैं–किसी प्रकार का मजाक नहीं कर रही हैं। अतः तुम हमारे इस सवाल पर नाराज मत होना, और राजी मन से हमें यह सब समझा दो कि उसका कौन पिता है, कौन उसकी माता कहलाती है, उसकी कौन पत्नी है तथा उसकी दासी का नाम क्या है? उसका रंग और वेष–भूषा कैसी है और वह किस रस का अभिलाषी है अर्थात उसे किस प्रकार के कार्यों में आनंद आता है?

फिर गोपियां उद्धव को सावधान करती हैं कि हे भ्रमर! तुम हमको ठीक–ठीक उत्तर देना। यदि तुमने किसी प्रकार के छल कपट की बात कही तो फिर तुम्हें अपनी करनी का फल भोगना पड़ेगा। सूरदास कहते हैं कि गोपियों की इस तरह की बातें सुनकर उद्धव ठगे से अवाक रह गए, उनकी सारी अक्ल मारी गई।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में सगुण भक्ति की श्रेष्ठता का उपस्थापन किया गया है।
2. प्रस्तुत पद से गोपियों के वाक्चातुर्य एवं तर्कशील बुद्धि का परिलक्षण होता है।
3. मधुकर के माध्यम से अपनी बात कहने से पद में अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार है।

टिप्पणी

राग केदार

नाहिंन रह्यो मन में ठौर।
चलत, चितवत, दिबस, जागत, सपन सोवत राति।
ह्रदय तें वह स्याम मूरति छन न इत उत जाति।।
कहत कथा अनेक ऊधो लोक–लाभ दिखाय।
कहा करौं तन प्रेम–पूरन घट न सिंधु समाय।।
स्याम गात सरोज–आनन ललित अति मृदु हास।
सूर ऐसे रूप कारन मरत लोचन प्यास।। 65।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद सूरदास विरचित 'सूरसागर' के दशम् स्कंध के भ्रमरगीत प्रकरण से उद्धृत है। प्रस्तुत पद में गोपियां उद्धव जी कहती हैं कि अब हमारे मन में किसी और के लिए कोई स्थान नहीं हैं क्योंकि उसमें श्रीकृष्ण विराजे हुए हैं। दिन में वह सुंदर हंसी के साथ जागते रहते हैं एवं रात में सपने के साथ सोते रहते हैं। अतः हमारे ह्रदय से उन मोहन की छवि दूर ही नहीं हटती।

व्याख्या

इस पद में गोपियां उद्धव को संकेत करती हुई कह रहीं है कि वे उद्धव हमारे मन में कृष्ण बसे हुए हैं वहां अब जगह खाली नहीं है। अतः किसी दूसरे को अर्थात् तुम्हारे निर्गुण ब्रह्म को हम अपने ह्रदय में किस प्रकार बसाएं। चलते हुए देखते हुए, दिन में जागते हुए, रात में सोते हुए या स्वप्न देखते हुए हमारे ह्रदय से क्षण–भर के लिए भी श्रीकृष्ण की वह श्याम मूर्ति इधर–उधर नहीं जाती, अर्थात् श्रीकृष्ण सदैव हमारे ह्रदय में रहते हैं। हे उद्धव, तुम मुक्ति आदि अनेक लाभ बताकर अनेक प्रकार की कथा सुनाते हो पर क्या करें, हमारा यह शरीर और हमारा मन श्रीकृष्ण के प्रेम से परिपूर्ण है। इस छोटे से शरीर में तुम्हारा व्यापक ब्रह्म आ भी तो नहीं सकता, क्योंकि घड़े में सागर नहीं समाया करता। श्रीकृष्ण के श्याम शरीर, कमल के समान सुंदर नेत्र, सुंदर और अत्यंत मृदुल हंसी के सौंदर्य पर ही हमारे नेत्र आकर्षित हैं और उसे देखने के लिए अत्यधिक लालायित हैं।

विशेष

1. 'कमल आनन' पद में रूपक अलंकार है।
2. प्रस्तुत पद में गोपियों के कृष्ण के प्रति एक निष्ठ प्रेम का परिलक्षण होता है।
3. इस पद में गोपियों द्वारा स्पष्टतः संकेत किया जा चुका है वे निर्गुण ब्रह्म को स्वीकार नहीं करेंगी।

राग नट

मोहन माँग्यो अपनो रूप।
या ब्रज बसत अँचै तुम बैठीं, ता बिनु यहाँ निरूप।।

मेरे मन, मेरो अलि! लोचन लै जो गए धुपधूप।
हमसों बदलो लेन उठि धाए मनो धारि कर सूप।।
अपनो काज सँवारि सूर, सुनु हमहिं बतावत कूप।
लेवा–दइ बराबर में है, कौन रंक को भूप।।82।।

टिप्पणी

प्रसंग

प्रस्तुत पद सूरदास विरचित सूरसागर के दशम् स्कन्ध के 'भ्रमर गीत सार' प्रकरण से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में निर्गुण निराकार पर व्यंग्य करते हुए गोपी राधा से कह रही है– सखी, यहां ब्रज में रहते समय तुमने मदनगोपाल का सारा रूप पी लिया था। अतः मथुरा में जाकर वह एकदम निराकार हो गए हैं। उन्होंने उद्धव जी को तुम्हारे पास अपना रूप वापस मांग लाने के लिए भेजा है। उनका रूप लौटा दो। इस पर राधा जी के द्वारा उद्धव जी को लेन–देन का नियम समझाकार वाक्चातुर्य पूर्वक उत्तर दिया गया है।

व्याख्या

राधा जी सखि को कह रही हैं कि हे सखि, श्रीकृष्ण ने भी तो मेरे शुद्ध और चोखे मन को जो एक मात्र श्रीकृष्ण के प्रेम में ही अनुरक्त था अपनी तिरछी चितवन द्वारा अपहृत किया और ले गए, अतः हमने कौन सा अक्षम्य अपराध किया है। उनका यदि मैं रूप पी बैठी तो वे भी तो हमारा विशुद्ध मन उठा ले गए। ठीक ही तो है, उन्होंने जैसा व्यवहार हमारे साथ किया हमने भी उनके साथ वैसा ही व्यवहार कर दिया और अंधेर तो देखिए कि उद्धव वहां से हमसे बदला लेने के लिए हाथों में सूप लेकर चले आए हैं। अपना काम संवारने के लिए हमें कुएं में धकेलना चाहते हैं। लेकिन लेन–देन में तो सब समान होते हैं। न तो कोई गरीब होता है न ही कोई अमीर होता है।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में अप्रस्तुत प्रशंसा अलंकार का प्रयोग किया गया है।
2. 'अचै बैठी' में रूढ़ि लक्षणा का प्रयोग हुआ है।

राग सोरठ

निरमोहिया सों प्रीति कीन्हीं काहे न दुख होय?
कपट करि–करि प्रीति कपटी लै गयो मन गोय।।
काल मुख तें काढ़ि आनी बहुरि दीन्हीं ढोय।
मेरे जिय की सोई जानै जाहि बीती होय।।
सोच, आँखि मँजीठ कीन्हीं निपट काँची पोय।
सूर गोपी मधुप आगे दरकि दीन्हों रोय।। 84।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद सूरदास विरचित 'सूरसागर' के दशम् स्कंध के भ्रंमरगीतसार' नामक प्रकरण से अवतरित है।

टिप्पणी

प्रस्तुत पद में गोपियों की वेदना का परिलक्षण होता है। गोपियों ने कृष्ण से पूर्ण समर्पण के साथ प्रेम किया, किंतु कृष्ण ने मथुरा जाने के बाद एक बार भी सुधि नहीं ली। गोपियों को इस बात का दुःख है कि कृष्ण जैसे निष्ठुर हृदय वाले व्यक्ति से प्रेम क्यों किया। अपनी इसी पीड़ा को अभिव्यक्ति देती हुई गोपियां कह रही हैं कि

व्याख्या

कृष्ण बड़े ही निर्मोही हैं हमने उन्हीं से प्रेम किया और आज उसी का परिणाम हमें भोगना पड़ रहा है। वह कपटी हमारे साथ दिखावटी प्रेम करते रहे, कपट–जाल रचते रहे और खाली प्रेम दिखाते रहे तथा हम उनके ऐसे प्रेम को सच मानती रहीं। उन्होंने जब देखा कि हम उनके प्रेम में पूरी तरह निमग्न हो गई हैं तब एक दिन हमारा मन चुराकर वे यहां से चुपचाप चले गए। गोपियां कहती हैं कि उद्धव को ब्रज में आया देखकर हमने यह समझ लिया था कि वे कृष्ण–विरह रूपी काल के मुख से हमारा उद्धार करने के निमित्त आए हैं, किंतु अपने निष्ठुर व्यवहार और निर्गुण ज्ञानोपदेश के द्वारा हमें उसी दुख के मुख में डाल दिया। गोपियां कहती हैं कि हमारी वेदना को नहीं समझ सकता है जिसने स्वयं ने अनुभव किया हो। अब हम कृष्ण के वियोग के कारण रो रोकर अपनी आंखों मजीठ के रंग के समान लाल बना रही हैं। हमारी आंखों की स्थिति ठीक वैसे ही है जैसे कच्ची और गीली लड़कियों को फंक–फूंककर अपनी आंखें धुएं से लाल करके कोई रोटी बनाने का प्रयत्न करे। सूरदास जी कहते हैं कि इस प्रकार कृष्ण की निर्ममता से व्यथित होकर उनके उपेक्षापूर्ण व्यवहार से दुखी होकर उन्हीं को याद करती हुई फूट–फूटकर रो पड़ी।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में लोकोक्ति अलंकार है।
2. इस पद में गोपियों की आंतरिक वेदना प्रत्यक्ष हो उठी है।

राग कान्हरो

बहुरो ब्रज यह बात न चाली।
वह जो एक बार ऊधो कर कमलनयन पाती दै घाली।।
पथिक! तिहारे पा लागति हौं मथुरा जाव जहां बनमाली।
करियो प्रगट पुकार द्वार है 'कालिंदी फिरि आयो काली'।।
जबै कृपा जदुनाथ कि हम पै रही, सुरुचिजो प्रीति प्रतिपाली।
मांगत कुसुम देखि द्रुम ऊँचे, गोद पकरि लेते गहि डाली।।
हम ऐसी उनके केतिक हैं अग–प्रसंग सुनहु री, आली!
सूरदास प्रभु रीति पुरातन सुमिरि राध–उर साली।। 87।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद सूरदास विरचित 'सूरसागर' के दशम् स्कंध के 'भ्रमरगीतसार' प्रकरण से लिया गया है।

टिप्पणी

प्रस्तुत पद में राधा की वेदना का चित्रांकन किया गया है। उद्धव ब्रज से मथुरा से लौट गए, किंतु उनके जाने के बाद भी कृष्ण का कोई प्रेम संदेश प्राप्त नहीं हुआ है। अपनी इस वेदना को राधा किसी पथिक के समक्ष व्यक्त कर रही है।

व्याख्या

राधा कह रही है कि हे पथिक! एक बार उद्धव के साथ श्रीकृष्ण ने अपनी जो पत्रिका भेजी उसके पश्चात् उनके प्रेम–संदेश की कोई भी, कैसी भी चर्चा ब्रज में नहीं चली। हे पथिक! मैं तुम्हारे पैरों में गिरकर कहती हूं कि तुम हमारा संदेश लेकर वनमाली कृष्ण के पास चले जाओ। और स्वयं उनके द्वार पर जाकर कहना कि हे कृष्ण यमुना में फिर से कालिया नाग आ गया है। जब तुम ऐसा कहोगे तो संभव है कि कालिया नाग को दूर करने कृष्ण वापस ब्रज आ जाएं। जब कृष्ण ब्रज में रहते थे तो हमारे प्रति असीम प्रेम और कृपाभाव रखते थे। मैं जब कभी ऊंचे वृक्ष के फूल की कामना करती तो वे गोद में लेकर वृक्ष की अली पकड़ा देते थे। हमारी जैसी उनकी न जाने कितनी प्रेमिकाएं हैं और यही नहीं, उनके ऐसे प्रेम को भी छोटी–बड़ी अनगिनत कहानियां भी हैं। सूरदास जी कहते हैं कि इस प्रकार पुरानी बातों को याद करके राधा का मन वेदना से भर गया।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में स्मरण अलंकार है।
2. प्रस्तुत पद में राधा का कृष्ण के प्रति अत्यधिक प्रेम प्रकाशित हो रहा है।

राग सारंग

ऊधो! जोग बिसरि जनि जाहु।
बाँधहु गांठि कहूँ जनि छूटै फिरि पाछे पछिताहु।
ऐसी वस्तु अनूपम मधुकर गरम न जानै और।
ब्रजवासिन के नाहिं काम की, तुम्हरे ही है ठौर।।
जो हरि हित करि हमको पठयो सो हम तुमको दीन्हीं।
सूरदास नरियर ज्यों विष को करै बंदना कीन्हीं।।120।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद सूरदास विरचित सूरसागर के दशम् स्कन्ध के 'भ्रमर गीत सार' प्रकरण से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में उद्धव के निर्गुण ब्रह्म एवं योग की निरर्थकता को गोपियों के द्वारा उद्घाटित किया गया है। गोपियां कह रही हैं कि उद्धव जी! अपने इस योग को भली भांति गांठ बांधकर गठिया लो। ऐसा न हो तुम इसे कहीं भूल जाओ। यह कहीं गिर जाए। फिर पीछे व्यर्थ पछताते फिरोगे। तुम्हारे ही हाथ मनमोहन ने बड़े प्रेम से इसे हमारे पास भेजा है। हम भी तुम्हें उतने ही प्रेम से इसे भेंट दिए दे रहे हैं। जैसे ब्राह्मण यजमान को रोरी का टीका लगाने पर उसके द्वारा दिए गए नारियल को उसी को वापस कर देता है, वैसे ही हम तुम्हारे द्वारा प्रदत्त योग को तुम्हें ही लौटाए दे रही हैं।

टिप्पणी

व्याख्या

गोपियां उद्धव जी को कहती हैं कि अपने योग को वे भलीभांति गांठ बांधकर रख लें। यदि वे ऐसा नहीं करेंगे तो बहुत बेशकीमती पदार्थ उनके हाथ से निकल जाएगा। अतः इसे गांठ में दृढ़तापूर्वक बांध लो, कहीं खुलने पर तुम्हें पछताना न पड़े। यदि गांठ खुल गई तो इसमें सुरक्षित बहुमूल्य योग कहीं खो जाएगा और तब आपका तो सर्वस्व चला जाएगा। तुम्हारी इस अनुपम और बहुमूल्य योग वस्तु का मर्म जानने वाला यहां कोई नहीं है। अतः यदि किसी को मिल भी जाए तो कौड़ी के बराबर भी उसका मूल्य नहीं आंक पाएगा। तुम इसे मथुरा के विद्वानों को दिखाओ, वे इसे अवश्य ग्रहण करेंगे। इस बहुमूल्य योग को श्रीकृष्ण ने बड़ी कृपा से हमारे पास भेजा है, अब उनकी भेजी हुई वस्तु को हम आपको भेंट कर रही हैं। सूरदास के शब्दों में गोपियां कहती हैं कि हे उद्धव, तुम जो यह योग रूपी विषैला नारियल लाए, उसे दूर से ही प्रणाम करते बनता है।

विशेष

1. प्रस्तुत पद्य की 'ज्यों विष नारियर' पंक्ति में पूर्णोपमा अलंकार है।
2. 'सूरदास' 'ज्यों विषनारियर, करहीं बंदन कीनौ' पंक्ति तुलनीय 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये'।
3. उद्धव शतक के रचयिता रत्नाकर ने भी यह प्रसंग उठाया है–

"ज्ञान की गठरी को गाँठि छरकि न जान्यो कब,
हरैं हरैं पूँजी सब सरकि कछार में।
डार में तमालनि की कछु बिरमानी अस
कछु असझानी है करीरनि की झार मैं।"

राग धनाश्री

ऊधो! मन नहिं हाथ हमारे।
रथ चढ़ाय हरि संग गए लै मथुरा जबै सिधारे।।
नातरु कहा जोग हम छाँड़हि अति रुचि कै तुम ल्याए।
हम तो झकति स्याम की करनी, मन लै जोग पठाए।
अजहूँ मन अपनो हम पावै तुमतें हो तो होय।
सूर, सपथ हमें कोटि तिहारी कहौ करेंगी सोय।। 130।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद सूरदास विरचित सूरसागर के दशम् स्कन्ध के 'भ्रमर गीत सार' प्रकरण से लिया गया है।

प्रस्तुत पद में गोपियां अपने वाक्चातुर्य प्रमाण दे रही हैं। इस पद में उद्धव जी से वे कहती हैं कि संसार में सब काम मन से ही होते हैं पर हमारा मन हमारे पास नहीं है। हरि जब अक्रूर के साथ रथ पर चढ़कर मथुरा जाने लगे थे तभी वे हमारे मन भी अपने साथ ले गए।

टिप्पणी

व्याख्या

गोपियां उद्धव जी से कह रही हैं कि हम तुम्हारी बात मानने में तत्पर हैं। किंतु हमारा मन हमारे वश में नहीं है। वह तो कृष्ण का हो गया है। मथुरा जाते समय श्रीकृष्ण हमारे मन को भी रथ पर बिठाकर साथ ले गए। यदि ऐसा न होता तो हम तुम्हारी योग की बातों को बड़े प्रेम से स्वीकार करतीं और अपना लेतीं। तुम्हीं सोचो कि यदि हमारे मन पर हमारा अधिकार होता तो हम तुम्हारे द्वारा दिए जा रहे योग को जिसे तुम रुचि से हमारे पास लाए हो, हम छोड़ती? हम तो कृष्ण के उस व्यवहार पर झींक रही हैं कि उन्होंने हमारे मन को तो ले लिया, किंतु अब उसे वापस न करके बदले में हमारे पास योग भेजा है। बिना मन को वापस लिए अथवा किए क्या योग–साधना को अपनाने पर जोर देना उचित है। सूरदास कहते हैं कि गोपियों ने कहा कि हे उद्धव हम तुम्हारी करोड़ों की शपथ खाकर कह रही हैं कि यदि हमारा मन हमारे पास वापस आ जाएगा तो तुम जो भी कहोगे, उसको हम स्वीकार कर लेंगी।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में गोपियों के कृष्ण के प्रति उत्कट प्रेम का परिलक्षण होता है।
2. समासोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है।
3. योग पर कृष्ण प्रेम का भारी सा परिलक्षित होता है।

ऊधो! हम ही हैं अति बौरी।
सुभग कलेवर कुंकुम खौरी। गुंजमाल अरु पीत पिछौरी।।
रूप निरखि दृग लाग ढोरी। चित चुराय लयो मुरति सो री।।
गहियत सो जा समय अँकोरी। याहि तें बुधि कहियत बौरी।
सूर स्याम सों कहिय कठोरी। यह उपदेस सुने तें बौरी।160।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद सूरदास विरचित सूरसागर के दशम् स्कन्ध के 'भ्रमर गीत सार' प्रकरण से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में कृष्ण विरह में पीड़ा भोगने वाली गोपियां उद्धव के योग–संदेश से और अधिक दुखी हो जाती हैं। वे पगला–सी जाती हैं। अतः यहां वे अपनी इसी वेदना को व्यक्त करती हुई उद्धव से कह रही हैं कि हे उद्धव, हम तुम्हें दोष क्यों दें? तुम्हारा कोई दोष नहीं है। वास्तव में हम स्वयं ही बावली बनी हुई हैं।

व्याख्या

गोपियां कहती हैं कि हे उद्धव! अपनी समस्त विपत्ति का कारण हम स्वयं ही हैं। हम किसी को दोष क्यों दें? हम स्वयं ही अत्यंत पगली बन गई हैं। उनके सुंदर–मनोरम शरीर उस पर लगे हुए कुमकुम के तिलक, कण्ठ में पड़ी हुई गुंजाओं की माला तथा उनके शरीर पर सुशोभित पीताम्बर की शोभा को देखकर हमारे ये नेत्र उनके पीछे लग गए। उनकी उस मधुर मूर्ति ने हमारे हृदय को चुराकर अपने वश में कर लिया था। हमने उनके रूप पर

मोहित होकर उनको अपने आलिंगन पाश में बांध लिया था। उसी को देखकर सब लोग हमको पगली कहने लगे थे। गोपियां कहती हैं कि कृष्ण से जाकर तुम यह कहना कि तुम बहुत कठोर हो गये हो, जो तुमने हमारे लिए यह योग का संदेश भेजा है। इस संदेश को विशेषकर योग जैसे उपदेश कोई क्यों कर सुन समझ सकता है?

विशेष

1. इस पद के अंतर्गत गोपियों का वाक्चातुर्य देखते ही बनता है।
2. 'चित्त चुराय लयो' जैसा प्रयोग रूढ़ि–लक्षणा का उदाहरण है।

ऊधो! मोहि ब्रज सिरत नाहीं।
हंससुता की सुन्दरि कगरी अरु कुंजन की छाहीं।।
वै सुरभी, वै बच्छ दोहनी, खरिक दुहावन जाहीं।
ग्वालबाल सब करत कुलाहल नाचत गहि गहि बाहीं।।
यह मथुरा कंचन की नगरी मनि–मुक्ताहाल जाहीं।
जबहिं सुरति आवति वा सुख की जिय उमगत, तनु नाहीं।।
अनगन भांति करी बहु लीला जसुदा नंद निबाहीं।
सूरदास प्रभु रहे मौन है, यह कहि कहि पछिताहीं।।400।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद सूरदास विरचित सूरसागर के दशम् स्कन्ध के 'भ्रमर गीत सार' प्रकरण से उद्धृत है। उद्धव ने ब्रज से मथुरा लौटकर कृष्ण को ब्रजवासियों द्वारा भेजे हुए सारे संदेश सुना दिए और उनसे ब्रज लौट जाने का आग्रह किया। उद्धव के उस आग्रह को सुन, कृष्ण उद्धव से कह सकते हैं कि–

व्याख्या

हे उद्धव! मुझसे ब्रज की याद नहीं भुलाई जाती। मुझे सदैव ब्रज की याद सताती रहती है। यमुना का वह सुंदर तट और कुंजों की सघन छाया, वे गायें, वे उनके बछड़े और दोहनी लेकर गोशाला में जाना तथा ग्वाल–बालों का वह कोलाहल मचाना और एक–दूसरे के हाथ पकड़–पकड़कर नाचना–इन सबकी स्मृति को मैं क्षणभर के लिए भी नहीं भुला पाता। तुम्हारी यह मथुरा यद्यपि सोने की नगरी है, जहां मणि–मुक्ताओं के रूप में अगाध–संपत्ति और वैभव बिखरा रहता है परंतु फिर भी जब मुझे ब्रज में भोगे गए सुख की याद आती है, तो मन वहां जाने के लिए उमड़ने लगता है, व्याकुल हो उठता है और मैं अपनी सारी सुध ा–बुध भूल जाता हूं। मुझे अपने शरीर का तनिक भी होश नहीं रहता ('तनु नाहीं' का अर्थ भी हो सकता है कि मेरा मन ब्रज जाने के लिए उमड़ने लगता है, परंतु शरीर जाने को प्रस्तुत नहीं होता। क्योंकि यह शरीर यहां के राज–काज में इतना व्यस्त रहता है कि इस कर्तव्य को त्याग मेरा मन ब्रज जाने को प्रस्तुत नहीं होता। यदि मैं यहां से चला गया तो फिर यहां का काम कौन सम्हालेगा? साथ ही इससे यह भाव भी लिया जा सकता है कि

टिप्पणी

मेरा मन तो ब्रजवासियों के उस स्नेह की याद कर वहां जाने को उत्सुक हो उठता है, परंतु राज–सुख का अभ्यस्त बन गया यह शरीर वहां नहीं जाना चाहता।)

भाव यह है कि मथुरा के इस राजसुख और वैभव की तुलना में मुझे ब्रज ही अच्छा और प्रिय लगता है।

मैंने ब्रज में नाना भांति की अगणित लीलाएं की थीं, बड़े ऊधम मचाए थे, परंतु माता यशोदा और बाबा नन्द ने मुझे पूरी तरह से निभा लिया था, मेरी सारी शैतानियों को सह लिया था और कभी भी मन मैल नहीं किया था। सूरदास कहते हैं कि कृष्ण इतना कहकर, भावातिरेक के कारण कण्ठावरोध होने से मौन होकर रह गए, उनसे आगे कुछ भी नहीं बोला गया। फिर वह बार–बार इन्हीं बातों को कह–कहकर पछताते रहे कि ब्रजवासियों के ऐसे निर्मल, निश्छल स्नेह को त्याग वे मथुरा की राजनीति के प्रपंचों में क्यों आ फंसे जिनके कारण उनका ब्रज लौटकर जाना तक असंभव हो उठा है।

विशेष

1. इस पद में कृष्ण द्वारा ब्रज के प्रति अपनी भाव–भीनी श्रद्धांजलि अर्पित करवा कर सूर ने भ्रमरगीत के मूल उद्देश्य को अंतिम रूप से स्पष्ट कर दिया है। कृष्ण मथुरा के राजसी–वैभव के बीच रहते हुए भी ब्रज के उस निश्छल–निर्मल प्रेम को नहीं भुला सके थे। उन्होंने ज्ञान–गर्वीले उद्धव को इसी प्रेम की अनुभूति कराने ब्रज भेजा था। इसके माध्यम से वे निर्गुणोपासना की तुलना में निश्छल प्रेमा–भक्ति का महत्व स्थापित करना चाहते थे। यह पद उसी महत्ता की स्थापना कर रहा है।
2. संपूर्ण पद में स्मरण अलंकार है।
3. कोमल भावों की अनुभूति–परक अभिव्यक्ति ने पद को अत्यंत मार्मिक और प्रभावपूर्ण बना दिया है।

गतिविधि

सूरदास व प्रेमचंद बाल मनोविज्ञान के कवि व लेखक थे। इनके बाल मनोविज्ञान का अध्ययन कर बाल मनोविज्ञान पर एक आलेख तैयार कीजिए।

क्या आप जानते हैं?

सूरदास जी की प्रसिद्ध रचना 'सूरसागर' में सवा लाख पद संगृहीत थे परंतु अब इसके सात–आठ हजार पद ही उपलब्ध होते हैं।

1.13 सारांश

कृष्ण भक्ति का स्वरूप संस्कृत काव्यों में प्राचीन काल से ही संपूर्ण रूप से विकसित हो गया था। प्रथम शताब्दी में अश्वघोष द्वारा रचित बुद्धचरित में गोपाल कृष्ण की लीलाओं

का वर्णन किया गया है। हाल सातवाहनों ने लोक प्रचलित प्राकृत गाथाओं का संग्रह किया। इन गाथाओं में कृष्ण की लीलाओं के साथ राधा, गोपी और यशोदा आदि का वर्णन किया गया है।

टिप्पणी

सूरदास की सूरसारावली में अनेक ऐसे पदों की रचना की गई है जिनका वर्णन सूरसागर में प्राप्त नहीं होता। सूरदास जी की भक्ति भावना का मेरुदंड पुष्टिमार्ग का सिद्धांत 'भगवदनुग्रह' है। इसी सिद्धांत को आधार मानकर उन्होंने वात्सल्य, सख्य और माधुर्य भाव की अनेक पद्धतियों की रचना की। पुष्टिमार्ग पर भगवान के अनुग्रह पर अधिक बल दिया जाता है। सूर–साहित्य में नारद–भक्ति सूत्र की ग्यारह आसक्तियों का वर्णन है। सूर के कृष्ण सुंदरता, प्रेम, सद्भावना, मित्रता व एकता आदि के प्रतीक के रूप में हम सबके समक्ष प्रस्तुत हैं। सूरदास जी ने अपने आराध्य देव का बड़े ही निश्छल रूप में वर्णन किया है जो अत्यंत उच्च कोटि का है।

वल्लभाचार्य ने यूं तो भक्ति का विवेचन करते हुए तीन मार्गों को परिलक्षित किया, यथा– मर्यादा मार्ग, प्रवाह मार्ग और पुष्टिमार्ग। परंतु उनका अत्यधिक बल पुष्टिमार्ग पर ही स्थापित रहा। वल्लभाचार्य के कथनानुसार भक्ति का सबसे सर्वश्रेष्ठ मार्ग 'पुष्टिमार्ग' ही है। पुष्टिमार्ग 'अनुग्रह' के भाव पर निर्भर है।

सूरदास का साहित्य तत्कालीन राजनीतिक घात–प्रतिघातों तथा सामाजिक क्रियाओं–प्रतिक्रियाओं से अछूता है। उनका साहित्य कृष्ण रस से सराबोर है। उनके अनुसार सभी लोग विविध दुखों से घिरे हुए हैं और उनके सभी प्रकार के दुखों का निवारण श्रीकृष्ण की लीलाओं में प्रवेश के द्वारा संभव है।

भ्रमरगीत शब्द 'भ्रमर' तथा 'गीत' दो शब्दों के मेल से बना है। इसका प्रथम शब्द भ्रमर विशेष महत्व रखता है। इसे 'भंवरा' भी कहा जा सकता है। भ्रमर अथवा भंवर रस का लोभी तथा प्रेम प्रवंचक रसिक व्यक्ति का प्रतीक माना गया है। भ्रमर कभी किसी एक कली या पुष्प का रसपान करके तृप्त नहीं होता।

सूरदास एक सोद्देश्य कलाकार थे। उन्होंने 'सूरसागर', 'साहित्य लहरी' तथा 'सूरसारावली' तीन काव्य कृतियों की रचना की। प्रत्येक रचना के पीछे कवि का कोई–न–कोई उद्देश्य अवश्य रहा है। 'भ्रमरगीत' का आधार श्रीमद्भागवत है। सूरदास ने हिंदी साहित्य में भ्रमरगीत प्रसंग को आधार बनाकर निर्गुण तथा निराकार भक्ति की अपेक्षा सगुण तथा साकार भक्ति को श्रेष्ठ सिद्ध कर दिखाया। अतः हिंदी में भ्रमरगीत परंपरा का उद्भव सूरदास के भ्रमरगीत का अनुवाद मात्र है। इसमें दोहा, चौपाई तथा सार दोहा छन्दों का प्रयोग किया गया है। इसमें न तो विशेष मान्यता है और न ही ज्ञान वैराग्य की चर्चा। सूरदास भ्रमरगीत द्वारा निर्गुण ब्रह्म के स्थान पर साकार ब्रह्म अर्थात श्रीकृष्ण की प्रतिष्ठा स्थापित करना चाहते हैं। कवि का दृढ़ विश्वास था कि उपासना तथा पूजा के लिए निर्गुण ब्रह्म की कल्पना करना व्यर्थ है। सूरदास पुष्टि–मार्गी कवियों में प्रमुख कवि हैं। पुष्टिमार्ग से दीक्षा लेने से पहले वे दास्य भाव के पद गाया करते थे, परंतु स्वामी वल्लभाचार्य से प्रेरणा लेकर वे माधुर्य भक्ति के पदों की रचना करने लगे। उन्होंने

पुष्टिमार्ग के सिद्धांतों के अनुसार श्रीकृष्ण की बाल–लीला तथा प्रेमलीला का व्यापक चित्रण किया।

बाल मनोभावों तथा बाल–अन्तःप्रवृत्तियों का चित्रण करने में सूरदास एक सिद्धहस्त कवि हैं। उन्होंने बालकों के हृदयगत मनोभावों, बुद्धि, स्पर्धा, खीझ आदि के बड़े हृदयग्राही चित्र अंकित किए हैं। सूरदास ने वात्सल्य के संयोग पक्ष के साथ–साथ उसके वियोग पक्ष का मर्मस्पर्शी वर्णन किया है। वियोग वात्सल्य की प्रथम स्थिति तब उत्पन्न होती है जब कृष्ण मथुरा गमन करते हैं। उस समय ऐसा लगता है कि सूरदास स्वयं यशोदा के रूप में अपनी आंखों से आंसू बहा रहे हैं। उनके प्रत्येक शब्द से वात्सल्य का स्रोत उमड़ रहा है।

सूरदास ब्रज भाषा में साहित्य रचना की परंपरा का निर्माण करने वाले महत्वपूर्ण कवि हैं। यही कारण है कि कुछ विद्वान सूरदास को ब्रजभाषा का बाल्मीकि कहते हैं। सूरदास ब्रजभाषा के 'आदि कवि' भले ही न हों, लेकिन वे ब्रजभाषा के पहले महान कवि अवश्य हैं। सूरदास की अपनी कविता में ब्रजभाषा की अभिव्यक्तिशक्ति और सौंदर्य का जो रूप दिखाई देता है वह आश्चर्यजनक है। सूर की ब्रजभाषा में हमें भाषा के प्रौढ़ एवं व्यापक रूप के दर्शन होते हैं। वह अपनी प्रसंगानुकूलता के कारण कहीं लोक भाषा है तो कहीं परिनिष्ठित भाषा। रसानुकूल रागों के अनुशासन के कारण सूर की ब्रजभाषा काव्य भाषा के साथ ही संगीत की भी भाषा बन गई।

सूरकाव्य की राधा चंचल, चपल, चतुर नवयौवना है जो अपने अद्भुत सौन्दर्य के बल पर श्रीकृष्ण की प्रेयसी बनती है, परंतु अपने इसी सौंदर्य के कारण दारूण मानिनी भी बन जाती है। ज्यों ही वह श्रीकृष्ण के वियोग का सामना करती है, वह अन्तर्मुखी विरहिणी बन जाती है और उसके हृदय में उदारता समा जाती है।

सूर के आराध्य देव श्रीकृष्ण हैं और उन्होंने अपना संपूर्ण जीवन अपने आराध्य की स्तुति में व्यतीत किया था 'सूरसागर' महाकाव्य की रचना की। सूरसागर में सूर ने कृष्ण की सभी लीलाओं का वर्णन किया है। सूरसागर अपने अंतस में प्रेम के रस को समाए हुए है और यह प्रेम शृंगार के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है। कृष्ण के प्रेम ने सूर को ही नहीं अपितु माता यशोदा, पिता नंद, राधा, गोपियां, पशु–पक्षी, प्रकृति आदि सभी को अपने में रंग लिया। सूर की गोपियां पूर्ण रूप से स्वयं को कृष्ण भक्ति में समर्पित कर चुकी हैं।

सारांशतः कहा जा सकता है कि सूर का काव्य भक्तिकाल का एक सशक्त स्तंभ है। उनका काव्य, काव्य की सभी कसौटियों पर खरा उतरता है। उनके द्वारा रचित 'सूरसागर' हिंदी साहित्य की अमूल्य कृति है।

1.14 मुख्य शब्दावली

- **पुष्टिमार्ग :** वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित एक विशेष संप्रदाय, वल्लभ संप्रदाय
- **वाग्वैदग्ध्य :** बात करने में चतुराई

टिप्पणी

- **हारिल** : एक पक्षी
- **शुद्धाद्वैत** : वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित एक वेदांतिक संप्रदाय जिसमें यह माना जाता है कि माया रहित ब्रह्म ही अद्वैतवाद है और जगत का सारा प्रपंच उसी की लीला है
- **कुब्जा** : कुबड़ी, कंस की कुबड़ी दासी जिसकी पीठ कृष्ण ने सीधी कर दी थी।

1.15 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. दक्षिण भारत में
2. हाल सातवाहनों ने
3. कृष्ण गीतावली में
4. पुष्टिमार्ग का सिद्धांत 'भगवदनुग्रह'
5. शुद्धाद्वैत–दर्शन
6. भगवान के प्रति अनुग्रह या कृपा का नाम ही पोषण है, यही पुष्टि है।
7. तीन
8. दो
9. यशोदा और नंद के द्वारा
10. कृष्ण प्रेम की धारा
11. 'जे वृषभान देई'
12. रूपक का
13. विद्यापति को
14. तीन अर्थों (श्री कृष्ण, उद्धव तथा भंवर) में
15. 'सूरसागर', 'साहित्य लहरी' तथा 'सूरसारावली'
16. भक्ति की प्रतिष्ठा स्थापित करना
17. वामाचार के लिए
18. बात करने में चतुराई
19. 'वत्स' शब्द से
20. दो भेद
21. श्रीकृष्ण के मथुरा गमन करने के पश्चात
22. चार अवस्थाओं को
23. 'सूरसागर'

टिप्पणी

24. 16वीं शताब्दी में
25. वेद
26. कवि की स्वच्छंद मनोवृत्ति
27. श्रीनाथ के मंदिर में
28. सूरदास को
29. कुंभनदास, सूरदास, परमानंददास और कृष्णदास
30. दो
31. माधुर्य भाव की
32. शास्त्रों को

1.16 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. कृष्ण काव्य परंपरा में सूरदास के स्थान का वर्णन कीजिए।
2. पुष्टिमार्ग का क्या अभिप्राय है? बताइए।
3. सूर के काव्य में प्रस्तुत लोक जीवन का वर्णन कीजिए।
4. भ्रमरगीत का प्रतिपाद्य स्पष्ट कीजिए।
5. सूर के काव्य में गोपियों की विरह दशा का वर्णन कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. भ्रमरगीत काव्य परंपरा के अनुसार सूर के काव्य का वर्णन कीजिए।
2. 'भ्रमरगीत में सहृदयता और भावुकता के दर्शन होते हैं।'– वर्णन कीजिए।
3. 'सूर का काव्य वात्सल्य और बाल मनोविज्ञान का आईना है।' उदाहरण सहित अपने उत्तर की पुष्टि कीजिए।
4. सूर की काव्य भाषा को स्पष्ट करते हुए उनके काव्य में गीति तत्व की विवेचना कीजिए।
5. सूरदास 'अष्टछाप' के कवि थे, उनके अष्टछाप के दर्शन का वर्णन कीजिए।
6. सप्रसंग व्याख्या कीजिए–

   (क) निर्गुण कौन देस की बासी? ....

   ठग्यो सो सूर सबै मति नासी।।

   (ख) निरमोहिया सों प्रीति कीन्हीं ....

   आगे दरकि दीन्हों रोय।।

(ग) ऊधो! जोग बिसरि जनि जाहु ....

विष को करै बंदना कीन्हीं।।

1.17 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, *हिंदी साहित्य का इतिहास।*
2. डॉ. नगेंद्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास।*
3. बाबू गुलाब राय, *हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास।*
4. डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना, *हिंदी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि।*
5. डॉ. हरिवंशलाल शर्मा, *सूर और उनका साहित्य।*
6. डॉ. ब्रजेश्वर वर्मा, *सूरदास।*
7. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, *सूरसाहित्य।*
8. डॉ. गुलाब राय, *हिंदी काव्य–विमर्श।*
9. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, *हिंदी–साहित्य।*
10. डॉ. रामकुमार वर्मा, *हिंदी–साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास।*

इकाई 2 मीराबाई

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

2.0 परिचय
2.1 इकाई के उद्देश्य
2.2 कृष्ण काव्य की परंपरा में मीरा
2.2.1 वैष्णवों की पद्धति
2.2.2 मीरा की पदावली का विषय
2.3 सामंतवाद को चुनौती और मीरा का काव्य
2.4 मीरा के काव्य में स्त्री–चेतना
2.5 मीरा की काव्य भाषा
2.6 प्रेम दीवानी मीरा
2.7 पाठांश
2.8 सारांश
2.9 मुख्य शब्दावली
2.10 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
2.11 अभ्यास हेतु प्रश्न
2.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं

2.0 परिचय

मीराबाई का जन्म पुराने जोधपुर राज्यान्तर्गत मेड़ता में हुआ बताया जाता है–'मेड़तिया घर जन्म लियौ है, मीरा नाम कहायो।' जोधपुर राज्य को बसाने वाले राव जोधाजी इनके पितामह थे, और राजा रत्नसिंह की ये पुत्री थीं। इनका सांसारिक विवाह भोजराज जी से हुआ था। किंतु थोड़े ही दिनों के पश्चात इनके पतिदेव की मृत्यु हो गई। ये साधुओं के सत्संग में अपना जीवन व्यतीत करना चाहती थीं, किंतु इनके घर के लोग इस बात से नाराज थे। कहा जाता है कि इनको भगवान के चरणामृत के धोखे से विषपान कराया गया था, किंतु इन पर उसका कुछ असर न हुआ–'राणाजी ने भेजा विष का प्याला, सो अमृत कर पीज्यो जी।' तुलसीदास जी से भी इनका पत्र–व्यवहार होना बताया जाता है। गोस्वामी जी का निम्नलिखित पद इनके ही पत्र के उत्तर में लिखा हुआ कहा जाता है–

जाके प्रिय न राम बैदेही।
तजिए ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही।।

रैदास जी का मीरा से साक्षात्कार होना तो संभव नहीं प्रतीत होता है। इनका देहावसान मीरा के जन्म के आसपास (1555 या 1560) में हो गया था। अष्टछाप के कृष्णदास ने मीरा को वल्लभ संप्रदाय में लाने का प्रयत्न किया था जो विफल हुआ। उन्होंने महाप्रभु के लिए इसी कारण मीरा की दी हुई भेंट स्वीकार नहीं की थी। संभव है, उनका भगवान कृष्ण से अपना सीधा माधुर्य का संबंध हो जिससे वे गुरु की आवश्यकता न समझती हों।

टिप्पणी

इनकी वाणी का गुजरात में बहुत आदर है। इनके पद कुछ राजस्थानी में हैं और कुछ शुद्ध ब्रजभाषा में। जो पद इन्होंने लिखे हैं वे तन्मयता से भरे हुए हैं। इनकी प्रेम–पीड़ा में निजीपन अधिक है। इन्होंने गोपियों का विरह–वर्णन न कर स्वयं अपना विरह–निवेदन किया है। इनके पदों में इनकी तीव्रतानुभूति का परिचय मिलता है। मीरा ने अपनी तन्मयता के कारण ही इतनी ख्याति प्राप्त की है और हृदय की तीव्र संवेदना के कारण ही इनकी वाणी में इतना बल आ सका है। इनके पदों के कुछ उदाहरण देखिए–

बसो मेरे नैनन में नन्दलाल।
मोहनि मूरति साँवरी सूरति, नैना बने बिसाल।
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल, अरुण तिलक दिये भाल।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजन्ती माल।
छुद्र धण्टिका कटि–तट शोभित, नुपूर शब्द रसाल।।
मीर प्रभु सन्तन सुखदाई, भक्त बछल गोपाल।।

× × ×

स्याम, मन चाकर राखो जी।
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठ दरसन पासूँ।।
चाकरी में दरसन पाऊँ, सुमिरन पाऊँ खरची।
भाव भगति जागीरी पाऊँ, तानूँ बाताँ सरसी।।

दूसरे पद में मीरा के प्रेम की निजी उमंग झलक रही है। इसी की छाया लेकर कवि–सम्राट रवींद्रनाथ ठाकुर ने अपनी 'Gardener' नाम की कविता की, जिसमें बागवान रानी से उनके यहां नौकरी करने की प्रार्थना करता है। वेतन पूछे जाने पर वह कहता है, एक माला नित्य समर्पित करने का अधिकार, जो मीरा के 'सुमिरन पाऊँ खरची' (जेबखर्च) का ही भाव है।

प्रस्तुत इकाई में हम मीरा के जीवन और उनके साहित्यिक योगदान का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

2.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- भक्तिकाल की कृष्ण काव्य परंपरा में मीरा के स्थान से परिचित हो पाएंगे;
- मीराबाई द्वारा सामंतवाद के खिलाफ किए गए कार्यों से परिचित हो पाएंगे;
- मीरा के काव्य में स्त्री चेतना से अवगत हो पाएंगे;
- मीरा की काव्य भाषा का अध्ययन कर पाएंगे;
- प्रेम दीवानी मीरा के व्यक्तित्व को जान पाएंगे।

2.2 कृष्ण काव्य की परंपरा में मीरा

टिप्पणी

कृष्ण काव्य परंपरा में मीरा का स्थान बड़ा ऊंचा है। इस विषय के जो कुछ भी उदाहरण हमें राजस्थानी हिंदी के फुटकर 'दूहों', 'रसायणों' व प्रेम कहानियों में भी अब तक मिल पाए हैं, उनमें अधिक से अधिक लौकिक व्यक्तियों एवं शृंगारिक भावनाओं का ही समावेश है। मैथिल कवि विद्यापति के पदों में उक्त प्रेम तथा शृंगार का जो कुछ लौकिक तंत्रानुमोदित पौराणिक रूप हमें लक्षित होता है, वह संस्कृत के भक्त कवि जयदेव के प्रभावों का परिणाम है। उस समय अधिक पूर्व की ओर बंगला के कवि चंडीदास भी उसी आदर्श द्वारा प्रभावित हुए थे और पश्चिम के गुजराती भक्त कवि नरसी मेहता को भी किसी वैसी ही शक्ति ने प्रेरणा पहुंचायी थी। परंतु इस अलौकिक प्रेम की प्रणाली में परमात्मा के सगुण रूप को ही स्थान मिला था। उसके निर्गुण रूप की झलक हिंदी साहित्य पर, सर्वप्रथम, एक दूसरी ओर से प्रतिबिंबित होती दीख पड़ी। उसी समय के भारत में लगभग चारों ओर सूफी सिद्धांतों का भी प्रचार बराबर बढ़ता जा रहा था और सूफियों के 'प्रेम' एवं 'पीर' की परंपरा का प्रभाव उस समय की आध्यात्मिक रचनाओं पर सर्वत्र पड़ता जा रहा था। इस कारण विक्रम की पंद्रहवीं तथा सोलहवीं शताब्दी वाले हिंदी के संत–कवियों ने भी उन्हें अपनी वैसी फुटकर रचनाओं में प्रमुख स्थान दिया। उन्हीं को लेकर फारसी की मसनवी पद्धति के आदर्शों पर, यहां की प्रेम कहानी ने भी एक नवीन रूप ग्रहण कर लिया। तदनुसार कबीर साहब, रैदास एवं नानकदेव की रचनाओं में हमें प्रेमानुबंध की इस धारा का ही बहुत कुछ प्रभाव दीख पड़ता है। दाऊद, कुतुबन, मंझन तथा जायसी के समय तक इसके आदर्शों पर लिखी हुई कतिपय प्रेम गाथाओं तक का पता चलने लगता है।

हिंदी साहित्य के अंतर्गत भक्ति भाव की धारा का प्रवाह कुछ पीछे जाकर लक्षित हुआ। भक्ति भाव का उन्मेष वास्तव में सबसे पहले उत्तरी भारत में ही हुआ था, किंतु परिस्थितियों के प्रतिकूल पड़ने पर उसे कुछ काल के लिए दक्षिण भारत के आलवारों एवं आचार्यों के यहां आश्रय ग्रहण करना पड़ा।

सिद्ध और नाथ साहित्य में भी भक्ति के इस रूप के दर्शन होते हैं। विषय की दुरूहता के कारण, उनमें काव्य की दृष्टि से वैसी सरलता व रमणीयता ही दृष्टिगोचर होती है। उनमें अधिकतर व्यंग्य–वर्णन एवं उपदेश भरे पड़े हैं। यदि कहीं–कहीं उनमें कुछ अनुभूतिपूर्ण उद्‌गार भी मिलते हैं, तो वे रचयिता की सांप्रदायिक साधनाओं के महत्व के द्योतक ही जान पड़ते हैं। सिद्धों एवं नाथों की उक्त रचना पद्धति को पीछे से मराठी में नामदेव आदि तथा हिंदी में कबीर तथा रैदास आदि संतों ने कुछ हेरफेर के साथ प्रचलित रखा। अतएव इनके पद भी अधिकतर नैतिक एवं आध्यात्मिक विषयों से पूर्ण रहने के कारण प्रायः दार्शनिक तथा उपदेशात्मक ही बनकर रह गए। स्वानुभूति द्वारा उत्पन्न हृदयगत भाव भक्ति–भावना से ओत–प्रोत पदों की संख्या, उनकी रचनाओं के अंतर्गत अपेक्षाकृत कम ही देखने को मिलते हैं।

इस प्रकार स्वानुभूति से सब कुछ कृष्ण को समर्पित कर देने वाली मीरा का स्थान कृष्ण काव्य परंपरा में अक्षुण्ण है।

2.2.1 वैष्णवों की पद्धति

मुक्त एवं विशुद्ध पदों का संग्रह, सर्वप्रथम हमें तेरहवीं विक्रम शताब्दी के भक्तकवि जयदेव द्वारा रचे गए प्रसिद्ध 'गीत गोविन्द' में मिलता है, जो हिंदी में न होकर संस्कृत में है। उसके

टिप्पणी

अनन्तर तेरहवीं–चौदहवीं वाले 'विनय' के पद और पंद्रहवीं–सोलहवीं विक्रम शताब्दियों में प्रायः उन्हीं आदर्शों पर मैथिली में विद्यापति, गुजराती में नरसी मेहता तथा बंगाल में चंडीदास द्वारा की गयी रचनाएं भी पायी जाती हैं। मीराबाई के पदों की रचना अधिकतर इस दूसरी पद्धति पर ही हुई है। इसका अनुसरण उनके दीर्घकालीन समसामयिक (अथवा परवर्ती भी) भक्त विष्णुदास, सूरदास, हित हरिवंश, गदाधर भट्ट, नन्ददास, कृष्णदास, कुम्भनदास, चतुर्भुजदास एवं हरिराम व्यास आदि ने भी किया है। इसके अनुसार प्रत्येक पद का विषय भगवान श्रीकृष्णचंद्र के नाम, रूपलीला व धाम का कुछ–न–कुछ वर्णन हुआ करता है। कभी–कभी उसमें कवि द्वारा दर्शित कतिपय भक्तिपूर्ण मनोभावों का भी समावेश रहा करता है। कवि अपने इष्टदेव के संबंध में नयी–नयी कल्पनाएं किया करता है और अपनी रचनाओं द्वारा उक्त विषयों में से किसी न किसी का भावपूर्ण उल्लेख भिन्न–भिन्न शब्दों में (कितु प्रायः एक ही प्रणाली के अनुसार) बार–बार करता हुआ भी नहीं अघाता। उक्त मनोभाव भी अधिकतर प्रार्थना व विनय के ही साधनों द्वारा व्यक्त हुए रहते हैं, जिससे (एक प्रकार से श्रद्धाजनित द्वैतभाव की बाधा आ जाने से) उनका पूर्ण रूप से स्पष्टीकरण नहीं हुआ दीखता। महिमामय वर्णनों के सामने उक्त व्यक्तिगत मनोभाव दब से जाते हैं।

2.2.2 मीरा की पदावली का विषय

मीराबाई की पदावली में उक्त चारों बातों का न्यूनाधिक समावेश है, किंतु वे मुख्य न होकर, प्रायः गौण बनकर ही आयी हैं। पदावली में पदों का मुख्य विषय उनकी रचयित्री के आभ्यंतरिक भावों का पूर्ण प्रकाश ही जान पड़ता है। इस विषय के पद उसके अंतर्गत प्रचुर मात्रा में विद्यमान हैं। इसी कारण प्रायः सारी पदावली में मीराबाई के व्यक्तित्व की छाप स्पष्ट है। ऐसे पदों में हमें उनका अपने इष्टदेव परम सुंदर मनमोहन की 'दिव' का आर सहसा आकृष्ट हो जाना, उसकी प्रत्येक शारीरिक चेष्टा को बार–बार निहारते रहने के लिए आतुर होना, और इस प्रयत्न में निरंतर लगे रहने के कारण प्रेम की मादकता भी उनके भीतर उत्तरोत्तर बढ़ता ही जाना, उनके लिए विविध अभिलाषाएं करना, व्रत ठान लेना, चिंतन करते–करते अपने सारे जीवन का तद्वत कार्यक्रम निश्चित कर लेना, उसमें प्रवृत्त तक हो जाना और स्वजनों से तद्विषयक मतभेद उपस्थित हो जाने पर उनकी एक न सुनना, बल्कि उनके द्वारा दिए गए दंडों को भी सहर्ष सहन कर लेना और निरंतर अपने निश्चय पर अटल रहते हुए गृह–त्याग कर देना तक लक्षित होता है। इसके सिवाय तदंनतर प्रियतम से वियुक्त हो जाने का अनुभव, अपनी अनेक प्रकार की शारीरिक व मानसिक यातनाओं के वर्णन द्वारा प्रदर्शित किया गया है। साथ ही अपनी दशा की ओर उसका ध्यान आकृष्ट कराकर आत्म समर्पण द्वारा उसे पाने का उद्योग दर्शाया गया है। फिर तो कवयित्री के हृदय में कुछ–कुछ आशा का संचार भी होने लगता है। अंत में उस अभीष्ट के मिलने के अनुभव का भी दिग्दर्शन है, जिसके लिए उक्त सारी चेष्टाओं का उपक्रम था।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. भक्त कवि जयदेव द्वारा रचित रचना 'गीत गोविंद' किस भाषा में लिखी गई है?
2. मीरा की पदावली का मुख्य विषय क्या है?

2.3 सामंतवाद को चुनौती और मीरा का काव्य

मीरा ने अपने काव्य और आचरण के द्वारा सामंती मूल्यों को जबर्दस्त चुनौती दी। सांप्रदायिक कट्टरता और सामंती क्रूरता का सफल प्रतिरोध करते हुए मीरा ने जीवन की

अर्थवेत्ता को मानवीय प्रेम और कृष्ण भक्ति में तलाशा। मीरा ने सामंतवादी रूढ़ियों का खंडन करने के लिए श्रीकृष्ण की भक्ति का संकल्प लिया है और वह अपने रनिवास से बाहर निकल आई है। एक प्रकार से वह एक विशाल जनांदोलन में बहुत बड़ा जोखिम (सामाजिक प्रतिष्ठा खोने का) उठाकर कूद पड़ी है।

टिप्पणी

मीरा का विद्रोह भी कबीर के विद्रोह की तरह साधन है, साध्य नहीं। दोनों के साध्य में प्राप्ति की गहरी बेचैनी है, इसीलिए जितने भी बाधक कारण हो सकते हैं, उन्हें तोड़कर उनके आगे निकल जाने का उत्साह भी इतना अधिक है। मीरा और कबीर में केवल एक अंतर है—कबीर की दीक्षा क्रियायोग (हठयोग) में हुई है जबकि मीरा की दीक्षा प्रेमयोग में सीधे हुई है। सामंती समाज में संपत्ति का स्वामी, भूस्वामी वर्ग होता है। संस्कृति और शिक्षा का काम पुरोहित वर्ग के हाथ में रहता है। समाज के शेष सदस्य खेती, कारीगरी इत्यादि कर्मों के द्वारा श्रेष्ठ वर्ग की सेवा करते हैं। सामंती युग में स्त्री, पुरुष के विलास का साधन मात्र रह गयी थी। राजा और सामंत अनेक विवाह किया करते थे और उनके अंतः पुर में सैकड़ों सुदरियां परिचारिकाओं के रूप में रहती थी। मीरा ने अपने काव्य के द्वारा सामंतवादी वातावरण के खिलाफ आवाज उठाई। उन्होंने अनेक रचनाओं में अपनी इस क्रांति भरे स्वर को उठाया तथा अपने व समाज के ऊपर हो रहे सभी प्रकार के अत्याचारों के खिलाफ एक संघर्ष छेड़ा।

महाराणा रत्नसिंह, बूंदी के हाड़ा सूरजमल के साथ चली आती हुई पारस्परिक अनबन के कारण उन्हीं के हाथों किसी शिकार के समय मार डाले गए। उनके छोटे भाई विक्रमजीत सिंह (सं. 1574–1593 वि.; सन् 1517–1536) उनकी जगह महाराणा बनाए गए। महाराणा विक्रमजीत सिंह एक अयोग्य शासक थे और अपने 'छिछोरेपन' के कारण, उन्होंने अपने सरदारों तक को अप्रसन्न कर दिया था। मीराबाई की भगवद्भक्ति से वे स्वभावतः बहुत चिढ़ने लगे। उन्होंने नाना प्रकार के कष्ट पहुंचाकर उन्हें दंड देना ही अपना कर्तव्य समझ लिया। मीराबाई के पदों में उनके भिन्न–भिन्न अत्याचारों के कई उल्लेख मिलते हैं (पद 37, 38, 39, 40, 41, 42 और 50 आदि)। कहा जाता है कि मीराबाई ने उनके भेजे हुए विष को चरणामृत मानकर पी लिया। सर्प को तुलसी की माला की भांति गले में डाल लिया। सूली पर सुखपूर्वक सोई रहीं तथा महाराणा से भी तनिक नहीं डरीं, परंतु उपलब्ध ऐतिहासिक विवरणों द्वारा इन सभी बातों की पुष्टि होती नहीं जान पड़ती। स्व. मुं. देवीप्रसाद मुंसिफ ने इस विषय में केवल इतना ही लिखा है कि "मीराबाई को राणा विक्रमजीत के दीवान कौम महाजन बीजावर्गी ने जहर दिया था... मीराबाई का शाप बीजावर्गी कौम को अब तक लगा हुआ है और वे मानते हैं कि उस शाप से हमारी औलाद और दौलत में तरक्की नहीं होती।" प्रसिद्ध है कि मीराबाई ने उक्त दुर्व्यवहार से तंग आकर गोस्वामी तुलसीदास जी के साथ अपना कर्तव्य निश्चित करने के लिए पत्र व्यवहार किया था, किंतु यह घटना भी ऐतिहासिक दृष्टि से विचार करने पर असंदिग्ध नहीं ठहरती।

मेवाड़ त्याग

महाराणा विक्रमजीत सिंह के शासन की कुव्यवस्था से उत्साहित होकर सं. 1589 वि.; सन् 1532 में गुजरात के बादशाह बहादुरशाह ने मेवाड़ पर चढ़ाई की और कुछ समय तक युद्ध

होने के उपरांत संधि हो गयी। किंतु सं. 1591 वि. (सन् 1534) में ही उसने फिर दूसरा आक्रमण किया, जिसके उपलक्ष्य में महाराणा की माता कर्मवती देवी तक की आहुति हो गयी और चित्तौड़ पर बादशाह का अधिकार हो गया। संभवतः इस घटना के ही आसपास, किसी समय अपने चाचा राव वीरमदेव जी की बुलाहट पर मीराबाई मेवाड़ छोड़कर अपने पीहर चली गयीं। मेड़ता का वातावरण उनके लिए बहुत अनुकूल था। राव वीरमदेव जी तथा जयमल जी, दोनों ही उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते थे और उनकी ओर से उन्हें अच्छी सुविधा भी मिलती रही। कहा जाता है कि राजमहल के जिस भाग में वे उस समय श्री गिरधरलाल की पूजा किया करती थीं, वह कदाचित चतुर्भुज भगवान के मंदिर में सम्मिलित है। मीराबाई की भोजनशाला के नाम से आज भी वह वर्तमान में स्थित है। उधर मीराबाई द्वारा मेवाड़ त्याग के अनंतर, यद्यपि कुछ दिनों तक ही रहकर बहादुरशाह (सं. 1592 वि.; सन् 1535) चित्तौड़ छोड़कर भाग गया और महाराणा विक्रमजीत सिंह का उस पर अधिकार हो गया। किंतु शीघ्र ही (सं. 1593 वि.; सन् 1536 में ही) महाराणा रायमल के राजकुमार पृथ्वीराज का अनौरस पुत्र (पासवानियां) वणवीर चित्तौड़ पर चढ़ आया और महाराणा को मारकर गद्दी पर बैठ गया।

इधर मेड़ते की भी दशा इन दिनों बुरी हो चुकी थी। मेड़ता और जोधपुर के राज्यों के बीच सं. 1588 वि. (सन् 1531) से ही अनबन चल रही थी। तदनुसार जोधपुर के राव मालदेव ने सं. 1595 वि. (सन् 1538) में राव वीरमदेव जी से मेड़ता छीन लिया और मीराबाई की दैनिकचर्या स्वभावतः अव्यवस्थित सी हो गयी। उपर्युक्त घटनाओं के कारण मीराबाई के ऊपर उस समय ऐसी विरक्ति का रंग चढ़ा कि उन्होंने मेड़ता को भी त्यागकर तीर्थयात्रा करने की ठान ली और पर्यटन करती हुई वे वहां से वृंदावन पहुंच गयीं। कहते हैं कि वृंदावन में उस समय प्रसिद्ध रूपगोस्वामी के भतीजे चैतन्य संप्रदायी श्री जीव गोस्वामी जी रहा करते थे और वहां के साधुओं में वे परम प्रसिद्ध थे। मीराबाई सर्वप्रथम कदाचित उन्हीं के पास गयीं। गोस्वामी जी ने पहले उनसे मिलना स्वीकार नहीं किया और कहला भेजा कि मैं स्त्रियों से नहीं मिला करता। परंतु मीराबाई के इस संदेश पर कि "मैं तो अब तक समझती थी वृंदावन में भगवान कृष्ण ही एकमात्र पुरुष हैं और अन्य सभी लोग केवल गोपी या स्त्री–रूप हैं; मुझे आज ज्ञात हुआ कि भगवान के अतिरिक्त अपने को पुरुष समझनेवाले यहां और भी विद्यमान हैं।" गोस्वामी जी अत्यंत प्रभावित हुए और प्रेमावेश में नंगे पांव बाहर आकर उनसे मिले। इसके उपरांत मीराबाई कुछ दिनों तक, कदाचित उसी स्थान पर ठहरी रहीं। गोस्वामी जी के साथ उनका सत्संग भी होता रहा, किंतु वृंदावन छोड़कर वे फिर संभवतः सं. 1599 वि. में द्वारिकाधाम चली गयीं और यहां पर श्री रणछोड़ जी की भक्ति में तल्लीन रहने लगीं।

सं. 1594 वि. (सन् 1537) में वणवीर की जगह महाराणा विक्रमजीत सिंह का छोटा भाई उदयसिंह मेवाड़ की गद्दी पर बिठाया गया। कुछ दिनों के अनंतर अर्थात संवत् 1597 वि. (सन् 1540) में वह अपने सारे पैतृक राज्य का स्वामी भी बन गया। इसके तीन ही वर्ष पीछे सं. 1600 वि. (सन् 1543) में राव वीरमदेव जी ने भी मेड़ता पर फिर अपना अधिकार कर लिया। परंतु मेड़ता विजय के अभी दो महीने भी न बीत पाए थे कि वीरमदेव जी का

देहांत हो गया और उनकी गद्दी पर उनके पुत्र जयमल जी आ विराजे। राव जयमल जी ने जोधपुर राज्य के साथ अपना विरोध नहीं छोड़ा। परिणामस्वरूप, उन्हें फिर एक बार सं. 1616 वि. (सन् 1559) में मेड़ता से हाथ धोकर कुछ दिनों के लिए मेवाड़ की शरण लेनी पड़ी, जहां अकबर बादशाह के विरुद्ध चित्तौड़ की रक्षा में लड़ते हुए उन्होंने वीरगति प्राप्त की। कहा जाता है कि मीराबाई के द्वारिका जाने का पता लगाकर, मेवाड़ और मेड़ता दोनों राज्यों की ओर से उन्हें लौटाने के लिए ब्राह्मण भेजे जाने लगे। परंतु उनके प्रयास सफल नहीं होने पाए। प्रसिद्ध है कि ब्राह्मणों के हठपूर्वक धरना देने पर मीराबाई श्री रणछोड़ जी से आज्ञा प्राप्त करने के लिए मंदिर के भीतर गयीं, जहां से फिर वापस नहीं हुईं। इस घटना का समय सं. 1603 वि. (सन् 1546) बतलाया जाता है। कुछ लोग उनका इसके पीछे तक भी रहना मानते हैं।

टिप्पणी

मीराबाई की प्राथमिक शिक्षा मेड़ते में पूर्ण हुई थी। अनुमान किया जाता है कि अन्य आवश्यक बातों के साथ–साथ उन्हें, समयानुसार काव्य–कला एवं संगीतादि के अभ्यास का भी अवसर मिला था। मेवाड़ का राजवंश उन दिनों संगीत एवं साहित्यादि के प्रेमी विद्वान प्रसिद्ध महाराणा कुंभा के कारण पूरा विख्यात हो चुका था। अतएव, अपनी ससुराल में भी उन्हें यथासंभव अपनी योग्यता के विकास के लिए अनुकूल वातावरण प्राप्त होता गया। जहां तक पता है, कुंवर भोजराज ने अपने जीवन–काल में उनके उत्साह में किसी प्रकार की बाधा नहीं पहुंचायी। नरसी जी को माहेरो, गीतगोविन्द का टीका, राग गोविन्द, सोरठ के पद मीराबाई की मलार, गर्वा गीत एवं फुटकर पद इनकी पसिद्ध रचनाएं हैं।

2.4 मीरा के काव्य में स्त्री–चेतना

मीरा के स्वचेतनात्मक पदों में स्त्री मुक्ति और संघर्ष के कई आयाम सामने आते हैं। हिंदी साहित्य में पहली बार मीरा की रचनाओं में ही स्त्री चेतना का सशक्त स्वर सुनाई पड़ता है। मीरा के द्वारा अपने स्वतंत्र व्यक्तित्व की पहचान और उस पहचान के लिए जीवनपर्यंत संघर्ष ही वह तथ्य है, जो मीरा को स्त्री चेतना से जोड़ता है। मीरा ने आज से लगभग चार शताब्दी पूर्व वह देख लिया जो आज भी सामान्य स्त्री नहीं देख–समझ सकती है। मीरा की कविता देखने में आध्यात्मिक और व्यक्तिगत है; किंतु सामाजिक दृष्टि से वह शोषित, पीड़ित और अपमानित नारी के दुख को अभिव्यक्त करती है और उस दुख के विरुद्ध विद्रोह भी। मीरा का संपूर्ण साहित्य, नारी पर पुरुषों के न्यायहीन तथा संवेदनशून्य आधिपत्य के विरुद्ध है। मीरा का काव्य पुरुषवर्चस्ववादी व्यवस्था के प्रति विद्रोह, तथा स्त्रियों के ऊपर सदियों से लादी गई अमानवीय व्यवस्था के विरुद्ध है। मीरा अपने विरोधियों को चुनौती देती हुई कहती है कि–

"सीसाधो रुठयो म्हांरो काई करलेसी
म्हें तो गुण गोविंद का गास्यां, हो माई
राणा जी रुठयां बारो देस रखासी
हरि रुठयां कुम्हलास्यां, हो माई।"

'अपनी प्रगति जांचिए'

3. महाराणा रत्नसिंह की मृत्यु के उपरांत किसे महाराणा बनायां गया।
4. महाराणा रत्नसिंह की माता का क्या नाम था?
5. मेड़ता को त्यागकर मीराबाई कहां चली गई थी?
6. मीराबाई की प्राथमिक शिक्षा कहां पूर्ण हुई?

टिप्पणी

स्त्रियों को सदैव सत्ता, संपत्ति और प्रतिष्ठा से वंचित रखा गया। इस व्यवस्था के विरुद्ध स्त्री बगावत न करे, इसलिए उसके समक्ष यह सिद्धांत प्रतिपादित किया गया कि यह व्यवस्था ईश्वर के द्वारा बनाई गई है और पत्नी के लिए ईश्वर का रूप पति होता है। मीरा का काव्य पुरुषवर्चस्ववादी व्यवस्था के विरुद्ध खुला विद्रोह है। मैं भी भक्त हूं और मुझे भी अन्य पुरुष भक्तों के समान हक मिलना चाहिए, इसी चेतना से इस विद्रोह का जन्म हुआ। मीरा के काव्य में उद्धृत यह जीवन दर्शन अन्य भक्त पुरुषों के संसार से भिन्न है। एक नवीन संसार, एक नवीन समाज, एक नवीन मनुष्य सर्वप्रथम मीरा के काव्य में दिखाई देता है। मीरा आज की स्त्रियों की भांति उतनी प्रशिक्षित और परिष्कृत नहीं थी। परंतु इस चेतना का बीज निस्संदेह आत्मनिर्णय का अधिकार है, जिसके लिए मीरा ने जीवनपर्यंत संघर्ष किया। यथा–

"लगन को नाव न लीजै, री भोली।
लगन लगे को पैड़ों ही न्यारो,
पांव धरत तन छीजै।
जो तू, लगन लगाई चाहै,
सीस को आसन कीजै।"

मीरा जैसी स्वचेता स्त्री के लिए उस युग के पुरुष प्रधान समाज में पराधीन और शोषित स्त्री के लिए मीरा का निम्न उद्बोधन अत्यंत प्रासंगिक है–

"सिसोधो रुठ्यो म्हारा काई करलेसी।
निरभै निसाण धुरास्यां हो माईं।।"

संघर्ष का यह स्वर मीरा की कविता को कोरे वाग्जाल से बचाकर अनुभव के निकट ले जाता है। संघर्ष की इस उद्बोधन शक्ति के साथ मीरा परंपरागत स्त्री न रहकर एक स्वचेतना स्त्री का प्रतीक बन जाती हैं। मीरा के काव्य में एक ओर जीवन में व्याप्त चरम निराशा और वेदना है तो दूसरी ओर संघर्ष का संकल्प। इसके काव्य में सगुण और निर्गुण भक्ति भावना, वेदना और विद्रोह, चरम निराशा और आशा इत्यादि कई तरह के विरोधों का अत्यंत वर्णन चतुर्वेदी ने अपनी पुस्तक 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' में उद्धृत किया है, याद आते हैं–

"क्या कहा मैं अपना खंडन करता हूं?
ठीक है तो, मैं अपना खंडन करता हूं?
मैं विराट हूं–मैं समूहों को समोए हूं?"

मीरा की कविता व्यक्तिगत स्तर से उठकर संपूर्ण स्त्री समाज की व्यापक परिधि तक व्याप्त हो जाती है, जो उनकी वेदना और संघर्ष दोनों में द्रष्टव्य है। भारतीय काव्य में हमेशा से स्त्री को पत्नी, प्रेमिका, मां, बहन, देवी के रूप में चित्रित किया गया है, लेकिन मीरा के अपने काव्य में पहली बार एक शोषित, पीड़ित और पराधीन स्त्री सामने आती है। मीरा के वेदना और पीड़ा वाले पद संपूर्ण स्त्री समाज की वेदना और पीड़ा की अभिव्यक्ति वाले पद बन गए हैं। मीरा की कविता का संबंध स्त्री जीवन की उस वेदना और पीड़ा से है जिसकी ओर अन्य पुरुष रचनाकारों का ध्यान कभी नहीं गया। भक्तिकाव्य जहां भक्ति के धरातल पर

समाज में हमेशा से हाशिए पर रखे गए लोगों का पक्षधर है वहीं मीरा की कविता सदियों से हाशिए पर रखी गई स्त्री की वास्तविक स्थिति का बयान करती है।

हिंदी साहित्य में प्रायः मीराबाई और महादेवी की वेदना की तुलना की जाती है। मीरा और महादेवी के काव्य में भेद यह है कि महादेवी वर्मा की वेदना कल्पना से आती है अपितु मीरा की वेदना सीधे उनके जीवन से। अतः मीरा की वेदना जहां आत्मा के तारों को झकझोर देती है, वहां महादेवी की वेदना केवल कौतूहल भर उत्पन्न कर पाती है। मीरा के काव्य में वेदना और पीड़ा के जो अनुभव है वह समाज परिवार के बंधनों में जकड़ी हुई किसी भी पराधीन स्त्री के अनुभव हैं। यही कारण है कि यह अनुभव एक स्त्री के होते हुए भी संपूर्ण स्त्री समाज का प्रतिनिधित्व करते हैं। मीरा की कविता सीधे अनुभव से टकराती है और स्त्री के जीवन के हर क्षण को अपने काव्य में समेट लेना चाहती है।

टिप्पणी

मीरा की रचनाओं को उनके जीवन से अलग करके कभी नहीं समझा जा सकता। मीरा की कविता समकालीन स्त्री चेतना के समानांतर चलने की हैसियत रखती है। उनकी कविता एक शांत गंभीर गृहिणी की तरह है, जिसमें उद्वेलन हमेशा कहीं बहुत गहरे में समाया होता है, और जिसके ऊपर की खामोशी से पाठक कई बार धोखा खा जाते हैं। मीरा की कविताएं स्त्री–चेतना के इतिहास की एक विलक्षण धरोहर हैं। आज तक जितनी भी स्त्री चेतना की कविताएं लिखी गईं हैं उनमें मीरा की कविता अन्य सभी कविताओं से सर्वश्रेष्ठ है। मीरा भक्त हो गई थीं तथा भक्ति के धरातल पर उन्हें किसी तरह का भेदभाव स्वीकार नहीं था, इसलिए उन्हें सामाजिक बहिष्कार का सामना करना पड़ा, मीरा इसलिए भक्त नहीं बनती कि उन्हें सामाजिक स्वीकृति मिल सके। भक्ति मीरा का मुख्य लक्ष्य है न कि सामाजिक स्वीकृति। मीरा का सारा स्वातंत्र्य संघर्ष एक स्त्री के प्रति था और उन्होंने अपने इस वर्णन में पुरुष वर्णन की बात कहीं नहीं की। क्या इस संघर्ष में मीरा के साथ कोई स्त्री भी उसकी सहायता करने नहीं आ पाई? यथा–

"लोग कहे मीरा बावरी, सास कहे कुल नासी रे"

समाज में स्वातंत्र्य हासिल करना अकेले का कार्य नहीं अपितु यह कार्य एक संगठित शक्ति के द्वारा संभव होता है। सामाजिक शक्ति के विरुद्ध अकेली स्त्री का संघर्ष भला कब तक चलता।

निष्कर्षत : कहा जा सकता है कि मीरा को भारतीय समाज में परिवार और पूरी तरह पराधीन स्त्री की दयनीय स्थिति प्रतिबिंबित करने वाली कवयित्री कहा जा सकता है। स्त्री जीवन की वेदना, उसकी टूटन, स्वयं राह चुनकर उस राह पर चलने की प्रेरणा यह सब मीरा के काव्य में एक स्थान पर प्राप्त होता है। एक ओर मीरा का काव्य उस परम शक्ति, लौकिक सत्ता के प्रति अपनी अगाध भक्ति प्रकट करता है, वहीं दूसरी ओर वह समाज में शोषण का शिकार हो रही स्त्री की करुण वेदना को समाज के समक्ष वास्तविक रूप में प्रकट करता है। मीरा ने अपनी करुण व्यथा के द्वारा समाज की पुरुष मानसिकता व यथार्थता की स्थिति का वर्णन किया है। मीरा का काव्य आज भी प्रासंगिक है क्योंकि आज भी समाज में इतने वर्षों के बाद भी नारी की स्थिति कहीं न कहीं उन्हीं बिंदुओं का वर्णन मीरा द्वारा रचित कविताओं, पदों व छंदों में पर्याप्त होता है। अर्थात कहा जा सकता है कि मीरा ने अपनी लेखनी के जादू से भक्ति रस के साथ करुण रस का भी यथार्थ चित्रण प्रस्तुत किया है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

7. 'हिंदी साहित्य और संवेदना का विकास' किसकी पुस्तक है?
8. हिंदी साहित्य में मीरा की तुलना किस कवयित्री से की जाती है?
9. मीरा की कविताएं किसकी विलक्षण धरोहर हैं?

2.5 मीरा की काव्य भाषा

टिप्पणी

मीरा की काव्य भाषा और शैली अन्य पुरुष भक्त कवियों की भाषा व शैली से भिन्न है। मीरा के पदों में जिन शब्दों का प्रयोग किया गया है वह समाज, शास्त्र और परंपरा में अवस्थित स्त्री की स्थिति से संबंध रखते हैं। मीरा राजस्थान की कवयित्री है अतः राजस्थानी उनकी मातृभाषा है। परंतु मीरा के काव्य में केवल राजस्थानी भाषा का ही समावेश नहीं होता अपितु उसमें अन्य भाषाओं का भी वर्णन प्राप्त होता है। मीरा के काव्य में काव्य भाषा के सभी अनिवार्य गुण (कोमलता, मधुरता, सरसता, सुबोधता और स्वाभाविकता) मिलते हैं। मीरा ने अपने काव्य में विभिन्न भाषाओं का प्रयोग होते हुए भी व्याकरण के नियमों का साधारणतः पालन किया है। मीरा के काव्य में मुख्य रूप से निम्न चार भाषाओं का वर्णन मिलता है–

- **राजस्थानी**

"स्याम म्हां बांहडिया जी गह्यां।
भोसागर मझधारा बूडयां, थारी शरण लह्यां।
म्हारे अवगुण पर अपारा थे बिण कूण सह्यां।
मीरा रे प्रभु हरि अविनाशी लाज बिरद री बह्यां।"

इसी प्रकार–

"णंद णंदण मण भायां बादलां नभ छायां।
इत घण गरजां उत घण लरजां चमकां बिज्जुडरायां।"

राजस्थानी भाषा में वर्णों के उच्चारण में भिन्नता पाई जाती है। जैसे–'छ' का उच्चारण 'स' से मिलता–जुलता है तथा 'न' के स्थान पर प्रायः 'ण' का प्रयोग होता है। इसी तरह अनुस्वार एवं अनुनासिक के स्थान पर अनुस्वार का ही प्रयोग अधिक किया जाता है।

- **ब्रजभाषा**

राजस्थानी के अतिरिक्त मीरा ने काव्य में ब्रजभाषा का भी उचित मात्रा में प्रयोग किया। यथा–

"यहि विधि भक्ति कैसी होय।
मन की मैल हियते न छूटी, दियो तिलक सिर धोय।
काम कूकर, लोभ डोरी, बांधी मोही चंडाल।
क्रोध कसाई रहत घट में, कैसे मिले गोपाल।"

- **गुजराती**

मीरा ने अपने काव्य में गुजराती भाषा का भी बड़ा ही सुंदर प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ–

"प्रेमगी प्रेमनी प्रेमनी लागी कटारी प्रेमनी।
जल जमुना मा भरवां गयां तां, हती गागर माथे हेमनी।
काचे ते तातणे हरि जीए बांधी, जेम खेंचे तेम तेमनी।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, शामल सूरत शुभ एमनी।"

- पंजाबी

मीरा ने राजस्थानी, ब्रज व गुजराती के अतिरिक्त अपने काव्य में पंजाबी भाषा का प्रयोग कर अपने भाषिक कौशल की सुंदरता को व्यक्त किया है। यथा–

"हो कान्हा किन गूंथी जुल्फां कारियां।
सुधर कल प्रवीण हाथन सूं, जसुमति जू णे सांवरियां।
जो तुम आओ मेरी बाखरियां, जरि राखूं चंदन किवारियां।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, इन जुल्फन पर बोरियां।"

यूं तो मीरा ने अपने काव्य में अनेक भाषाओं का प्रयोग किया है परंतु अपनी मूल काव्य–रचना उन्होंने अपनी मातृभाषा में ही की। मीरा के पद सहज, सरल और निश्छल भावाभिव्यक्ति के कारण तथा गेय होने के कारण जन–जन के कंठहार बन गए थे। मीरा ने अपनी काव्य भाषा में वर्ण योजना अथवा शब्दों का प्रयोग भावानुकूल किया है जिससे उनकी भाषा में कोमलता, स्निग्धता और लालित्य की सुंदर छटा देखी जा सकती है। मीरा की काव्य भाषा में एक अद्भूत प्रवाह है जो उसके भावों को अभिव्यक्त करने की पूरी सामर्थ्य रखता है। मीरा की काव्य भाषा में भाषा की विशेषता को बढ़ाने वाले सभी रूपों का वर्णन है। भाषा के विविध रूपों के आधार पर मीरा की काव्य भाषा को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

शब्द शक्तियां

शब्द का अर्थ बोध कराने वाली शक्ति को शब्दशक्ति कहा जाता है। शब्दशक्ति के तीन रूप होते हैं– 1. अभिधा शब्दशक्ति, 2. लक्षणा शब्दशक्ति और 3. व्यंजना शब्दशक्ति। जहां शब्दों का सीधे–सीधे अर्थ प्रकट होता है वहां अभिधा शब्दशक्ति होती है। जहां मुख्य अर्थ में बाधा उत्पन्न होती है और लक्षणों के द्वारा अर्थ को प्रकट किया जाता है वहां लक्षणा तथा जहां मुख्य व लाक्षणिक अर्थों से भी अभिप्राय स्पष्ट न हो और इन अर्थों से भिन्न कोई अन्य अर्थ अभिव्यक्त हो वहां व्यंजना शब्दशक्ति होती है। मीरा के काव्य में अभिधा और व्यंजना शब्दशक्ति का अत्यधिक प्रयोग हुआ है। इसका कारण भी पूर्ण रूप से स्पष्ट है कि मीरा का काव्य उसके वास्तविक जीवन की यथार्थ कहानी है, उसमें किसी भी प्रकार का बनावटीपन व दुराव–छिपाव नहीं है। मीरा ने सीधे–सीधे कथनों के माध्यम से अपने जीवन की मार्मिक स्थिति का यथार्थ वर्णन किया है। यथा–

"म्हां री गिरधर गोपाल दूसरा णा कोइ।
दूसरा णा कोइ साधा संग बैठि–बैठि लोक लाज खोइ।"

अपने काव्य में मीरा ने यद्यपि अभिधा और व्यंजना शब्दशक्ति का प्रयोग अधिक मात्रा में किया है परंतु उनके काव्य में लक्षणा शब्दशक्ति का पूर्ण रूप से अभाव नहीं पाया जाता। उदाहरणार्थ–

"निपट बंकट छव अटके।
म्हारे णणा निपट बंकट छब अटके।
देख्यां रूप मदन मोहन री पियत पियूख न मटके।

बारिज भवां अलक मतवारी णेण रूप रस अटके।

टेढ़यां कट टेढ़े करि मुरली टेढ़ा पाग लट लटके।"

टिप्पणी

मीरा ने अपने काव्य में व्यंजना शब्दशक्ति का भरपूर मात्रा में प्रयोग किया है। यही कारण है कि इनके काव्य को 'व्यंजना प्रधान काव्य' कहा गया है। मीरा के जिन पदों में विरहाकुलता, प्रेम की पीर, आतुरता और अधीरता व्यक्त हुई है वहां व्यंजना शब्दशक्ति का प्रयोग हुआ है।

बिम्ब–विधान

किसी भी कवि या कवयित्री को पाठक के समक्ष अमूर्त भावों को मूर्त रूप प्रदान करने के लिए बिम्बों का सहारा लेना पड़ता है। मीरा ने भी अपने काव्य की सुंदरता को बढ़ाने के लिए बिम्बों का काव्य में भरपूर प्रयोग किया है। इसी का परिणाम है कि उन्होंने सर्वथा निजी विरहानुभूति को सर्वग्राह्य बना दिया है। इनके काव्य में दृश्य–बिम्बों का प्रयोग अधिक मात्रा में हुआ है। यथा–

"प्रभु जी थे कहां गया नेहड़ा लगाय।

छोडयां म्हां विश्वास संगाती प्रेम री बाती जलाय।

विरह समंद में छोड़ गया हो, नेह की नाव चलाय।

मीरा रे प्रभु कबरे मिलोगे थे बिण रहयां णा जाय।"

मुहावरे, लोकोक्तियां

लोकोक्तियां और मुहावरों का संबंध लोकभाषा से होता है और मीरा के काव्य की भाषा भी साधारण बोलचाल की राजस्थानी भाषा है। मीरा ने अपने काव्य में बहुप्रचलित मुहावरों और कहावतों का प्रयोग किया है। जिससे उनके काव्य में रमणीयता की वृद्धि होती है। उदाहरण के रूप में–

"हेरी मां नन्द को गुमानी म्हारे मनडे बस्यो, आली री म्हारे

नेणां बाण पड़ी, णण चंचल अटक णा माण्या परहथ गयां

बिकाय, माई री म्हा लिया गोबिन्दा मोल इत्यादि।

अलंकार योजना

अलंकार का सामान्य अर्थ होता है–आभूषण अर्थात जिससे काव्य को सजाकर प्रस्तुत किया जाता है। अलंकारों के स्थूल रूप से दो भेद किए गए हैं– 1. शब्दालंकार, और 2. अर्थालंकार। मीरा के काव्य में शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों का ही प्रयोग किया गया है। शब्दालंकारों में अनुप्रास और वीप्सा अलंकार का प्रयोग अधिक हुआ है, जैसे–

1. सूनो गांव देस सब सूनो सूनी सेज अटारी।
2. बावल वैद्य बुलाया री, म्हारी बांह दिखाय।
3. भोजन भवन भलो नहीं लागै पिया कारण भई गेली।

उपरोक्त पंक्तियों में 'स', 'ब' और 'भ' वर्णों की आवृत्ति से अनुप्रास की छटा बिखेरी गई है। संगीत की दृष्टि से भी यह सुंदर पद–रचना है।

टिप्पणी

वीप्सा अलंकार का उदाहरण है–

'जोगी मतजा, मतजा, मतजा, पाइं परुं मैं तेरी चेरी हो।

अर्थालंकारों का संबंध काव्य के आंतरिक पक्ष से होता है। मीरा ने अपने काव्य में रूपक तथा उपमा अलंकार का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग किया है। वैसे अन्य अर्थालंकार उत्प्रेक्षा, अत्युक्ति आदि अलंकारों का भी इनके काव्य में वर्णन मिलता है। यथा–

उपमा "पाना ज्यूं पीली परी, अरु विपत तन छाई।
दास मीरा लाल गिरधर, मिल्या सुख हाई।"

रूपक असुवन जल सीचिं प्रेम बेल बूयां।

मीरा ने अपने काव्य में उत्प्रेक्षा अलंकार का भी सुंदर प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ–

"कुण्डल झलकां कपोल अलकां लहराई।
मीणा ब्रज सर वरज्या, मकर मिलन धाई।"

छंद विधान

मीरा ने अपने काव्य की रचना पिंगल शास्त्र के नियम के आधार पर नहीं की। उन्होंने संगीत को अधिक प्रधानता दी। मीरा ने अपने काव्य में सार, सरसी, विष्णु पद, दोहा, कुण्डल, ताटंक आदि छंदों का प्रयोग किया है। दोहा छंद का एक उदाहरण प्रस्तुत है–

"धणी चेण णां आवडां थे दरसन बिन मोय।
धाम णा भावां नींद णा आव, विरह सतावां मोय।"

दोहा छंद के विषम चरणों में 13 मात्राएं तथा सम चरणों में 11 मात्राएं होती हैं। अंत में लघु आता है। डॉ. रामकुमार वर्मा ने मीरा के काव्य में वर्णित शब्दों के लिए उचित ही कहा है कि–"मीरा में छंद शास्त्र न देखकर उनकी उस भक्ति भावना की ओर ध्यान देना चाहिए जिसने उन्हें कृष्ण–काव्य के कवियों में महत्वपूर्ण स्थान दे रखा है।"

अतः निष्कर्षत : मीरा की भाषा के संदर्भ में कहा जा सकता है कि इनके काव्य की मार्मिकता उसे गुण, दोष, छंद, अलंकार आदि काव्यगत रुढ़ियों से परे ले जाकर पाठक की संवदेना से सीधे जोड़ती है।

2.6 प्रेम दीवानी मीरा

'ढाई आखर प्रेम का पढ़े तो पंडित होय।'

यह छोटा–सा शब्द 'प्रेम' वास्तव में गंभीर और व्यापक अर्थ को अपने अंतस में समाहित किए हुए है। यही जीवन का आधार है और सृष्टि का सार है।

मीरा कृष्ण के प्रेम में विभोर है। उसके शरीर का प्रत्येक अंग कृष्णमय हो गया है। कृष्ण के प्रेम में वह लोक–लाल, कुल मर्यादा सब त्याग देती है। कृष्ण के प्रति उनका प्रेम दिनोदिन बढ़ता ही जाता है। मीरा का काव्य प्रेम के अद्‌भुत गान से भरा हुआ है। प्रेम की एक अखंड, अजस्त्र सरिता उसके पदों में प्रवाहित होती है। मीरा अपनी सुधबुध खोकर

'अपनी प्रगति जांचिए'

10. मीरा के काव्य में मुख्य रूप से कितनी भाषाओं का वर्णन मिलता है?
11. मीरा ने अपने काव्य में किस शब्दशक्ति का अत्यधिक मात्रा में प्रयोग किया है?

टिप्पणी

श्रीकृष्ण का स्मरण करती है लेकिन प्रेम करना इतना सरल नहीं होता। प्रेम के मार्ग में संसार अनेक प्रकार की बाधाएं उत्पन्न करता है। मीरा एक स्थान पर कहती हैं–

"तेरे कारण श्याम सुंदर सकल लोगां हंसी।
कोई कहै मीरा भई बावरी कोई कहै कुलनसी।"

लोग भले ही अब मीरा को 'बिगड़ी' कहें या 'बनी'–मीरा के तन मन में प्रेम का नशा गहन रूप से व्याप्त है। यथा–

"आली रे मोरे नैनन बान पड़ी।
चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत उर बीच आन अड़ी।"

वास्तविक प्रेम लोक निंदा से नहीं डरता। प्रेम के उज्ज्वल और पवित्र क्षेत्र पर विचरण करने वाले प्रेमी किसी प्रकार की लौकिक मर्यादाओं और बंधनों की चिंता नहीं करते। मीरा कहती है कि–

"माई री म्हां लियो गोबिन्दा मोल।
थे कह्यां छाणे म्हां कां चोडडे लिया बजन्ता ढ़ोल।"

मीरा श्रीकृष्ण की रसीली भक्ति में पूर्ण समर्पित हैं। वे सांवरे के रंग में ढलकर, पैरों में घुंघरू बांधकर कृष्ण को मनाने का प्रयास कर रही है। प्रिय के न मिलने पर बिना जल की मछली की तरह तड़पती रहती है लेकिन जिस तरह जल को मछली की पीड़ा का कोई ज्ञान नहीं, दीपक को जलने वाले पतंगे की चिंता नहीं, वैसे ही श्रीकृष्ण भी निष्ठुर प्रवृत्ति के हैं। वह कृष्ण को उलाहना भी देती हैं और मनुहार भी करती हैं। अपने प्रिय को अपनी 'प्रेम की पीर' से भी पूर्णतः परिचित करवाती है, अनेक प्रकार के प्रलोभन और आकर्षणों से उसे रिझाने का कार्य भी करती हैं लेकिन इतने प्रयत्नों के बाद भी जब प्रियतम नहीं आता तब वह विरह के अगाध समुद्र में डूबती चली जाती है, विरहाग्नि में जलती रहती है। मिलन की आकुलता को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

"म्हारो जनम–जनम को साथ थाने नहीं बिसरूं दिन रातीं।
तुम देख्या बिन कल न परत है जानत मेरी छाती।"

अपने प्रिय के वियोग में मीरा सुखानुभूतियों की स्मृतियों में निहित आनंद का अनुभव करती है, और इसी में खो भी जाती है। मीरा श्रीकृष्ण की चिर–अभिसारिका है लेकिन मीरा ने नारीत्व की मर्यादाओं का उल्लंघन कभी नहीं किया। पावस और बसंत, सावन और फागुन में मीरा प्रिय मिलन के लिए व्याकुल हो जाती है। मीरा भी ब्रज की बालाओं के समान शरत पूर्णिमा में अपने कृष्ण के साथ रास–लीला रचना चाहती है और खेलना चाहती है।

"होरी खेलत है गिरधारी।
मुरली चंग बजत डफ न्यारो, संग जुवती ब्रजनारी।
चंदन केसर छिरकत मोहन, अपने हाथ बिहारी।
भरि–भरि मूठि गुलाल लाल चहुं, देता सबन पै डारी।"

टिप्पणी

प्रेम के मार्ग का स्वरूप ही ऐसा है कि यदि हमें प्रेम में अपने प्रिय की प्राप्ति न हो तो मन में प्रिय के प्रति अनेक प्रकार की कुशंकाएं उठने लगती हैं। मीरा के मन में भी ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। उसे ऐसा प्रतीत होने लगता है कि कृष्ण का प्रेम कुछ कम होने लगा है–

"हो गये स्याम दूइज के चंदा।
मधुबन जाइ भये मधु बनिया, हम पर डारो प्रेम का फंदा।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, अब तो नेह परो कहु मंदा।"

मीरा को प्रतीत होता है कि कृष्ण दूसरों के साथ हंसते–बोलते हैं, घुलमिल करते रहते हैं लेकिन मेरे साथ कुछ अकड़े ही रहते हैं। मीरा श्रीकृष्ण के विरह में इतनी डूब गई है कि अब उन्हें कृष्ण से बिछोह का डर खाने लगा है। उसे लगने लगता है कि उसके प्रियतम ने कहीं उसे भुला तो नहीं दिया–

"माई म्हारी हरिहूं न बूझयां बात।
पंड मांसूं पाण पापी निक्रसि क्यूं णा जात।"

मीरा का प्रेम सहज, स्वाभाविक, अकृत्रिम और गहन है। प्रेम ही उसका अर्थ है, प्रेम ही उसकी इति है, प्रेम ही उसकी यति है, प्रेम ही गति। मीरा के प्रेम में नारी सुलभ सभी गुण विद्यमान है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के शब्दों में– "कबीर ने भी 'राम की बहुरिया' बनकर अपने प्रेम भाव की व्यंजना की है पर माधुर्य भाव की जैसी व्यंजना स्त्री भक्तों द्वारा हुई है वैसी पुरुष भक्तों द्वारा न हुई है न हो सकती है। पुरुषों के मुख से वह अभिनय के रूप में प्रतीत होती है। इसमें वैसा भोलापन, वैसी मार्मिकता और कोमलता नहीं आ सकती। पति प्रेम के रूप में ढले हुए भक्ति रस ने मीरा की संगीत धारा में जो दिव्य माधुर्य घोला है वह भावुक हृदयों के और कहीं शायद ही मिले।"

अतः "मीरा कृष्ण के प्रेम में जलती विरह की एक ऐसी वर्तिका थी जिसका ज्वलन ही उच्छ्वास बनकर उसके गीतों में फूट पड़ा तथा जो उसी उच्छ्वसित संगीत की आग में अपने प्राणों में दबाए गीत गाती–गाती ही प्रिय के चरणों में निश्शेष हो गई।"

मीरा ने प्रेम के क्षेत्र में किसी भी प्रकार की साधना पद्धति को नहीं अपनाया। मीरा स्वयं कृष्णमय है, उसे किसी को प्रेम का माध्यम नहीं बनाना पड़ा। प्रेम निवेदन के लिए मीरा ने न तो राधा को माध्यम चुना और न ही गोपियों को। मीरा के पास सभी प्रकार के साधु–संत, पीर–फकीर आते रहते थे। वह ईश्वर के स्वरूप की चर्चा सभी से करती थी। वह सबकी सुनती थी पर उसका हृदय उसका रोम–रोम श्रीकृष्ण के रूप–रंग में डूबा हुआ था। यथा–

'इन नैनन मेरा साजन बसता डरती पलक न लाऊंरी।'

मीराबाई का प्रेम लौकिक रूप में व्यक्त होता हुआ भी, परमात्मा से संबद्ध होने के कारण, वास्तव में अलौकिक, अतएव आध्यात्मिक एवं विरह–गर्भित भी था। मीराबाई को यह बात सिद्धांत रूप से स्वीकृत है कि उनमें और उनके इष्टदेव व प्रियतम में जीवात्मा और

टिप्पणी

परमात्मा की मौलिक एकता के कारण, कोई वास्तविक अंतर नहीं। जीवात्मा को ज्यों ही अपने पूर्व संबंध व उक्त मौलिकता का ज्ञान हो जाता है, त्यों ही वह अपने काल्पनिक आवरण रूपी शरीर एवं तत्संबंधी प्राकृतिक परिस्थितियों के असली रहस्य को समझ, उनके प्रति उदासीन हो जाता है। एक बार फिर उस मिलन के लिए आतुर हो उठता है, जिसे निरे अज्ञान के कारण, वह भूल–सा गया था। अपने उस अविनाशी प्रियतम के प्रति प्रदर्शित इस प्रकार की 'आर्त्ति' को ही विरहगर्भित प्रेम की संज्ञा दी जाती है। इस प्रेम के रूप को समझाने के लिए प्रसिद्ध सूफी कवि ने कहा है–

प्रेमहिं माँह विरह रस रसा। मैंन के घर मधु अमृत बसा।।

अर्थात जिस प्रकार मोम के घर अथवा मधु–कोष में अमृत रूपी मधु संचित रहा करता है, उसी प्रकार प्रेम के अंतर्गत विरह भी निवास करता है। विरह को सदा सच्चे प्रेम के भीतर नीहित समझना चाहिए, क्योंकि प्रेम का अस्तित्व यदि है, तो वह विरह के ही कारण है। विरह ही प्रेम का सार है। इस प्रेम का आधार, जायसी के भी अनुसार, स्वयं परमात्मा एवं सारे ब्रह्मांड की एकता में सन्निहित है, जिसको भूल जाने के कारण सारी सृष्टि आरंभ से ही पूर्ण विरही की भांति निरंतर बेचैन बनी डोलती चली आ रही है। अतएव अपनी इस प्रकार की वास्तविक स्थिति का पता लगते ही मनुष्य को पुरानी बातें जैसे स्मरण हो आती हैं। वह आपने आप से कह उठता है–

"हुता जो एकहि संग, हौं तुम काहे बीछुरा?
अब जिउ उठै तरंग, मुहम्मद कहा न जाइ कछु।।"

उनका 'विश्वास संगाती' प्रभु नेहड़ी लगाकर चला गया है और उन्हें प्रेम की बाती लगाकर और 'नेह की नाव चलाकर' विरह सागर में छोड़ गया है, उसके बिना उन्हें रहा ही नहीं जाता। अवसर आने पर भी वे उसे भरपूर न देख सकीं और उन उससे जी खोलकर बातें ही कर सकीं, अतएव, उन्हें इस बात का कष्ट है कि कदाचित, हरि ने उसकी भीतरी 'आर्त्ति' व चाह को भली भांति समझ न पाया हो। इस असह्य भावना से अत्यंत दुखिनी बन, वे कटारी से कंटमार कर अथवा 'विष खाकर' भी अपने प्राण देने पर उतारू हैं क्योंकि उनकी समझ में नहीं आता कि इस दुर्दशा में भी, आखिर में 'पापी' उनके शरीर को आपने आप क्यों नहीं छोड़ जाते? उन्हें खाना पीना तो भाता नहीं, रात को उनसे सोना तक नहीं बनता, उसकी सेज सूली पर बिछी जान पड़ती है, रात भर उनके बिना सूनी सेज पर सिसकते सिसकते जी जाता रहता है। कभी–कभी सुध भूलने पर आंख लगते ही, वे चमक उठा करतीं हैं। उस समय उन्हें चंद्रकला जैसी सुंदर वस्तु भी नहीं सुहाती। वे रात भर बैठी–बैठी तारा गिनती अथवा आंसुओं की माला पिरोती रहती हैं। दिन में भी उनका वही हाल है। उन्हें घर का आंगन अच्छा नहीं लगता और वे नित्य द्वार पर खड़ी–खड़ी उसी की बाट जोहती रहती हैं। उन्हें बराबर 'तालावेली' लगी रहती अर्थात बेचैनी सताती रहती है। जैसे चातक धन के लिए रटता या मछली पानी के लिए तड़पती है, वैसे ही वे सुध–बुध बिसराकर 'पिव–पिव' करती रह जाती है। बिरह भुवंग ने उनके कलेजे को डस लिया है और हलाहल की लहर जाग पड़ती है।

टिप्पणी

मीरा की विरह–उक्तियों में सरलता तथा स्वाभाविकता है–

बात कहूँ मोहि बाल न आवै नैन रहै झर्राई।
किस विधि चरन कमल मैं पड़िहौं सबहिं अड्ग थर्राई।।

मीरा के दर्द का हाल कैसे किसी को मालूम हो। 'घायल' की गति या तो 'घायल' ही जानता है अथवा जिसके कारण उसे चोट पहुंचती हो, तीसरा नहीं समझ पाता। प्रियतम को इसका पता कैसे लगे? उसके पास संदेश कैसे भेजा जाए क्योंकि संदेश पत्र लिखने बैठने पर भी कलम पकड़ते ही हाथ कांपने लगता है। हृदय 'थर्रा' उठता है, मुंह से बात नहीं निकलती और आंखें आंसुओं से भर जाती हैं। उस समय ऐसा सोचकर भी अंग–अंग थर्राने लगता है कि उनके चरण कमल को किस प्रकार वे पकड़ पाएंगी।

मीरा का प्रेम उन्माद और प्रलाप वाला कृत्रिम प्रेम नहीं है, वरन साधना और आत्म समर्पण की भावना से पूर्ण एक सरल नारी का सहज प्रेम है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी मीरा के माधुर्य भाव को विशेष प्रभावोत्पादक होने के कारणों की ओर निर्देश करते हुए लिखा है, "माधुर्य भाव के अन्यान्य कवियों की भांति मीरा का प्रेम निवेदन और बिरह व्याकुलता अभिमानाश्रित और अध्यंतरित नहीं है बल्कि सहज और साक्षात संबंधित हैं। इसीलिए इन पदों में जिस श्रेणी की अनुभूति प्राप्त होती है, वह अन्यत्र दुर्लभ है। वह सहृदय को स्पंदित और चालित करती है और अपने रंग में रंग डालती है।" मीरा के माधुर्य भाव की विशिष्टताओं को इस प्रकार व्यक्त कर सकते हैं–

1. माधुर्य भाव के लिए नारी सुलभ आत्मसमर्पण, आत्मोसर्ग का भाव चाहिए। मीरा को यह भाव निसर्गसिद्ध है, इसलिए उनकी अभिव्यक्तियां सहज हुई हैं।
2. कृष्ण भक्ति के अन्य पुरुष कवियों को किसी न किसी गोपी या सखी का अभिमान करना पड़ता है, तदंतर जिस गोपी–प्रेम का रूप अभिव्यक्त होता है, वह आरोपित होता है, सहज नहीं। मीरा का प्रेम अनभिमान सिद्ध है, अतः सहज है।
3. अन्य भक्त कवियों की गोपियों के वियोग एवं संयोग के संकल्पात्मक दुख एवं सुख को अनुभव करने के लिए उस स्थिति में ले जाना पड़ता है, मीरा का प्रेम ही विरह से उत्पन्न है, उसमें अभाव की वेदना स्वयंमेव सन्निविष्ट हो गई है, अतः उनका वियोग अनुभूत वियोग है।
4. मीरा के मधुर भाव में मान, ईर्ष्या, खंडिता एवं विरह की एकादश दशाओं का परंपरागत वर्णन नहीं है, अपने हृदय की व्यथा है।
5. मीरा के मधुर भाव मर्यादित प्रेम को लेकर प्रस्तुत हुए हैं, उसमें ताप नहीं है, ऐंद्रियता नहीं है, अपार्थिव के प्रति आकुल हृदय की पुकार है।
6. स्वकीया प्रेम का मर्यादाबद्ध रूप ही प्रधान है।

हिंदी के कृष्ण भक्ति साहित्य में मीरा को ही प्रकृति मधुर भाव का एकमात्र उत्तम उदाहरण कहना संगत है। इसी कारण मीरा को प्रेम दीवानी भी कहा जाता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

12. किसके प्रेम में मीरा लोक–लाज, कुल मर्यादा सब त्याग देती है?
13. प्रेम के मार्ग में अनेक बाधाएं कौन उत्पन्न करता है?
14. किस प्रेम को लोक निंदा का डर नहीं होता?
15. मीरा और ब्रज की बालाएं श्रीकृष्ण के साथ रास–लीला कब रचना चाहती हैं?

2.7 पाठांश

टिप्पणी

मण थें परस हरि रे चरण।
सुभग सीतल कँवल कोमल, जगत ज्वाला हरण।
जिण चरण प्रहलाद परस्याँ, इन्द्र पदवी धरण।
जिण चरण ध्रुव अटल करस्या, सरण असरण सरण।
जिण परण ब्रह्माण्ड भेटयाँ, नखसियां सिरी धरण।
जिण परण कालियाँ नाथ्याँ, गोप–लीला करण।
जिण चरण गोबरधन धारयाँ, गरब मघवा हरण।
दासि मीराँ लाल गिरधरे, अगम तारण तरण।

प्रसंग

प्रस्तुत पद भक्तिकाल की कृष्ण भक्तिकाव्य धारा की प्रमुख कवयित्री मीराबाई की पदावली से परिप्लुत है। इंन समस्त पदों में मीराबाई अपने इष्ट गिरिधर गोपाल से उनके चरणों में रति (प्रेम) की याचना करती है। इनके पद ब्रजभाषा और गुजराती में हैं। प्रेम की पीर का मीराबाई जैसा मार्मिक वर्णन अन्यत्र दुर्लभ है।

प्रस्तुत पद भक्तिकालीन काव्यधारांतर्गत कृष्णभक्ति काव्यधारा की कीर्तिस्तंभ, हिंदी साहित्याकाश की देदीप्यमान नक्षत्र, कृष्णप्रेम में निमग्न मीराबाई द्वारा रचित 'पदावली' से चयनित है। इस पद में कृष्ण के चरणों की अर्चना करती हुई मीराबाई, ध्रुव, प्रहलाद, गोप, ग्वाल, गोपियों पर कृपा के प्रसंगों को स्मरण करती हुई कृष्णकृपा की याचना करती है।

व्याख्या

हे मेरे मन! तू हरिचरणों (कृष्णचरणों) की विनीत भाव से वंदना कर। इनके चरण सौभाग्यदायक, कमल के समान कोमल तथा शीतल एवं दैहिक (शारीरिक), दैविक (देवताओं द्वारा प्रदत्त जैसे आंधी, तूफान, बाढ़, भूकंप) तथा भौतिक (पशु, सर्पादि) तापों (कष्टों) को दूर करने वाले हैं। जिन चरणों की कृपा से भक्त प्रहलाद को इन्द्र के समान सुख (सिंहासन) प्राप्त हुआ। जिन चरणों की कृपा से ही भक्त ध्रुव को अटल, अविचल ध्रुवलोक प्राप्त हुआ। जो अशरण को शरण प्रदान करते हैं, अर्थात जहां असहाय को आसरा मिलता है। जिन चरणों में यह संपूर्ण ब्रह्माण्ड व्याप्त है, जो सर्वांग सुंदर हैं। गोपों के साथ लीला करते–करते जिन श्रीचरणों ने कालियानागर को नाथा (वध किया)। इन्हीं भगवान कृष्ण ने इंद्र का घमंड चूर करने के लिए गोवर्धन पर्वत को अपनी कनिष्ठिका पर धारण किया। हे गिरिधर! मैं तो तेरी दासी हूं, आपके चरण तो अगम्य संसार सागर से पार कराने वाली नौका के समान हैं, सो मुझ पर भी कृपा कीजिए।

विशेष

1. 'सीतल कवल कोमल' में अनुप्रास अलंकार की छटा दर्शनीय है।
2. प्रहलाद, ध्रुव, गोवर्धन के दृष्टांत सराहनीय हैं।

टिप्पणी

3. भगवान की अहेतुकी कृपा की चर्चा एवं कामना की गई है।
4. सरस, सहज व प्रवाहमयी ब्रजभाषा का सुंदर प्रयोग हुआ है।
5. उपमालंकार का सुंदर प्रयोग दृष्टव्य है।
6. दास्य भक्ति का यह सुंदर पद है।

निपट बंकट छब अटके।
म्हारे णेणा निपट बंकट छब अटके।
देख्याँ रूप मदन मोहन री पियत पियूखन मटके।
बारिज भवाँ अग मतवारी, णेण रूप इस अटंके।
टेढ़्या कट टेढे कर मुरली, टेढ़्या पाय लर लटके।
मीरां प्रभु रे रूप लुभाणी, गिरधर नागर नटके।

प्रसंग

प्रस्तुत पद मीराबाई की सुंदर रचना 'मीराबाई की पदावली' से चयनित है। इसमें मनमोहन कृष्ण की त्रिभंगी छवि का मनोहारी वर्णन किया गया है।

व्याख्या

मेरे नेत्र श्यामसुंदर की तीन जगह से टेढ़ी छवि में अटक गए हैं। जब से मेरे इन नेत्रों ने मदनमोहन के रूप (सौंदर्य) को देखा है तब से उनकी रूपमाधुरी रूपी सुधा (अमृत) का बारंबार पान करना चाह रहे हैं। कमल के समान भौंह और घुंघराले केश (बाल) तथा अनुपम रूपराशि में मेरे नेत्र अटक गए हैं। मेने नेत्र आपकी टेढ़ी छवि, हाथ में मुरली (वंशी), और मोतियों की सुंदर गलमाल में अटक गए हैं। नटवरन कृष्ण की ऐसी सुंदर छवि के जाल में कौन रसिक है जो फंसना नहीं चाहेगा।

विशेष

1. श्याम सुंदर की मनोहारी छवि का दर्शन है।
2. 'निपट बंकट छब अटके' में अनुप्रास की छटा शोभायमान है।
3. भावानुकूल ब्रजभाषा का प्रयोग है।
4. पद में गेयता है।
5. मीरा का समर्पण भाव प्रशंसनीय है।

म्हाँ गिरधर आगाँ णाच्या री।
णाच णाच म्हाँ रसिक रिझावाँ, प्रीति पुरातणा जाँच्या री।
स्याम प्रीत री बाँध घूघडया, मोहण म्हारो साच्याँ री।
प्रीतम पल छण ण बिसरावाँ, मीरां हरि रंग राच्याँ री

टिप्पणी

प्रसंग

प्रस्तुत पद मीराबाई की सुंदर रचना 'मीराबाई की पदावली' से चयनित है। इसमें मनमोहन कृष्ण की त्रिभंगी छवि का मनोहारी वर्णन किया गया है।

व्याख्या

मीराबाई कहती हैं कि मैं तो अपने गिरिधर के आगे नाच–नाचकर उसे प्रसन्न करती हूं (रिझाती हूं)। मैं तो नाचकर अपने प्रभु रसिक श्रीकृष्ण से अपनी भक्ति (प्रीति) को परखती हूं। मैं तो मोहन के प्रेम में आसक्त होकर घुंघरू बांधकर उसी सच्चे प्रेमी को रिझाती हूं। इस समर्पण में मुझे लोकलाज, कुल की मर्यादा की तनिक भी परवाह (चिंता) नहीं है। मेरे प्रीतम (प्रभु) अब तो एक क्षण के लिए भी मुझे न भुला दें। मैं उनके प्रेमरंग में रंग गई हूं।

विशेष

1. मीरा की दास्य–भक्ति प्रदर्शित है।
2. कृष्ण के प्रति अनन्यता का यह उत्कृष्ट उदाहरण है।
3. भावानुकूल ब्रजभाषा का प्रयोग है।
4. माधुर्य गुण का समावेश है।
5. मीरा का सांगीतिकज्ञान इस पद में परिलक्षित हो रहा है।

म्हाराँ री गिरधर गोपाल दूसराँ णाँ कूयाँ।
दूसरा णाँ कूयाँ साधाँ सकल लोक जूयाँ।
भाया छाँड़याँ, बन्धा छाँड़याँ सगाँ सूयाँ।
साधाँ ढिंग बैठ–बैठ, लोक लाज खूयाँ।
भगत देख्याँ राणी ह्यायाँ, जगत देख्या रुयाँ।
अँसुवाँ जल सींच–सींच प्रेम बेल बूयाँ।
दध–मथ घृत काढ़ लयाँ डार दया छूआँ।
राणा विषरो प्यालो भेज्याँ पीय मगण हूयाँ।
मीरा री लगण लग्याँ होणा हो जो हूयाँ।

प्रसंग

प्रस्तुत पद मीराबाई की सुंदर रचना 'मीराबाई की पदावली' से चयनित है। इसमें मनमोहन कृष्ण की त्रिभंगी छवि का मनोहारी वर्णन किया गया है।

व्याख्या

मीराबाई कहती हैं कि मेरे तो एकमात्र गिरिधर गोपाल ही सहारा हैं, दूसरा कोई भी नहीं। हे संतों! मैंने सारा संसार देख लिया, परख लिया, श्यामसुंदर के बिना आश्रय देने वाला कोई

टिप्पणी

दूसरा है ही नहीं। मैंने इनकी ही खातिर तो भाई, बंधु–बांधव, परिजन और सभी सगे–संबंधियों को त्याग दिया। इसका ऐसा कहना है कि मैंने संतों के पास बैठ–बैठकर लोकलाज खो दी है। अर्थात मुझे अब समाज का, संसार का कोई संकोच नहीं रह गया है। मेरा तो अनुभव यह रहा है कि जब–जब मैंने संसार की ओर (संसार की दशा) देखा है, मुझे पीड़ा मिली है। जब–जब प्रभु के भक्तों के आश्रय में गई हूं। मैंने कृष्ण–प्रेम की यह बेल आंसुओं से सींच–सींच कर बड़ी की है। जैसे दही को मथकर बुद्धिमान उसमें से घी निकालकर मट्ठा को छोड़ देते हैं, ऐसा ही मैंने किया है। संसार को परखकर मैंने संसार के स्वामी (भगवान) को अंगीकार कर लिया है। राणा जी द्वारा भेजे विष के प्याले को मैंने प्रभु–प्रसाद समझकर पी लिया और मगन हो गई। मीरा की लगन तो अब गिरिधर कृष्ण से लग गई है, अब उसे अपने जीवन की परवाह नहीं, जो होगा देखा जाएगा। अर्थात मेरा अमंगल अब हो ही नहीं सकता।

विशेष

1. 'गिरिधर गोपाल', 'लोक लाज' में अनुप्रास की छटा शोभायमान है।
2. सरल, सहज ब्रजभाषा का प्रयोग है।
3. पद में गेयता है।
4. इस पद में कृष्ण की अनन्यता के दर्शन हो रहे हैं।
5. प्रसाद गुण का समावेश है।

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।
गिरधर म्याँरो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ।
रैण पड़ै तब ही उठि जाऊँ, भोर भये उठि आऊँ।
रैण दिना वाके संग खेलूँ, ज्यूँ–त्यूँ वाहि लुभाऊँ।
मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण विण पल न रहाऊँ।
जहँ बैठावे तितही बैठूँ, बेचे तो बिक जाऊँ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार–बार बलि जाऊँ।

प्रसंग

प्रस्तुत पद मीराबाई की सुंदर रचना 'मीराबाई की पदावली' से चयनित है। इसमें मनमोहन कृष्ण की त्रिभंगी छवि का मनोहारी वर्णन किया गया है।

व्याख्या

मीराबाई कहती हैं कि मेरा मन करता है कि मैं अपने प्राणप्रिय गिरिधर के घर जाऊं। गिरिधर मेरे वास्तविक (सच्चे) प्रीतम हैं। उनको देखते ही उनके रूप पर मैं मोहित हो जाती हूं। उनसे मिलने को दिन और रात मेरे लिए एक समान है। राह में उनसे मिलने को जाती हूं, भोर में वापस आ तो जाती हूं, पर मिलनोत्कण्ठा तब भी बनी रहती है। दिन–रात निरंतर

टिप्पणी

उसी प्रियतम के साथ खेलती रहूं, जिस किसी प्रकार से हो सके उसको मोहित करती रहूं। वह जो पहनने को देगा, पहन लूंगी, जो कुछ खाने को दे देगा, खा लूंगी। मेरा और उनका प्रेम (नाता) बड़ा पुराना है, उनके बिना एक पल भी रह पाना मुश्किल है। वह मेरा प्रीतम जहां बिठा देगा, वहीं बैठ जाऊंगी, अगर बेचेगा, तो उसके कहने पर बिक भी जाऊंगी। मीरा के तो सर्वस्व भगवान कृष्ण ही हैं, वह उन पर बारंबार बलिहारी (न्यौछावर) होना चाहती हैं।

विशेष

1. बार–बार में पुनरुक्ति प्रकाश अलंकार है।
2. अपने प्रिंयतम (आराध्य) कृष्ण के संकेत–मात्र पर प्राणोत्सर्ग का अनूठा रूपक है।
3. पद में गेयता है।
4. आत्मनिवेदन नामक भक्ति के दर्शन हो रहे हैं।
5. भावानुकूल ब्रजभाषा का सुंदर प्रयोग है।

माई री म्या लियाँ गोबिन्दा मोल।
थें कह्याँ छाणे म्हाँ काचोड़डे, लिया री बजन्ता ढोल।
थे कह्याँ मुँहैधो म्हाँ कह्याँ सुस्तो लिया री तराजाँ तोल।
तण वाराँ म्हाँ जीवन वाराँ, वाराँ अमोलक मोल।
मीराँ कूँ प्रभु दरसरण दीज्याँ, पूरब जणम को कोल।

प्रसंग

प्रस्तुत पद मीराबाई की सुंदर रचना 'मीराबाई की पदावली' से चयनित है। इसमें मनमोहन कृष्ण की त्रिभंगी छवि का मनोहारी वर्णन किया गया है।

व्याख्या

मीराबाई कहती हैं कि अरी सखी! मैंने तो अपने गोविंद को खरीद लिया है। तुम सब कहती हो मैंने छिपकर कृष्ण को खरीदा है, पर मैं तो कहती हूं कि मैंने जानबूझकर, ढ़ोल बजाकर अपने कृष्ण को खरीदा है। तुम कहती हो मंहगा, पर मैं कहती हूं कि मैंने तराजू में तोलकर बड़ा सस्ता ही कृष्ण को खरीद लिया है। अब तो मैं इस पर तन, मन, न्यौछावर करूंगी, यह मेरे लिए अनमोल है। हे प्रभु! मीरा को दर्शन अवश्य दीजिए, यह वचन आपने मुझे पिछले जन्म में ही दिया था।

विशेष

1. कृष्ण के प्रति अनन्य–प्रेम यहां परिलक्षित हो रहा है।
2. कृष्ण–दर्शन की उत्कट अभिलाषा यहां प्रकट हो रही है।
3. रूपक अलंकार का मधुरिम प्रयोग है।
4. पद में गेयता है।
5. भावानुकूल ब्रजभाषा का सुंदर प्रयोग है।

म्हाँ गिरधर रंग लाती।
पँचरँग चोला पहर्या सखी म्हाँ, झिरमिट खेलण जाती।
वाँ झिरमिट माँ मिल्या साँवरो, देख्या तण मण रानी।
जिणरो पियाँ परदेस बरुयाँरी लिख–लिख भेज्याँ पाती।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर मग जोवाँ दिण राती।

टिप्पणी

प्रसंग

प्रस्तुत पद भक्तिकालीन कृष्ण काव्यधारा की जाज्वल्यमान कवयित्री मीराबाई द्वारा रचित 'मीराबाई की पदावली' से अनुस्यूत है। इसमें कृष्ण के प्रति मीरा की भक्ति का उच्चतम सोपान वर्णित है।

व्याख्या

मैं तो गिरिधर के प्रेम में रंग गई हूं। मैंने विधिवर्णी चोला (कुर्ता), पहन रखा है अर्थात मेरा यह भौतिक शरीर पंचतत्वों (क्षिति, जल, पावक, गगन, समीर) द्वारा निर्मित है। मेरे और प्रभु के बीच लुका–छुपी का खेल चल रहा है। इसी खेल में मुझे मेरा सांवरा सलोना कृष्ण प्राप्त हो जाता है (मिल जाता है)। उसे पाकर मेरा तन–मन पुलकित (प्रसन्न) हो गया है। परदेस में जा बैठे पति को उसकी प्राणेश्वरी नित्य पत्र लिखती है, पर मेरा प्रियतम तो मेरे हृदय में सदा ही रहता है, मैं उसे कहीं आने–जाने नहीं देती। मीरा तो अपने प्रभु की दिन–रात प्रतीक्षा ही करती रहती है।

विशेष

1. पति–पत्नी का सुंदर रूपक यहां भक्त और भगवान के बीच प्रस्तुत किया है।
2. पद में गेयता है।
3. कृष्ण–प्रेम का विश्वास दर्शनीय है।
4. अनुप्रास अलंकार की छटा दर्शनीय है।
5. प्रसाद गुण विद्यमान है।
6. दृष्टांत अलंकार की छटा विद्यमान है।
7. मनोहारी ब्रजभाषा का प्रयोग है।
8. भक्ति में समर्पण का भाव दृष्टव्य है।

सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हाँरो काँई करलेसी।
म्हें तो गुण गोविन्द का गास्याँ, हो माई।
राणाजी रूठ्याँ बाँरो देस रखासीं।
हरि रूठ्याँ कुम्हलास्याँ, हो माई।
लोक लाज की काण न मानूँ।
निरभै निसाणाँ धुरास्याँ हो माई।
स्याम नाम रो झाँझ चलास्याँ।

भवसागर तर जास्याँ हो माई।
मीराँ सरण सँवल गिरधर की।
चरण कँवल लपटास्याँ, हो माई।

टिप्पणी

प्रसंग

प्रदत्त पद्यावतरण हमारे पाठ्यक्रम में संकलित 'मीराबाई की पदावली' से चयनित है। इसकी रचयिता कृष्णप्रेम में दीवानी मीराबाई हैं। इस पद में मीरा संसार की परवाह न करने की शिक्षा देती हुई अपनी एकनिष्ठता सिद्ध कर रही है।

व्याख्या

मीराबाई कहती है कि मेरा पूरा परिवार जिनमें मेरे ससुरालजन सिसौदिया वंश के राणा जी भी मुझसे रूठ जाएं तो मुझे कोई परवाह नहीं, वह मेरा कुछ न बिगाड़ सकेंगी। हे सखी! मैं अपने गोविंद का गुणगान (कीर्तन) निर्भय होकर करूंगी। अगर मुझसे राणा जी रूष्ट हो जाएंगे तो अपने राज्य को धरें (रक्षा करते करें), मुझे क्या? हां! पर अगर मेरे इष्ट गोविंद मुझसे रूठ जाएंगे, तो मैं उनके वियोग में सूख जाऊंगी अर्थात मेरी प्रेम–बेल कुम्हला जाएगी, कांतिहीन हो सूख जाएगी। मैं लोक–लाज की तनिक भी परवाह न करके, निडर होकर कृष्णप्रेम का नगाड़ा बजाऊंगी अर्थात सभी को अपने प्रेम के विषय में बताऊंगी। मुझे तो इतना भरोसा है अपने उस कृष्ण पर, कि उसके नाम रूपी जहाज के सहारे मैं इस भवसागर (संसार सागर) से पार हो जाऊंगी। मीराबाई तो अपने श्यामसुंदर की शरण में आ गई हैं, अब तो मैं उनके चरण–कमलों में लिपट जाऊंगी, अर्थात मात्र उन्हीं के श्रीचरणों का आश्रय लूंगी।

विशेष

1. कृष्ण–चरणों में अटूट विश्वास का डिंडिमघोष करता है प्रस्तुत पद।
2. पद में गेयता है।
3. 'निरभै निसाणाँ' में अनुप्रासालंकार की छटा शोभायमान है।
4. भक्ति के एक प्रकार 'कीर्तनम्' का सुंदर प्रदर्शन है।
5. भावानुकूल ब्रजभाषा का सुंदर, सुष्ठु प्रयोग है।

लगण म्हारी स्याम सूँ लागी, णेणा णिरख सुख पाय।
साजाँ सिंगार सुहागाँ सजणी, प्रीतम मिल्यौ धाय।
वरणाँ बऱ्याँ बापुरी, जणमा जणम णसाय।
बऱ्याँ साजण साँवरो री, म्हारो चुड़लो अमर हो जाय।
जणम जणम रो काण्हड़ो, म्हारी प्रीत बुझाय।
प्रभु हरि अविनासी, कब रे मिलस्यो आय।

प्रसंग

प्रस्तुत पद्यांश हमारे पाठ्यक्रमांतर्गत 'पदावली' से चयनित है। इसकी रचयिता भक्तिकाल की प्रख्यात कवयित्री, कृष्णप्रेम में दीवानी मीराबाई हैं। इस पद में मीरा कहना चाहती है

कि सांसारिक पति से नाता जोड़ने से क्या लाभ? वह तो एक दिन मर जाएगा। जो संसार का पति (स्वामी) है उससे संबंध जोड़कर तो देखो, कभी निराश नहीं होना पड़ेगा।

टिप्पणी

व्याख्या

अब तो मेरी लगन (प्रेम) श्यामसुंदर से लग गई है। उसको देखकर ही नेत्रों को सुख (चैन) मिलता है। अब मैं सारा सौभाग्य–सूचक शृंगार करके अपने प्रियतम श्यामसुंदर से मिलने जा रही हूं। मैंने निश्चय कर लिया है कि किसी सांसारिक पति से विवाह नहीं करूंगी, जो जन्म लेता है और मर जाता है। अब तो मैं अपना साजन (पति) उसी श्यामसुंदर को बनाऊंगी, जो अविनाशी है, अव्यक्त है, चिन्मय है। उसके साथ विवाह करने से मेरी सुहाग की चूड़ी अमर हो जाएगी। हे कृष्ण! आपसे यह विनती है कि मात्र इस जन्म में ही नहीं आप हर जन्म में मुझे मिलकर मेरे प्रेम की रक्षा करो। मीरा कहती हैं कि हे मेरे! अविनाशी प्रभु आप कब दर्शन दोगे? कृपया शीघ्र आकर मिलिए, अब आपसे बिछोह (विरह) मुझसे सहा नहीं जाता।

विशेष

1. कृष्ण प्रेम की ऐसी अनन्यता अन्यत्र दुर्लभ है।
2. पद में गेयता है।
3. अनुप्रास, यमक अलंकार की सुंदर छटा दर्शनीय है।
4. विवाह का सुंदर, शाश्वत रूपक प्रस्तुत है।
5. सहज, सुगम, भावानुकूल ब्रजभाषा का सुंदर प्रयोग है।

गतिविधि

मीराबाई के व्यक्तित्व को ध्यान में रखते हुए अपने क्षेत्र की किसी सक्रिय महिला से मुलाकात कर साक्षात्कार कीजिए।

क्या आप जानते हैं?

मीराबाई ने अपनी वाणी को रागों में ही उच्चारित किया है, जिसमें अधिकतर शब्दों में भैरवी राग को देखा जा सकता है।

2.8 सारांश

कृष्ण काव्य धारा में मीरा का स्थान बहुत ऊंचा है। प्रेम की जो तन्मयता मीरा में दृष्टिगोचर होती है, वह संसार की कवयित्रियों में दुर्लभ है। जो स्थान यूनानी कविता में सैफो का है, अरबी कविता में राबिया का है, स्पेनी कविता में टेरेसा का है तमिल कविता में गोदा का है वही स्थान गुजराती और हिंदी कविता में मीरा का है। सैफो और मीरा के जीवनों में कुछ समता भी है। दोनों उचकुलोद्भव थीं, दोनों को अपना–अपना आवास त्याग कर भ्रमण

टिप्पणी

करना पड़ा था, दोनों को वैधव्य की व्यथा झेलनी पड़ी थी, दोनों का मूल विषय प्रेम है। सैफो प्रेम की देवी अफ्रोडाइटी के मंदिर में अनेक सखियों के साथ प्रेम–गान गाया करती थी और जब सखियों में से कोई विवाहादि कारणों से उससे दूर हो जाती, तब वह पुरुष के आवेग के साथ उसका स्मरण कर–कर के विकल होती थीं। सैफो के जीवन पर प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। एक कथा प्रेम में निराश होने पर उनके आमघात का उल्लेख करती है, दूसरी वृद्धावस्था में श्वेत केश देख कर उन्हें व्यथित हुआ बताती है। सैफो के प्रेम में पार्थिवता अत्यंत स्पष्ट है, जबकि मीरा के प्रेम में पार्थिवता आध्यात्मिकता बन गई है। शायद इस कारण से भी मीरा की पदावली जनता का कंठहार बन गई और सैफो की पदावली को हृदयहीन चर्च ने जलाकर राख कर दिया।

सहस्रों पदों में से सैफो के कुछ पद ही प्राप्त हो पाए हैं, जो अपनी निश्छल प्रेमानुभूति के कारण संसार के गीति काव्यों में सैफो को ऊंचा स्थान दिला चुके हैं। सैफो का जन्म ढाई हजार साल से भी पहले हुआ था, पर उनका नाम आदर से लिया जाता है। उनका प्राचीन यूनान और मिस्र में बड़ा सम्मान था, यह अनुसंधान स्पष्ट कर चुका है। मीरा को जो आदर प्राप्त हुआ है, वह सैफो को प्राप्त होने वाले आदर से बहुत कुछ भिन्न है। मीरा केवल कवयित्री नहीं है, महान नारी भी है, नारीत्व का आदर्श भी है।

मीरा के पद गुजरात, राजस्थान, उत्तर प्रदेश आदि में सदियों से गूंजते आ रहे हैं और स्यात् सदैव गूंजेंगे, क्योंकि उन्हें साहित्य ने ही नहीं, जनता की आत्मा ने भी अपनाया है। दक्षिण में मीरा दासी संप्रदाय विद्यमान है। राजस्थान में अनेक स्थानों पर मीरा की प्रतिमा का पूजन होता है। आज विश्व में जनता की जितनी और जैसी श्रद्धा मीरा को प्राप्त है, उतनी और वैसी श्रद्धा किसी कवयित्री को प्राप्त नहीं है। मीरा को संसार की सर्वश्रेष्ठ कवयित्रियों में सरलता से प्रतिष्ठित किया जा सकता है। भारत की यह महानतम कवयित्री स्पेन की टेरेसा के सदृश न अधिक पढ़ी–लिखी थी, न बौद्धिक दृष्टिकोण वाली थी। उसे अपने 'गिरधर गोपाल' से सीधा–सादा प्रेम था। प्रेम सबसे बड़ी कला है, प्रेम सबसे बड़ी कविता है, प्रेम सबसे बड़ी साधना है, प्रेम सबसे बड़ा दर्शन है, मीरा इसे जानती थीं। अनुभूति की तीव्रता और अभिव्यक्ति की अकृत्रिमता में मीरा से अधिक श्रेष्ठ कवयित्री शायद ही मिले। यद्यपि एक–सी अनुभूति और एक–सी अभिव्यक्ति कभी–कभी धैर्य की कड़ी परीक्षा लेने लगती है, तथापि मीरा की पदावली हिंदी के लिए गर्व की विभूति है।

2.9 मुख्य शब्दावली

- **मोहनि** : आकर्षक
- **मकराकृत** : मकर या मछली के आकार का
- **अरुण** : लाल, ऊषा या सिंदूर के रंग का, मूक
- **उर** : हृदय, श्रेष्ठ, उत्तम
- **कटि** : कमर, पेड़
- **चाकर** : नौकर, सेवक
- **राजति** : सुशोभित

2.10 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

टिप्पणी

1. संस्कृत भाषा में
2. आभ्यंतरिक भावों का पूर्ण प्रकाश
3. महाराणा रत्नसिंह के छोटे भाई विक्रमजीत को
4. कर्मवती देवी
5. वृंदावन
6. मेड़ते में
7. रामस्वरूप चतुर्वेदी
8. महादेवी वर्मा से
9. स्त्री चेतना के इतिहास की
10. चार भाषाओं का (क) राजस्थानी (ख) ब्रजभाषा, (ग) गुजराती, (घ) पंजाबी
11. अभिधा और व्यंजना शब्दशक्ति का
12. कृष्ण के प्रेम में
13. संसार
14. वास्तविक प्रेम को
15. शरत् पूर्णिमा में

2.11 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. 'वैष्णवों की पद्धति' का वर्णन कीजिए।
2. मीराबाई की रचनाओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए।
3. राजस्थानी भाषा की विशेषताएं बताइए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. मीरा का काव्य सामंतवाद को चुनौती देता है–विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
2. मीरा के काव्य में स्त्री चेतना का मूल्यांकन कीजिए।
3. मीरा के काव्य में भाषा की विविधता का वर्णन कीजिए।
4. ''मीरा प्रेम दीवानी थी' कथन की विवेचना कीजिए।
5. सप्रसंग व्याख्या कीजिए–
   (क) निपट बंकट..................गिरधर नागर नटके।
   (ख) मैं तो गिरधर के................बार–बार जाऊं।
   (ग) लगण म्हारी स्याम................कब रे मिलस्यो आय।

2.12 आप ये भी पढ़ सकते हैं

टिप्पणी

1. डॉ. नगेंद्र, *हिंदी साहित्य का इतिहास*।
2. आचार्य रामचंद्र शुक्ल, *हिंदी साहित्य का इतिहास*।
3. गुलाबराय, *हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास*।
4. डॉ. द्वारिकाप्रसाद सक्सेना, *हिंदी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि*।
5. परशुराम चतुर्वेदी, *मीराबाई की पदावली*।
6. विश्वनाथ त्रिपाठी, *मीराबाई*।
7. प्रो. देशराजसिंह भाटी, *मीराबाई और उनकी पदावली*।
8. डॉ. शशिप्रभा, *मीरा कोश*।

इकाई 3 आचार्य केशवदास

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

3.0 परिचय
3.1 इकाई के उद्देश्य
3.2 रामकाव्य परंपरा और रामचंद्रिका
3.3 केशव का आचार्यत्व
3.3.1 केशव की 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' में आचार्यत्व
3.3.2 रीतिकाल के आदि आचार्य एवं प्रवर्त्तक के रूप में केशव
3.4 रामचंद्रिका की संवाद–योजना
3.5 रामचंद्रिका के लंका कांड से अंगद–रावण संवाद
3.6 पाठांश
3.7 सारांश
3.8 मुख्य शब्दावली
3.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
3.10 अभ्यास हेतु प्रश्न
3.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

3.0 परिचय

हिंदी साहित्य का रीतिकाल हिंदू–मुस्लिम संस्कृतियों के आदान–प्रदान का काल था। हिंदी साहित्य के आदिकाल में सांस्कृतिक आदान–प्रदान की स्वस्थ, सहज परंपरा भक्तिकाल में ही प्रकट होती है जिसका चरम प्रकर्ष रीतिकाल में दिखाई देता है। केशव रीतिकाल के एक प्रमुख कवि है। इनके जन्म–संवत् के विषय में कोई विशेष व पुष्ट प्रमाण प्राप्त नहीं होते। विद्वानों ने उनकी रचना 'रसिक प्रिया' के आधार पर उनका जन्म संबंधी अनुमान लगाया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल, पं. रामनरेश त्रिपाठी, डॉ. रामकुमार वर्मा और डॉ. हीरालाल दीक्षित ने इनका जन्म सं. 1612 माना है। जन्म के समय की ही तरह केशव का निधन काल भी विवादास्पद है। इनका निधन सं. 1680 माना जाता है। केशव ने 'कविप्रिया', 'रामचंद्रिका' और 'विज्ञान–गीता' नामक ग्रंथों में अपने वंश का परिचय दिया है। उनके पितामह का नाम पं. कृष्णदत्त मिश्र और पिता का नाम पं. काशीनाथ मिश्र था। काशीनाथ के तीन पुत्र थे– बलभद्र मिश्र, केशवदास और कल्याणदास।

आचार्य केशवदास और कविवर बिहारीलाल के पिता–पुत्र के संबंध के विषय पर भी विद्वानों के भिन्न–भिन्न मत हैं। केशव का जन्म ओरछा में हुआ था। उन्होंने कई राजाओं की प्रशस्तियां लिखी हैं। उनके आश्रयदाता ओरछा नरेश इंद्रजीत सिंह और वीर सिंह देव थे। आचार्य केशवदास का परिवार पंडितों का परिवार था, जिसका दास भी 'भाषा' बोलना नहीं जानता था–

"भाषा बोलि न जानईं, जिनके कुल कै दास।
भाषा कवि भो मंदमति, तिहिं कुल केशवदास।"

केशव पुष्टिमार्ग में दीक्षित वैष्णव थे और उनके दीक्षा–गुरू गोस्वामी विट्ठलनाथ थे। बीरबल, टोडरमल, अब्दुर्रहीम खानखाना, अबुलफजल आदि केशव के प्रमुख परिचित

व्यक्तियों में थे। विभिन्न शोधों के आधार पर महाकवि केशव प्रणीत नौ ग्रंथ माने जाते हैं। वर्ण्य–विषय की दृष्टि से इन ग्रंथों का वर्गीकरण किया गया है–

टिप्पणी

प्रशस्ति काव्य– (1) रतनबावनी, (2) वीरसिंहदेवचरित, और (3) जहांगीर–जस–चंद्रिका।

काव्यशास्त्र विषयक अथवा लक्षण ग्रंथ– (1) रसिकप्रिया, (2) नखशिख, (3) कविप्रिया, और (4) छंदमाला।

महाकाव्य– रामचंद्रिका

भक्तिपरक काव्य– विज्ञान गीत।

केशव का समय भक्तिकाल का अंतिम तथा रीतिकाल का प्रारंभिक युग था। रीतियुग की काव्यगत प्रवृत्तियों के बीज भक्तिकाल में ही अंकुरित हो गए थे। केशव ने इस नूतन प्रवृत्ति को निश्चित व्यवस्था देकर रीतिकाल का सूत्रपात किया। आचार्य केशवदास सनाढ्य कुलोद्भव पं. काशीनाथ के पुत्र थे। आप ओरछा के रहने वाले थे। इनका जन्म सं. 1612 में, मृत्यु सं. 1674 में हुई थी। आचार्य केशव सच्चे अर्थों में राजकवि थे। वे पंडित थे, आचार्य थे, कवि थे और कदाचित भक्त भी थे। उन्हें अपने पांडित्य पर गर्व था। उनका घराना कई पीढ़ियों से राज–सम्मान प्राप्त करता चला आ रहा था। ओरछा नरेश महाराज रामशाह के अनुज इंद्रजीत सिंह उन्हें गुरुतुल्य मानते थे। स्वयं महाराज रामशाह उन्हें अपना मंत्री और मित्र मानते थे। लोक–परंपरा, महत्व की दृष्टि से उन्हें सूर और तुलसी के बाद तीसरा स्थान प्रदान करती है। प्रसिद्ध है कि–

सूर सूर तुलसी शशि उडुगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम जहं–तहं करत प्रकास।।

पहले किसी विद्वान की विद्वता का जब परीक्षण–निरीक्षण करना होता था तो, उससे केशव के किसी छंद का अर्थ पूछ लिया जाता था। कहा भी है–

कवि को देन न चहै विदाई,
तौ पूछे केशव कविताई।

3.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- केशव के जीवनवृत्त व उनकी रचनाओं से अवगत हो पाएंगे;
- रामकाव्य परंपरा और रामचंद्रिका का विश्लेषण कर पाएंगे;
- रीतिकाव्य परंपरा का विस्तृत विवेचन कर पाएंगे;
- केशव के आचार्यत्व का वर्णन कर पाएंगे;

- केशव की संवाद–योजना का वैशिष्ट्य जान पाएंगे;
- रावण–अंगद संवाद की कलात्मकता का मूल्यांकन कर पाएंगे।

टिप्पणी

3.2 रामकाव्य परंपरा और रामचंद्रिका

वैदिक युग से वर्तमान युग तक सांस्कृतिक–पौराणिक बिंबों, मिथकों एवं विचार–खंडों की जो धारा प्रवाहित होती रही है उसके वैविध्य के मूल में एक अखंड चेतना सदैव विद्यमान रही है। हमारे जीवन के अनेक अनुभव–खंडों एवं संकल्पों का बहुत बड़ा भाग उन पौराणिक बिंबों एक मिथकों से निर्मित हुआ है जो प्रजातीय मानसिकता से निर्मित होकर सामूहिक अवचेतन के रूप में व्यक्ति के मानस को उद्वेलित एवं प्रभावित करते रहे हैं। मनोवैज्ञानिक युग के अनुसार, "प्रजातीय अवचेतन जो हम सबमें वर्तमान है, सृष्टि के आरंभ से आज तक संस्कारों की सुदीर्घ परंपरा का संग्रहालय रहा है।"

भारतीय संस्कृति की मूलभूत चेतना अर्थात् उसके सांस्कृतिक मूल्यबोध की दीर्घकालीन परंपरा रामकाव्य के पात्रों और उनके आचरण के विविध आयामों में अभिव्यक्त हुई है। रामकाव्य वस्तुतः प्रागैतिहासिक युग से वर्तमान युग तक के जनमानस को प्रभावित एवं आंदोलित करने वाले नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक मूल्यों का प्रतिबिंब है। रामकाव्य में मूल्यों और प्रतिमानों का अनुसंधान हमें उसे वैदिक संस्कृति के उत्स तक ले जाता है जहां रामकथा के पात्रों और स्थानों का न केवल अभिधान अनुशीलन मात्र है, अपितु एक सांस्कृतिक परिवेश भी उपलबध होता है जिसके साम्य और वैषम्य के बिंदुओं का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया जा सकता है। भारतीय प्रज्ञा को राम–कथा ने कितने व्यापक रूप में प्रभावित किया है, इसका प्रमाण वैदिक, बौद्ध एवं जैन परंपरा में रामकाव्य के विभिन्न रूपांतरण हैं। वैदिक साहित्य में राम की क्रमबद्ध कथा नहीं है। रामकथा का प्राचीनतम क्रमबद्धरूप वाल्मीकी रामायण में मिलता है। रामायण में भारत की आरण्यक संस्कृति का जैसा विशद–व्यापक चित्रण हुआ है, वैसा अन्यत्र दुर्लभ है।

तुलसी–पूर्व हिंदी–रामकाव्य के विकास को दृष्टि में रखते हुए यह निःसंकोच कहा जा सकता है कि रामकाव्य की परंपरा निरंतर गतिशील रही है। तुलसी–पूर्व रामकथा का एक स्रोत मधुर–उपासना के रूप में प्रवाहित हुआ है, जिसके प्रेरणा–बीज 'जानकीहरण', 'उदारराघव', 'हनुमन्नाटक' इत्यादि संस्कृत–काव्यों एवं नाटकों में प्राप्त होता है। तुलसीदास के ही समकालीन श्रीनाभादास–कृत 'अष्टयाम' में भी मधुर–उपासना की यह धारा प्रवाहित हुई है। तुलसीदास के मर्यादावाद के कठोर आवरण के कारण मधुर–उपासना की यह धारा अवश्य कुछ समय तक अवरूद्ध रही, किंतु कालांतर में अत्यंत वेग के साथ प्रवाहित हुई।

विष्णुदास–कृत 'रामायन कथा' पंद्रहवीं शताब्दी की रचना है, जिसमें चौपाई–दोहा–छंद–श्लोक आदि अनेक वृत्तों का प्रयोग हुआ है। भूपति–कृत 'रामचरित रामायण', सुंदरदास–कृत 'हनुमान चरित' तथा कबीर के पदों में राम का ब्रह्म रूप में उल्लेख भी तुलसी से पूर्व में राम–साहित्य में भक्ति–भावना का संकेत देते हैं, किंतु यह सारा पूर्ववर्ती और परवर्ती साहित्य तुलसी की महान प्रतिभा के अप्रतिम आलोक में फीका–सा दिखाई देता है।

टिप्पणी

तुलसीदास को अपने काव्य की प्रेरणा भक्ति–आंदोलन से प्राप्त हुई। रामावत संप्रदाय के प्रवर्तक स्वामी रामानंद ने भक्ति को जन–जीवन की व्यावहारिकता में उतार कर तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों तथा मूलभूत समस्याओं के साथ उसका सामंजस्य स्थापित किया। मर्यादामूलक भक्ति–भाव का चरम परिपाक गोस्वामी तुलसीदास के साहित्य में दृष्टिगत होता है। 'रामचरितमानस' में रामचरित के माध्यम से विभिन्न दार्शनिक, धार्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक अंतर्विरोधों में समन्वय स्थापित किया गया है। तुलसी की दृष्टि में सभी नैतिक, सांसारिक संबंधों का लक्ष्य राम के प्रति उन्मुखता ही है। मध्यकालीन साहित्य में दास्यभक्ति तथा मधुरा भक्ति प्रधान रामकाव्यों में अनेक रचनाएं सामने आती हैं।

'केशवदास' की दृष्टि में राम पूर्णब्रह्म हैं; किंतु संपूर्ण 'रामचंद्रिका' का वातावरण एक विशिष्ट अभिजात्य एवं सामंतीय सांस्कृतिक मूल्यों से परिवेष्टित है। व्यक्ति–व्यक्ति के बीच का संबंध बहुत कुछ नगर–सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर निर्मित है। केशवदास के संवाद इसके प्रमाण हैं। रामचंद्रिका की कथावस्तु का अध्ययन करने पर निम्न बातों की जानकारी प्राप्त होती है–

1. रामचंद्रिका में मार्मिक प्रसंगों की अवहेलना की गई है।
2. रामचंद्रिका में असंबद्ध प्रसंगों की योजना की गई है। तथा
3. रामचंद्रिका में कवि की वर्णन–विस्तार–प्रियता का वर्णन किया गया है।

रामचंद्रिका की कथावस्तु में मार्मिक प्रसंगों की इतनी अधिक अवहेलना हुई है कि अनेक आलोचकों ने इसी के आधार पर केशव को 'हृदयहीन' कवि कह दिया है। अपने प्रियतम पुत्र को अचानक वन भेजने की विवशता से राजा दशरथ के मन में क्या–क्या भाव उत्पन्न हुए होंगे, कवि ने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। राम भी तुरंत ही वन को चल देते हैं। यह प्रसंग अत्यंत मार्मिक है और इसका वर्णन करने के लिए हृदयस्पर्शी भरत की संयोजना की जा सकती है, किंतु केशव ने उन भावों की अभिव्यक्ति की अवहेलना की।

"सरल सुभाउ राम महतारी। बोली वचन धीर धरि भारी।
तात जाउं बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरपक टीका।।"

अर्थात् पिताजी की आज्ञापालन करना ही सर्वोत्तम कार्य है, अतः तुम्हें निःसंकोच वन को चले जाना चाहिए।

यदि केशव और तुलसी के उपर्युक्त भावों की तुलना की जाए तो कहा जा सकता है कि केशव की कौशल्या वह माता है जिसके हृदय में मातृत्व भाव की प्रधानता है और तुलसी की कौशल्या के मातृत्व भाव पर आदर्श का अंकुश लगा हुआ है।

रामचंद्रिका में अनेक प्रसंग ऐसे हैं जिनका इसकी कथावस्तु से कोई संबंध नहीं है। ऐसे प्रसंग रामचंद्रिका के पूर्वार्द्ध में कम और उत्तरार्द्ध में अधिक हैं। राम–विरक्ति वर्णन की असंबद्धता की रामचंद्रिका की रचना के पश्चात स्वयं केशवदास ने भी अनुभव किया होगा, यही कारण है कि अपने इस प्रसंग को उन्होंने 'विधान–गीता' में स्थान दिया है। रामचंद्रिका में असंबद्ध प्रसंगों की योजना एवं कवि की वर्णन–विस्तार–प्रियता के कारण इसकी कथावस्तु का प्रवाह नियमित और गतिशील है। रामचंद्रिका के अव्यवस्थित और कहीं–कहीं व्यवस्थित कथावस्तु के तत्व भी पर्याप्त होते हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. 'प्रजातीय अवचेतन जो हम सबमें वर्तमान है, सृष्टि के आरंभ से आज तक संस्कारों की सुदीर्घ परंपरा का संग्रहालय रहा है।'– यह कथन किसका है?
2. रामकथा का प्राचीनतम क्रमबद्ध रूप किसमें मिलता है?
3. 'अष्टायाम' के रचयिता कौन हैं?
4. विष्णुदास–कृत 'रामायन कथा' किस शताब्दी की रचना है?
5. तुलसीदास को अपने काव्य की प्रेरणा कहां से प्राप्त हुई?

3.3 केशव का आचार्यत्व

टिप्पणी

आचार्य शब्द का अभिप्राय– सामान्यतः आचार्य शब्द के दो अर्थ होते हैं– 1. दीक्षा गुरु, 2. किसी नवीन मत का प्रवर्त्तक। रीतिकाल में काव्यशास्त्र के एक सीमित क्षेत्र में एक नवीन (नए) सिद्धांत का प्रतिपादन करने वाला 'आचार्य' कहलाता था परंतु भविष्य में 'आचार्य' शब्द का अर्थ शिथिल होने लगा है। वस्तुतः काव्य के क्षेत्र में उस व्यक्ति की गणना आचार्यों में की जा सकती है, जो स्वयं किसी नवीन काव्य संप्रदाय का प्रवर्त्तक, काव्यशास्त्र का व्याख्याता और काव्यशास्त्र का ज्ञाता हो।

3.3.1 केशव की 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' में आचार्यत्व

केशव ने 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' नामक दो प्रसिद्ध ग्रंथ लिखे। केशव के आचार्यत्व का आधार भी यही दो प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। केशव ने 'कविप्रिया' में अलंकारों का तथा 'रसिकप्रिया' में रसों का वर्णन किया है। केशव के आचार्यत्व को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

केशव की 'कविप्रिया' में काव्य–भेद, कवि–भेद, कवि–संप्रदाय, काव्य के वर्ण्य–विषय, अलंकार, काव्य–दोष आदि सभी तत्वों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। 'कवि प्रिया' ग्रंथ का आधार 'काव्यादर्श', 'कवि कल्पलतावृत्ति', 'अलंकार–शेखर' आदि ग्रंथ माने जाते हैं। इनमें नवम अध्याय से लेकर अंत तक अलंकारों का वर्णन किया गया है। इनका नाम विशेषालंकार रखा गया है। केशव ने कवि शिक्षा विषयक बातों को अलंकार ही समझा और उन्हें सामान्यालंकार नाम दिया। केशव ने अलंकारों की कुल संख्या 33 मानी है। उनके वर्णन आचार्य दण्डी के द्वारा प्रस्तुत 'काव्यादर्श' के अनुरूप हैं। उपभेदों की कल्पना किसी विशेष चमत्कार को ध्यान में रखकर की जाती है। केशव के उपभेदों में यह चमत्कार कहीं द्रष्ट्व्य नहीं होता। केशव आचार्य दण्डी के सभी ग्रंथों का अनुवाद कर हिंदी में रीतिशास्त्रों की परंपरा को आगे चलाना चाहते थे और इस कार्य में वह सफल भी हुए। दण्डी विरोधाभास अलंकार को विरोध से अलग नहीं मानते हैं परंतु केशव ने इन दोनों को भिन्न–भिन्न अलंकार माना है।

केशव ने अपने काव्य 'रसिकप्रिया' में संयोग और वियोग श्रृंगार, नायक–नायिका भेद तथा दर्शन, सात्विक–व्यभिचारी भाव, मान तथा सखी–कर्म आदि का विस्तारपूर्वक वर्णन किया है। संस्कृत–साहित्य में श्रृंगार रस का राजत्व प्रसिद्ध है। श्रृंगार रस के अंतर्गत अन्य रसों के स्थायी–भाव भी संचारी भाव बनकर आ सकते हैं। श्रृंगार रस के दो पक्ष संयोग और वियोग होने के कारण इसका विस्तार सुख और दुख दोनों प्रकार की अनुभूतियों तक होता है। यही कारण है कि श्रृंगार रस का इतना अधिक महत्व स्वीकार किया गया है। केशव भी अपने काव्य में श्रृंगार का रस राजत्व सिद्ध करना चाहते थे। केशव ने रौद्र, वीभत्स आदि रसों को श्रृंगार रस के अंतर्गत रखने का असंभव प्रयास किया।

केशव की 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' का प्रचार की दृष्टि से विशेष महत्व रहा है।

टिप्पणी

3.3.2 रीतिकाल के आदि आचार्य एवं प्रवर्त्तक के रूप में केशव

केशव ने काव्य में अलंकार तथा रस दोनों का अत्यधिक महत्व स्वीकार किया है। उन्होंने अपनी कृति 'कविप्रिया' में अलंकारों का प्रयोग करते हुए अलंकारों को काव्य में उच्चता का स्थान प्रदान किया और 'रसिकप्रिया' में रस–सिद्धांतों का वर्णन करते हुए विभिन्न प्रकार के रसों के उदाहरण प्रस्तुत किए है। इसलिए यह कहना गलत होगा कि केशव मात्र एक अलंकारवादी कवि थे। अलंकारों के प्रति केशव का झुकाव अधिक था परंतु काव्य में अलंकारों के स्थान व महत्व को इस समय के लगभग सभी कवियों ने स्वीकार किया। केशव ने अलंकारों को भी आभूषणों के समान सौंदर्यवर्द्धक माना है परंतु उसे उन्होंने पूर्ण काव्य नहीं माना है। केशव के समान ही भिखारीदास भी रस को कविता का अंग तथा अलंकारों को कविता का आभूषण मानते हैं। केशव ने 'रसिकप्रिया' में रस का जो वर्णन किया है तथा नायक–नायिका भेद आदि का जो विश्लेषण किया है वह आचार्य मम्मट के 'काव्य प्रकाश' तथा आचार्य विश्वनाथ के 'साहित्य दर्पण' के अनुसार किया है। केशव ने दो विचारधाराओं 'पूर्वध्वनि' और 'उत्तरध्वनि' दोनों के संप्रदायों का हिंदी में समावेश किया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार– "भामह और उद्भट के समय में अलंकार और अलंकार्य का स्पष्ट भेद नहीं हुआ था। रस, रीति, अलंकार सबके लिए ही 'अलंकार' शब्द का व्यवहार होता था। यही बात हम केशव की 'कविप्रिया' में पाते हैं।" यथा जिन विद्वानों ने केशव को मात्र अलंकारवादी घोषित किया है वे सब विद्वान इसका आधार उनकी रचना 'कविप्रिया' को ही मानते हैं।

केशव की काव्य–दृष्टि–रीतिकालीन आचार्यों ने काव्य–सिद्धांत विषयक कुछ धारणाएं निर्धारित की हैं। यथा केशवदास ने भी अपनी कुछ विशेष मान्यताएं निर्धारित की हैं। उन्होंने कवियों की तीन श्रेणियां मानी हैं– 1. उत्तम, 2. मध्यम और, 3. अधम। उदाहरणार्थ–

"उत्तम, मध्यम अधम कवि उत्तम हरि–रस लीन।
मध्यम मानत मानुषनि दोषनि अधम प्रवीन।।"

अर्थात उत्तम कवि सदा हरि–रस में मग्न रहते हैं। यहां रस शब्द के वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि केशव रस से सदा निरपेक्ष नहीं थे। उनके काव्य का प्रधान रस शृंगार था। इसके अलावा उनके काव्य में करूण, रौद्र, वीर, भयानक तथा शांति आदि रसों का भी वर्णन मिलता है।

वास्तव में केशव अलंकार प्रिय और चमत्कारवादी कवि थे। उनकी आत्मा और व्यक्तित्व कलामय थे। वे रसों को भी अलंकारों के अंदर समाहित करते थे। उनकी कल्पना को विकसित होने का अवसर अलंकार–विधान में ही प्राप्त होता है। उनका मानना था कि अलंकारों के बिना काव्य की शोभा नहीं होती। यथा–

"जदपि सुजाति सुलच्छनी, सुबरन सरस सुवृत्त।
भूषन बिनु न विराजहीं, कविता बनिता मित्त।।"

छंदशास्त्र पर भी केशव का असाधारण अधिकार था। 'रामचंद्रिका' में केशव ने अनेक प्रकार के छंदों को प्रस्तुत किया है। उन्होंनें एकाक्षरी छंदों से लेकर अनेकाक्षरी तथा मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छंदों का प्रयोग किया है। उनके द्वारा किए गए वर्णन को देख यह प्रतीत होता है कि अपने शास्त्र का संपूर्ण ज्ञान वह यहीं प्रकट कर देना चाहते हैं। केशव अपने ग्रंथ के आरंभ में कहते हैं कि

"जागति जाकी ज्योति जग एक रूप बहु छंद।
रामचंद्र की चंद्रिका बरनत हौं बहु छंद।।"

डॉ. हीरालाल दीक्षित के अनुसार– "केशव ने 'रामचंद्रिका' में चौबीस प्रकार के मात्रिक छंदों तथा अट्ठावन प्रकार के वर्णिक छंदों का प्रयोग किया है।"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि केशव ने अपने काव्य में लक्षण–पद्धति अपनाई थी। सर्वप्रथम उन्होंने दोहे अथवा छंद विशेष में लक्षण लिखा तथा इसके पश्चात अलग से उसके उदाहरण भी प्रस्तुत किए। कुछ परवर्ती कवियों ने (इस परंपरा के) एक ही छंद में लक्षण तथा उदाहरण एक साथ देने की शैली को अपनाया। उपरोक्त सभी प्रकार के वर्णनों से स्पष्ट होता है कि केशव ही रीतिकाव्य परंपरा के आदि आचार्य तथा प्रवर्त्तक हैं। डॉ. विजयपाल सिंह के शब्दों में– "यों तो केशव के पूर्व ही हिंदी में साहित्य शास्त्र के कई अंगों– रस, नायिका–भेद, अलंकार– पर अलग–अलग कुछ कार्य हुआ था, किंतु उसके सभी अंगों को लेकर सांगोपांग निरूपण हिंदी–साहित्य में सर्वप्रथम आचार्य केशवदास द्वारा ही हुआ।"

3.4 रामचंद्रिका की संवाद–योजना

पात्रों के मध्य जो बातें होती हैं उन्हें संवाद कहा जाता है। इसके (संवाद) माध्यम से काव्य की कथावस्तु का प्रसार होता है, पात्रों के चरित्र का विकास होता है तथा कथावस्तु में रोचकता एवं मनोहारिता आती है। संवादों की मुख्य रूप से तीन विशेषताएं होती हैं–

1. संवाद काव्य की कथावस्तु की अभिवृद्धि करते हैं,
2. काव्य में वर्णित पात्रों के चरित्र–विकास में सहायक होते हैं,
3. काव्य की कथावस्तु की रोचकता एवं ग्राह्यता बनाते हैं।

यदि लेखक चाहे तो वह अपने काव्य की समस्त कथा को संवादों में अभिव्यक्त कर सकता है। संवादों के माध्यम से पात्रों के चरित्रों का विकास होता है यही कारण है कि चरित्र–चित्रण की अनेक विधाओं में से संवादों की योजना भी एक विधा मानी गई है। किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व के अत्यधिक गुणों का पता उसकी वाणी से तथा वाणी को व्यक्त करने के तरीके से हो जाता है। व्यक्ति के अंदर अपने विषय में तथा किसी अन्य के विषय में कहने व सुनने की प्रवृत्ति संस्कारगत होती है अतः संवाद के द्वारा वक्ता अपने ही नहीं अपितु अन्य दूसरों के चरित्रों पर भी प्रकाश डालता है। संवादों के माध्यम से कथावस्तु में एक रसता समाप्त होकर विविध रसता आ जाती है, अर्थात् कथावस्तु की नीरसता समाप्त होकर उसमें सरसता समा जाती है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

6. आचार्य शब्द के कितने अर्थ होते हैं?
7. केशव के दो प्रसिद्ध ग्रंथ कौन से हैं?
8. केशव ने अपनी किस कृति में रसों का वर्णन किया है?

संवादों की विशेषताओं के आधार उन्हीं संवादों को प्रभावशाली बनाया जाता है जो स्वाभाविक हो और वक्ता की मनोदशा के अनुकूल हो। उनमें शब्दों की संयोजना ह्रदय की स्थिति को ध्यान में रखकर की गई हो। संवाद स्वाभाविक एवं नाटकीय होने चाहिए। कहने की आवश्यकता नहीं कि केशव के संवाद उक्त तीनों कार्यों की पूर्ति करते हुए, 'रामचंद्रिका' को सरस एवं रोचक बनाने में सफल सिद्ध हुए हैं। 'रामचंद्रिका' में सबसे अधिक संवादों की योजना मिलती है।

'रामचंद्रिका' में नौ संवाद मिलते हैं–

1. सुमति–विमति–संवाद
2. रावण–वाणासुर–संवाद
3. राम–परशुराम–संवाद
4. राम–जानकी–संवाद
5. राम–लक्ष्मण–संवाद
6 राम–सूर्पणखा–संवाद
7. सीता–रावण–संवाद
8. सीता–हनुमान–संवाद
9. अंगद–रावण संवाद'

इनमें से रावण–वाणासुर–संवाद, राम–परशुराम–संवाद तथा अंगद–रावण संवाद' अपेक्षाकृत बड़े हैं और अधिक सुंदर है तथा छोटे–छोटे संवादों में से राम–सूर्पणखा–संवाद, सीता–रावण–संवाद और सीता–हनुमान–संवाद अधिक रोचक एवं प्रभावपूर्ण हैं। केशव के संवादों में निम्नलिखित विशेषताएं मिलती हैं–

(1) **पात्रानुकूलता–** केशव के संवादों में सबसे बड़ी विशेषता है पात्रानुकूलता। 'रावण–वाणासुर–संवाद' के अंतर्गत रावण और वाणासुर दोनों ही बलशाली योद्धा अपने–अपने दर्प, गर्व, ऐश्वर्य, पराक्रम आदि का वर्णन करते हुए बड़े ही अनूठे ढंग से एक–दूसरे पर व्यंग्य–वाणों का प्रहार करते हैं। धनुष तोड़ने के लिए रंगशाला में प्रविष्ट होते ही रावण कहता है–

शंभु कोदंड दै राजपुत्री कितै।
टूक द्वै तीन कै, जाहुं लंकाहि लै।

रावण का उक्त कथन उसके सर्वथा अनुकूल है, क्योंकि इससे उसकी अहंकारपूर्ण दर्पोक्ति का आभास मिल रहा है। यह सुनते ही वाणासुर भी बड़े करारे व्यंग्य के साथ रावण को उत्तर देता है–

जुपै जिय जोर, तजौ सब सोर।
सरासन तोरि, लहौ सुख–कोरि।

टिप्पणी

तब रावण फिर से 'केशव कोदंड विषदंड ऐसो खंडै अब, तेरे भुजदंड की बड़ी है विडंबना' आदि कहकर अतिशयोक्ति के साथ अपने प्रचंड पराक्रम की प्रशंसा करता है। इसके उत्तर में वाणासुर बड़े सुंदर ढंग से चुटकी लेता है–

बहुत बदन जाके। विविध वचन ताके।।

इस प्रकार रावण और वाणासुर दोनों प्रचंड पराक्रमी योद्धाओं के अनुकूल ही सारा संवाद आदि से अंत तक लिखा गया है। यही बात अंगद–रावण संवाद' में भी है। ये दोनों ही चतुर राजनीतिज्ञ अपनी–अपनी व्यवहार–कुशलता एवं नीतिज्ञता का परिचय देते हुए अपने–अपने स्वभाव एवं पद के अनुकूल वार्तालाप करते हैं। दोनों के उत्तर–प्रत्युत्तर पात्रानुकूलता के परिचायक हैं। जैसे, रावण सब कुछ जानते हुए भी अंगद के सामने हनुमान की हीनता दिखाता हुआ अनजान बनकर यह पूछता है–

कौन है वह बांधि के हम देह पूछ सबै दही।

रावण का उक्त कथन उसके गर्व, अहंकार, पराक्रम एवं बल–दर्प का परिचायक है, परंतु अंगद भी कम कुशल नहीं है। वह तुरंत रावण के मर्म को समझ जाता है और रावण को नीचा दिखाने के लिए कहता है–

लंक जारि संहारि अक्ष गयो सो बात वृथा कही।

(2) **प्रत्युत्पन्न मति**– केशव के संवादों में सर्वत्र प्रत्युत्पन्न मति के दर्शन होते हैं, क्योंकि केशव के सभी पात्र बातों में से बात निकालकर तुरंत उत्तर देते हुए अपनी प्रत्युत्पन्न मति का परिचय देते हैं। वे प्रायः ऐसा उत्तर देते हैं जिससे प्रश्नकर्त्ता भी हक्का–बक्का सा रह जाता है। उदाहरण के लिए, रावण और अंगद का वार्त्तालाप देखिए, जिसमें रावण के प्रश्न करते ही अंगद अपनी प्रत्युत्पन्न मति के कारण ऐसा उत्तर देता है, जिसे सुनकर रावण दांत तले उंगली दबा जाता है–

(रावण)– राम को काम कहां?

(अंगद)– रिपु जीतहिं,

(रावण)– कौन कबै रिपु जीत्यौ कहां?

(अंगद)– बालि–बलि

(रावण)– छल सों,

(अंगद)– भृगुनंदन गर्व हरयौ,

(रावण)– द्विज दीन महा।

(अंगद)– दीन सु क्यों? छिति छत्र हर्‌यौ बिन प्राणन हैहयराज कियो।

(रावण)– हैहय कौन?

(अंगद)– बहै बिसरयो जिन खेलत ही तोहि बांधि लियो।

टिप्पणी

(3) **शिष्टाचार–** केशव ने अपने संवादों में पात्रोचित शिष्टाचार, शील, मर्यादा आदि का बड़ा ध्यान रखा है। केशव कहीं भी किसी पात्र के मुख से ऐसे वाक्य नहीं कहलवाते, जो शिष्टाचार एवं सामाजिक मर्यादा के प्रतिकूल हों तथा जिनसे मर्यादा भंग होने की आशंका हो। इसका सबसे सुंदर उदाहरण हनुमान–सीता–संवाद में मिलता है। वहां हनुमान जी सीता जी से बातें करते हुए सीता के लिए 'जननि', राम के लिए 'रघुनाथ' या 'दशरथ–नंदन' तथा दशरथ के लिए अज–तनय–चंद' आदि शब्दों का प्रयोग करते हुए शील, मर्यादा एवं शिष्टाचार का पूरा–पूरा ध्यान रखते हैं–

(हनुमान)– करि जोरि कह्यो हौं पवन–पूत,
जिय जननि जानि रघुनाथ–दूत।
(सीता)– रघुनाथ कौन?
(हनुमान)– दशरथ नन्द?
(सीता)– दशरथ कौन?
(हनुमान)– अज–तनय–चंद।

(4) **व्यंग्य एवं वाग्वैदग्ध्य–** केशव के संवादों में व्यंग्य एवं वाग्वैदग्ध्य की भरमार है। केशव के पात्र एक दूसरे पर इस तरह व्यंग्य–वाण का प्रहार करते हैं कि उन्हें सुनकर अनायास ही नई स्फूर्ति, नये तेज, नये ओज एवं नये उत्साह का संचार हो जाता है। रावण ने अंगद से जब उसका और उसके पिता बालि का परिचय पूछा, तब अंगद कितने रोचक ढंग से व्यंग्य प्रहार करता हुआ उत्तर देता है, जिसमें वाग्वैदग्ध्य भरा हुआ है–

(रावण)– कौन के सुत?
(अंगद)– बालि के।
(रावण)– वह कौन बालि?
(अंगद)– न जानिये?
कांख चांप जो तुम्हें सागर सात न्हात बखानिए।

(5) **नाटकीयता–** केशव के संवादों में सर्वत्र नाटकीयता का गुण विद्यमान है, क्योंकि 'रामचंद्रिका' में वर्णित संवादों से पाठकों के सामने दोनों पात्रों का चित्र अनायास ही मानस–पटल पर अंकित हो जाता है और वे दोनों पात्र भी आदि से अंत तक अभिनयात्मक ढंग से बातचीत करते हुए उत्तर–प्रत्युत्तर देते चले जाते हैं। उदाहरण के लिए वाण–रावण–संवाद सारा अभिनेयता के गुण से भरा हुआ है, उसमें छोटे–छोटे वाक्यों के अंतर्गत दोनों बलशाली योद्धा अपनी–अपनी बातों को नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करते हैं और दोनों ही एक–दूसरे की चुटकियां लेते हुए मर्मस्थल पर प्रहार करते दिखाई देते हैं; जैसे–

रावण कह रहा है– 'वाण न बात तुम्हें कहि आवै।' इसे सुनकर वाण भी तुरंत उत्तर देता है– 'सोई कहौं जिय तोहि जो भावै।' इस पर रावण तनिक गंभीर होकर कहता है– 'का करिहौ हम यों ही बरंगे।' यह सुनकर बाण भी गंभीरता से उत्तर देता 'है–हैहयराज करी सो करैंगे।'

(6) **कूटनीति**– केशव के संवादों में जहां नाटकीयता है, वहां वे राजनीतिक दांवपेंच अथवा कूटनीति से भी भरे हुए हैं। केशव एक दरबारी कवि थे और राज–दरबार में चलने वाले दांव–पेचों को भली प्रकार जानते थे। यही कारण है कि केशव को अपने संवादों में कूटनीति, भेद–नीति अथवा राजनीतिक दांव–पेंच के चित्र अंकित करने में बड़ी सफलता मिली है। 'अंगद–रावण–संवाद' तो मानो राजनीतिक दांव–पेंच का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। रावण और अंगद की वाग्विद्ग्धता के साथ–साथ कूटनीति एवं राजनीतिक दांव–पेंच की भी अच्छी झांकी मिल जाती है।

(7) **पात्रानुकूल मनोभावों की व्यंजना**– केशव के संवादों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण विशेषता यह दिखाई देती है कि उनमें पात्रों के अनुरूप आतंक, क्रोध, उत्साह आदि की सुंदर एवं मर्मस्पर्शी व्यंजना मिलती है। रावण बड़ा ही क्रूर, दुस्साहसी, कठोर, क्रोधी, निष्ठुर एवं निर्मम शासक था, वह देवताओं का प्रबल शत्रु था तथा सारे देवता उसके आतंक के मारे थर्राते थे। इतना ही नहीं, रावण की क्रूरता के मारे उसके दरबार में आतंकपूर्ण वातावरण छाया रहता था, उसी वातावरण का चित्र केशव ने प्रतिहार के कथन द्वारा बड़े ही सजीव ढंग से अंकित किया है। यहां प्रतिहार अभिमानी एवं आतंकवादी रावण के दरबार में बैठे हुए देवताओं को फटकारता हुआ कह रहा है–

पढ़ौ विरंचि! मौन वेद, जीव! सोर छंडि रे।
कुबेर! बेर कै कही, न जच्छ–भीर मंडि रे।।
दिनेस! जाय दूरि बैठि नारदादि संग ही।
न बोलु चंद–मंद–बुद्धि! इंद्र की सभा नहीं।।

निस्संदेह यह रावण की सभा है, इंद्र की सभा नहीं है। अतएव यहां तो देवताओं को रावण के प्रतिहार के कथनानुसार ही बैठना पड़ेगा। उक्त कथन में रावण के सर्वथा अनुकूल ही उसके दरबार में विद्यमान आतंक की सजीव व्यंजना हुई है।

(8) **ध्वनि–सौंदर्य**– केशव के संवादों में वस्तु–ध्वनि एवं अलंकार ध्वनि का सौंदर्य पद–पद पर दृष्टिगोचर होता है। जैसे, हनुमान–रावण–संवाद के अंतर्गत रावण जब हनुमान से बंधन का कारण पूछ रहा है, तब हनुमान बड़े ही कौशल के साथ अपने बंधन का कारण बताते हुए जो उत्तर देते हैं, उसमें वस्तु–ध्वनि की बड़ी ही सुंदर व्यंजना मिलती है–

(रावण)– कैसे बंधायौ?

(हनुमान)–जो सुंदरि तेरी छुई दृग सोवत पातक लेखौ।

टिप्पणी

इसका तात्पर्य यह है कि मैंने तो केवल आंख से ही तेरी स्त्री का स्पर्श किया जिसका परिणाम यह हुआ कि मुझे बंधन में पड़ना पड़ा, किंतु तेरी क्या दशा होगी? क्योंकि तू तो परायी स्त्री का अपहरण करके ले आया है और तूने तो शरीर से भी उसका स्पर्श किया है। इसी तरह की वस्तु–ध्वनि, अलंकार–ध्वनि आदि का सौंदर्य केशव के संवादों में पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है।

(9) **पात्रों का नामांकन**– केशव अपने संवादों में प्रायः 'राम कह्यो', 'रावण बोल्यो', 'अंगद कही', आदि लिखकर पात्र–निर्देश को स्थान देना उचित नहीं समझते। केशव ने नाटकों की भांति पात्रों के नाम प्रायः अलग से बाहर लिख दिए हैं। इससे काव्य में नाटकीयता आ गई है और काव्य और नाटक का सुंदर समन्वय हो गया है। जैसे–

रावण– कौन हो पठये सो, कौनै, ह्यां तुम्हें कहा काम है?

अंगद– जाति वानर, लंक नायक दूत, अंगद नाम है?

(10) **बोलचाल की भाषा का प्रयोग**– केशव ने अपने संवादों में प्रायः धाराप्रवाहपूर्ण दैनिक बोलचाल की भाषा का प्रयोग किया है, इसीलिए इन संवादों में उक्ति–वैचित्र्य के साथ–साथ व्यंग्य–प्रहार विद्यमान है, मुहावरों एवं लोकोक्तियों के साथ नोंक–झोंक दिखाई देती है और काव्यात्मक सजीवता के साथ–साथ सरलता एवं स्वाभाविकता के भी दर्शन होते हैं। केशव ने सरल भाषा द्वारा ही मीठी–मीठी चुटकियां ली हैं और करारे व्यंग्य–प्रहार किए हैं। उदाहरण के लिए 'अंगद–रावण–संवाद' में अंगद की सरल उक्तियों में बोलचाल की भाषा के अंतर्गत ही मार्मिकता एवं अर्थ गांभीर्य विद्यमान है–

अंगद– हाथी न साथी न घोरे न चेरे न गाउं न ठाउं कुठाउं बिलैहैं।
तात न मात न पुत्र न मित्र न वित्त न तीय कहूं संग रैहैं।
केशव काम को राम बिसारत और निकाम ते काम न ऐहैं।
चेति रे चेति अजौ चित अंतर अंतक–लोक अकेलौई जैहैं।

सारांश यह है कि केशव के संवाद नाटकीय सौंदर्य के साथ–साथ काव्यात्मक सौंदर्य से भी ओतप्रोत हैं। इनमें संक्षिप्तता, स्वाभाविकता, पात्रानुकूलता, अभिनेयता आदि के साथ–साथ शिष्टाचार, मर्यादा एवं शील–सौजन्य भी विद्यमान है। केशव के ये संवाद यद्यपि प्रबंध की कथा में सर्वत्र उपयुक्त नहीं दिखाई देते, उखड़े–उखड़े से जान पड़ते हैं और इन्हें यदि निकाल भी दिया जाय तो प्रबंध–काव्य में कोई अधिक हानि नहीं होगी, तथापि इन संवादों का अपना महत्व है, क्योंकि ये स्वतंत्र रूप से विद्यमान होकर बड़े ही रोचक एवं मनोरंजक हैं, इनमें कूटनीति एवं राजनीतिक दांव–पेच भरे हुए हैं, ये कौतूहलवर्द्धक एवं स्फूर्तिदायक हैं। इनमें ओज, उत्साह, क्रोध आदि की सुंदर व्यंजना हुई है तथा इनमें सभी पात्र का राजकीय शिष्टाचार के साथ–साथ सामाजिक मर्यादा एवं शील–सौजन्य आदि का सदैव ध्यान रखकर ही वार्तालाप करते हैं। केशव ने जहां श्लेष, यमक आदि के

द्वारा काव्य में क्लिष्टता एवं दुरूहता उत्पन्न की है, वहां रोचक एवं मनोरंजक संवाद लिखकर अपने काव्य में नाटकीय वातावरण का निर्माण करते हुए रोचकता का भी प्रसार किया है तथा इन संवादों के द्वारा पात्रों का चित्रण भी अभिनयात्मक ढंग से बड़ी सरलतापूर्वक चित्रित किया है। निस्संदेह केशव के ये संवाद लेखक की वाक्‌पटुता, भाषा–प्रवीणता व्यवहारकुशलता, राजनीतिज्ञता, प्रत्युत्पन्नमति एवं सूक्ष्म मनोविज्ञान के परिचायक हैं।

3.5 रामचंद्रिका के लंका कांड से अंगद–रावण संवाद

केशव के संवादों में जहां नाटकीयता है, वहां के राजनीतिक दांव–पेंच अथवा कूटनीति से भी भरे हुए हैं। केशव एक दरबारी कवि थे और राज–दरबार में चलने वाले दांव–पेचों को भली प्रकार जानते थे। यही कारण है कि केशव को अपने संवादों में कूटनीति, भेद–नीति अथवा राजनीतिक दांव–पेंच के चित्र अंकित करने में बड़ी सफलता मिली है। 'अंगद–रावण संवाद' तो मानो राजनीतिक दांव–पेंच का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। यहां रावण और अंगद की वाग्विदग्धता के साथ कूटनीति एवं राजनीतिक दांव–पेंच की भी अच्छी झांकी मिल जाती है। जब रावण यह देखता है कि अंगद पर अपना रौब नहीं जम रहा है, तब वह भेद–नीति का सहारा लेता हुआ उसे अपनी ओर मिलाने के लिए इस तरह उकसाता है–

नील सुखेन हनू उनके नल और सबै कपिपुंज तिहारे।।
आठहु आठ दिसा बलि दै, अपनौ पदु लै, पितु जा लगि मारे।।
तो से सपूतहिं जाइ कै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे।
अंगद संग लै मेरौ सबै दल आजुहि क्यों न हतै बपु मारे।।

इतना ही नहीं, फिर रावण नीति की दुहाई देता हुआ अपने पिता का प्रतिशोध लेने के लिए अंगद को उभाड़ने के लिए यहां तक कहता है–

जो सुत अपने बाप को बैर न लेइ प्रकास।
ता सों जीवत ही मर्‌यौ लौग कहै तजि आस।।

परंतु अंगद इतने पर भी नहीं पसीजता और रावण की खरी–खोटी ही सुनता रहता है, तब रावण फिर अंगद को 'राज्य' का प्रलोभन देकर अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न करता है–

रसि अंगद लाज कछू गहौ।
जनक–घातक बात वृथा कहौ।।
सहित लक्ष्मण रामहि संहरो।
सकल बानर–राज तुम्है करौ।।

इतने पर भी अंगद जली–भुनी बातें ही सुनाता चला जाता है, तब रावण भय दिखाकर अंगद को अपनी ओर मिलाने के लिए दांव चलाता है–

मेरी बड़ी भूल कहा कहौं रे।
तेरो कहौ दूत! सबै सहौं रे।।
वै जो सबै चाहत तोहि मार्‌यौ।।
मारौं कहा तोहि जो दैव मार्‌यो।।

टिप्पणी

रावण का यह वाण भी खाली जाता है, तब रावण अंगद के सामने क्रोध न दिखाकर कुछ ऐसी शर्तें रखता है, जिन्हें राम यदि मान लें तो वह सीता को लौटाने को तैयार हो जाएगा। सारतः कहा जा सकता है कि रामचंद्रिका के लंका कांड का रावण अंगद–संवाद रामचंद्रिका का प्रमुख आकर्षण एवं केशव की विद्वता का परिचायक है।

3.6 पाठांश

अंगद–रावण संवाद

(दोहा)– *अंगद कूदि गए जहाँ आसनगत लंकेत।*
मनु मधुकर करहाट पर सोभित स्यामल बेष ।।1।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से लिया गया है।

प्रस्तुत पद में अंगद के रावण के दरबार में प्रवेश का वर्णन है वह रावण की सभा में आकर आसन पर बैठ जाता है।

व्याख्या

कवि कहता है कि अंगद सभा में आकर एकदम से छलांग मारकर रावण के सिंहासन पर बैठ गया। वह सिंहासन पर बैठकर ऐसा सुशोभित हो रहा है मानो कमल–छत्र पर श्याम वर्ण भ्रमर सुशोभित हो रहा हो।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में दोहा छंद है।
2. द्वितीय पंक्ति में उत्प्रेक्षा अलंकार का प्रयोग हुआ है।

प्रतिहार (नराच)

पढ़ौ बिरंगी मौन बेद जीव सोर छंडि रे। कुबेर बेर कै कही न जक्षभीर मंडि रे।
दिनेस जाइ दूरि बैठि नारदादि संगहीं। न बोलि चंद मंदबुद्धि इंद्र की सभा नहीं ।।2।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में रावण के कारागृह में बंदी बने हुए देवताओं एवं ऋषियों की दुर्दशा का वर्णन किया गया है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

9. केशव कृत 'रामचंद्रिका' में कितने संवाद मिलते हैं?
10. केशव के संवादों की सबसे बड़ी विशेषता क्या है?
11. रामचंद्रिका का कौन सा संवाद राजनीतिक दांव–पेंच का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है?
12. रामचंद्रिका में 'अंगद–रावण संवाद' किस कांड के अंतर्गत लिखा गया है?

टिप्पणी

व्याख्या

रावण के कारागृह के द्वारपाल के माध्यम से कवि कहता है कि – हे ब्रह्मदेव! वेदादि शास्त्रों का पठन–पाठन धीरे–धीरे करो! हे बृहस्पति! आप भी शोर न करें अर्थात एकदम शांति से बैठ जाएं। हे कुबेर। आपसे बहुत बार कहा जा चुका है कि यहां यक्षों की भीड़ न लगाएं। हे सूर्य देव आप भी नारदादि के साथ दूर ही बैठे रहें। हे चंद्रदेव तुम भी मत बोलो क्योंकि यह मंदबुद्धि इंद्र की सभा नहीं है यह रावण का राजदरबार है।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में पर्यायोक्ति अलंकार है।
2. 'कुबेर बेद' में यमक अलंकार का प्रयोग हुआ है।
3. प्रस्तुत पद में नराच छंद है जिसमें 16 वर्ण होते हैं वर्णों का क्रम लघु होता है।

(चित्रपदा)– *अंगद यौं सुन बानी। चित्त महा रिस आनी।*
ठेलिकै लोग अनैसे। जाई सभा महँ बैसे ।।3।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में अंगद के चित्त में प्रकाशित हुए क्रोध को बताया गया है।

व्याख्या

अंगद ने जैसे रावण के द्वारपाल की वाणी सुनी वह अत्यधिक क्रोधित हुआ। जहां लोगों पर पाप अत्याचार किया जा रहा है। वहीं पर उस सभा में अंगद पहुंचता है।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में चित्रपदा छंद है।
2. प्रस्तुत पद में अनुप्रास अलंकार है।

प्रहस्त (चंचरी)– कौन हौ पठए सो कौनेहि ह्याँ तुम्हैं कह काम है?

अंगद– *जाति बानर, लंकनायकदूत, अंगद नाम है।*

रावण– *कौन है वह बांधिकै हम देह पूँछि सबै दही।*

अंगद– *लंक जारि संघारि अक्ष गयो से बात बृथाँ कही? ।।4।।*

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में रावण एवं अंगद के मध्य पारस्परिक वार्तालाप को दर्शाया गया है।

व्याख्या

रावण अंगद से परिचय पूछता हुआ कहता है कि "तुम कौन हो, तुम कहां से आए हो, तुम्हें क्या काम है। इस प्रश्न के उत्तर में अंगद बोले कि "मैं जाति से वानर हूं, मैं लंका के नायक

विभीषण का दूत हूं। मेरा नाम अंगद है।" रावण फिर से प्रश्न करता है तो फिर वह वानर कौन था जिसको बंदी बनाकर हमने उसकी पूंछ में आग लगा दी। रावण के प्रश्न के उत्तर में अंगद कहता है कि वह वानर तो कहता था कि उसने लंका जला डाली और अक्षयकुमार का संहार कर दिया, संभवतः वह झूठ कह रहा होगा। अर्थात या तो रावण तुम झूठ बोल रहे हो या फिर हनुमान जी झूठ कह रहे होंगे।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में गूढ़ोक्ति अलंकार है।
2. प्रस्तुत पद में चंचरी छंद है। जिसमें गणों का क्रम रगण, सगण, जगण, जगण, भगण एवं रगण होता है। आठवें वर्ण पर एवं पादात यति होती है।

महोदर– *कौन भाँति रहौ तहाँ तुम?*

अंगद– *राजप्रेषक जानिए।*

महोदर– *लंक लाइ गयो जो बानर कौन नाम बखानिये।*
मेघनाद जो बांधियो वहि मारियो बहुधा तबै।

अंगद– *लोकलाज दुरघो रहै अति जानिजै न कहाँ अबै।।5।।*

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के अंगद–रावण संवाद से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में महोदर एवं अंगद का संवाद बताया गया है। अंगद रावण की बातों में हनुमान के प्रसंग का वर्णन हो रहा है। इसके पश्चात महोदर पूछता है–

व्याख्या

हे अंगद! यहां तुम किस रूप में आए हो, इस पर अंगद कहता है 'मुझे आप राजदूत के रूप में मान सकते हैं' महोदर कहता है, लंका में आकर वह किस नाम से पुकारा जाए। मेघनाद ने जिसको बांधकर भिन्न–भिन्न प्रकार से मारा था। अंगद कहता है, थोड़ी लोकलाज की फिक्र करो अत्यधिक फेंकना पापकारी होता है।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में चंचरी छंद है।
2. प्रस्तुत पद में प्रश्नोत्तर शैली का प्रयोग किया गया है।

कौन के सुत? बालि के, वह कौन बालि न जानिये?
काँख चाँपि तुम्हैं जो सागर सात न्हात बखानिये।
है कहां वह? वीर अंगद देवलोक बताइयो।
क्यों गयो? रघुनाथ–बान–बिमान बैठि सिधाइयो ।।6।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के अंगद–रावण संवाद से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में रावण के अंगद से उसका परिचय पूछने पर विस्तार से अंगद द्वारा अपना परिचय बताया गया है–

टिप्पणी

व्याख्या

अंगद से परिचय पूछता हुआ रावण उससे कहता है– तुम किसके पुत्र हो। अंगद कहता है, "मैं बालि का पुत्र हूं।" रावण पुनः पूछता है, बालि कौन हैं मैं नहीं जानता। अंगद कहता है कि मैं उसी बालि का पुत्र हूं जिसने अपनी कांख में तुम्हें दबाकर सात समुद्रों में स्नान किया था। रावण फिर से पूछता है कि "वह बालि अब कहां है" वीर अंगद ने बालि का स्थान देवलोक बताया। रावण ने स्वर्ग लोक जाने का कारण पूछा तो अंगद ने कहा कि भगवान राम के वाण रूपी विमान के कारण वे स्वर्गलोक गए हैं।

विशेष

1. इस पद में अंगद अपने वंश की यशोगाथा का गान करता है।
2. प्रस्तुत पद में चंचरी छंद है।
3. रघुनाथ–बान–विमान में रूपक अलंकार है।
4. संपूर्ण पद में गूढोत्तर पद अलंकार है।

लंकनायक को? विभीषन देवदूषन कों दहै।
मोहि जीवत होहि क्यों? जग तोहि जीवत को कहे।
मोहि को जग मारिहै? दुरबुद्धि तेरिय जानिये।
कौन बात पठाइयो कहि बीर बेगि बखानिये।।7।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत किया गया है। प्रस्तुत पद में अंगद रावण को विभीषण के लंकनायक होने के संदर्भ में बताता है।

व्याख्या

रावण तुम यह जान लो कि इस लंका का राजा विभीषण ही है। वह समझदार है, वही इस लंका का राजा बनने लायक है। तू (रावण) इस संसार में तभी तो राज कर पाएगा जब तू मुझसे जीवित बचेगा। तू दुर्बुद्धि मेरा अंत कैसे करेगा? तुझे तो यह भी नहीं पता कि तूने कितना बड़ा अपराध किया है। तुम मेरे समक्ष कायरों की तरह बात मत करो, वीरों जैसी बात करो।

विशेष

1. नराच छंद है।
2. अनुप्रास अलंकार है।

अंगद (विजय)– *श्रीरघुनाथ को बानर 'केसव' आयो हो एक न काहू हयो जू।*
सागर को मद झारि चिकारि त्रिकुट की देह बिहारि छयो जू।

सीय निहारि सँहारि कै राकस सोक असोकबनीहि दयो जू।
अक्षकुमारहि मारिकै लंकहि जारिकै नीकेहिं जात भयो जू ।।8।।

टिप्पणी

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के रावण अंगद संवाद से उद्धृत है।

इस पद में अंगद के द्वारा रावण एवं उसकी विशाल सेना की दुर्बलता का वर्णन किया गया है।

व्याख्या

रावण को अपनी कूटनीतिक प्रतिभा से संदेश देता हुआ अंगद कहता है कि श्रीराम का कोई एक वानर आया था जिसको कोई भी पकड़ नहीं सका। सागर के अहंकार को चूर करके उसने स्वच्छंद रूप से त्रिकूट पर्वत पर विचरण किया। उसने सीताजी के दर्शन किए और राक्षसों का संहार किया और अशोक वाटिका में शोकमय वातावरण कर दिया। अक्षयकुमार को मारकर पूरी लंका वह अकेला ही जलाकर यहां से सुखपूर्वक चला गया।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में 'विजय' छंद है। जिसमें 8 भगण एवं अंत में दो गुरु होते हैं।
2. व्यंजन व्यापार का अद्भुत समावेश है।
3. पर्यायोक्ति अलंकार है।
4. निहरि–संहरि में छेकानुप्रास अलंकार है।

अंगद–(गंगोदक)

राम राजान के राज आए इहां धाम तेरे महाभाग जागे अबै।
देवि मंदोदरी कुंभकर्नादि दे मित्र मंत्री जिते पूंछि देखौ सबै।
राखिजै जाति को पाँति कों बंस कों साधिजै लोक में लोकपर्लोक कों।
आनिकै पां परौ, देसु लै कोषु लै, आसुहीं ईस सीताहि लै ओक कों ।।9।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के रावण अंगद संवाद से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में अंगद एक कुशल एवं नीतिनिपुण दूत बनकर उभरा है। वह एक कुशल दूत बनकर रावण को समझा रहा है।

व्याख्या

रावण को समझाते हुए अंगद कह रहे हैं कि "हे रावण, राजाओं के राजा राम अब तुम्हारी लंका में आ गए हैं। इनसे तुम्हारे तो भाग्य जाग गए हैं। मेरी इस बात की पुष्टि तुम मंदोदरी, कुभकर्णादि मित्र एवं मंत्रियों से पूछकर भी कर सकते हो। हे रावण! यदि तुम अपना कुल, वंश एवं जाति को बचाना चाहते हो, इस जन्म एवं परलोक के जीवन को सुधारना चाहते हो तो अपनी संपूर्ण धन संपदा सहित श्रीराम की शरण में चले आना चाहिए। यदि तुम

उनकी शरण में चले गए तो वें तुम्हारे बुरे कर्मों पर ध्यान न देकर केवल सीता को लेकर अयोध्यापुरी लौट जाएंगे।

विशेष

1. "राखिजै सधिजै" में "जाति पांति" में छेकानुप्रास अलंकार
2. प्रस्तुत पद में गंगोदक छंद है जिसमें 8 रगण होते हैं।

रावण— *लोक लोकेस स्यों सोचि ब्रह्म रचे आपनी आपनी सीवँ सो सो रहै।*
चारि बाहैं धरे बिष्नु रक्षा करैं बात साँची यहै बेदबानी कहै।
ताहि भ्रूभ्रंग ही देव देवेस स्यों बिष्नु ब्रह्मादि दै रूद्रजू संघरै।
ताहि हौं छाड़िकै पायँ काके परौं आजु संसार तौ पायँ मेरे परै ।।10।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

जब अंगद रावण को श्रीराम की शरण में जाने को कहता है तो इसके उत्तर में रावण यों कहता है;

व्याख्या

मैंने लोक और लोकेश के विषय में सोचा। ब्रह्माजी अपनी–अपनी सृष्टि बना रहे हैं। विष्णु जी चार भुजाओं को धारण न करके उसकी रक्षा कर रहे हैं। यह वेदव्यासजी भी कहते हैं। और नेत्रों एवं भौंहों को चढ़ाए शिव उसी पृथ्वी के लोगों का संहार करते हैं। मैं उनको (शिव) छोड़कर किसके पैर पड़ूं, आज पूरा संसार मेरे पैरों में गिरा हुआ है।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में चंचरी छंद है।
2. प्रस्तुत पद में काव्यलिंग अलंकार है।
3. प्रस्तुत पद में त्रिदेव एवं उनके कार्यों का विवेचन किया गया है।

(मदिरा)

राम को काम कहा, रिपु जीतहिं, कौन कबै रिपु जीत्यो कहा।
बालि बली, छल सों, भृगुनंदन गर्व हत्यो, द्विज दीन महा।
दीन सु क्यों छिति छत्र हत्यो बिन प्राननि हैहयराज कियो।
हैहय कौन? कहै बिसरयो जिन खेलतहीं तुम्हैं बाँधि लियो ।।11।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'राम चंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में नीतिनिपुण कुशल रामदूत राम के महान पराक्रम एवं शौर्य का वर्णन कर रहे हैं।

टिप्पणी

व्याख्या

जब रावण राम का परिचय पूछते हैं तो अंगद कहते हैं कि श्रीराम का काम तो शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना है। फिर रावण पूछता है कि उन्होंने कब कौन सा शत्रु जीत लिया। अंगद ने कहा, बालि। रावण ने कहा, वह तो छल से जीता। अंगद ने कहा परशुराम के गर्व का संहार किया, रावण बोला। वह बेचारा दीन ब्राह्मण है। इसमें कोई बड़ी बात नहीं है। अंगद बोला वह दीन ब्राह्मण नहीं है, उसने (परशुराम) इस पृथ्वी को 21 बार क्षत्रिय विहीन कर दिया और हां। राम ने हैहयराज का भी संहार किया। रावण बोला कौन हैहयराज? तो अंगद बोला, भूल गए रावण, जिसने तुम्हें खेल खेल में बंदी बना लिया था।

विशेष

1. "कौन कबै, बालि कली, द्विजहीन, छिनि छत्र में" में छेकानुप्रास अलंकार है।
2. इस पद में मदिरा छंद का प्रयोग किया गया है जिसमें 7 मगण होते हैं और अंतिम वर्ण गुरु होता है।

अंगद— *सिंधु तरयो उनको बनरा तुम पै धनुरेख गईं न तरी।*
बाँधोई बाँधत सो न बन्यो उन बारिधि बाँधिकै बाट करी।
श्रीरघुनाथ—प्रताप की बात तुम्हैं दसकंठ न जानि परी।
तेलनि तूलनि पूँछि जरी न जरी, लंक जराइ—जरी ।।12।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के रावण—अंगद संवाद से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में अंगद की वाक्पटुता का दर्शन हो रहा है। अंगद रावण के समक्ष राम के पराक्रमी व्यक्तित्व का वर्णन कर रहा है, दूसरी तरफ रावण की दुर्बलता का भी परिचय करा रहा है।

व्याख्या

राम एवं राम की सेना के पराक्रम का वर्णन करते हुए अंगद कह रहा है कि उनके (श्रीराम) वानर (हनुमानजी) ने तो इतना विशाल समुद्र पार कर लिया और हे रावण, तुमसे लक्ष्मण की धनुर्रेखा भी पार न हो सकी। अंगद पुनः कहता है कि हे रावण, तुमने हनुमान जी को पूरी तरह से हजारों सैनिकों के साथ बांधने का प्रयास किया, किंतु वे बंधे नहीं। इसके विपरीत श्रीराम ने विशाल समुद्र पर पुल का निर्माण करके मार्ग बना लिया। हे रावण, तुम्हें श्रीधनुष के प्रताप का पता नहीं। यहां तक कि तुमसे हनुमान की तेल और रूई से युक्त पूंछ तक नहीं जली और दूसरी ओर वे हनुमानजी तुम्हारी पूरी लंका को जला गए।

विशेष

1. जरी—जरी में यमक अलंकार है।
2. बांधोई बांधत, तेलनि—तूलनि में छेकानुप्रास अलंकार है।
3. इस पद में मदिरा छंद है।

टिप्पणी

मेघनाद– *छांडि दियो हम ही बनरा वह पूँछि की आगि न लंक जरी।*
भीर में अक्ष मरयो चपि बालक बादिहि जाइ प्रसस्ति करी।
ताल बिधे अरु सिंधु बँध्यो यह चेटक बिक्रम कौन कियो।
बानर को नर को बपुरा पल में सुरनायक बाँधि लियो ।।13।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में अंगद के द्वारा की गई श्रीराम एवं हनुमान जी की प्रशंसा का उत्तर मेघनाद के द्वारा दिया जा रहा है।

व्याख्या

हे अंगद! हमने ही उस वानर (हनुमान जी) को छोड़ दिया था तब उसकी पूंछ की आग से ही लंका जल गई। भीड़ में ही अक्षयकुमार मारा गया था। उस बालक को मारने की झूठी बात फैलाकर उसने प्रशंसा पा ली। छोटा तालाब बंधा हो या फिर समुद्र बंधा हो, यह सब तो सेवकों ने किया है। और हे अंगद, कौन वानर कौन नर। मैंने तो पल भर में ही इंद्र को बांध दिया था।

विशेष

1. मेघनाद के द्वारा वास्तवोक्ति की गई है।
2. प्रस्तुत पद में मदिरा छंद है।
3. प्रस्तुत पद में अतिशयोक्ति अलंकार भी है।

अंगद– *चेटक सों धनु भंग कियो प्रभु रावरे को अति जीरन हो।*
बान–समेत रहे पचिकै तुम जा सह पै न तज्यो थल हो।
बान सु कौन, बलि बलि को सुत वै बलि बावन बाँधि लियो।
वोई सु तौ जिनकी चिर चेरिनी नाच नचाइकै छाँडि दियो।।14।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में मेघनाद की आत्मप्रशंसा एवं अंगद की बातों पर दी गई सफाई का अंगद द्वारा उत्तर दिया जा रहा है।

व्याख्या

हे मेघनाद! सेवक से ही राम जी ने धनुष भंग भी कराया होगा। प्रभु राम तो दीन है। तुमने बाण आदि से उन्हें खूब परेशान किया। किंतु उन्होंने थल (स्थान) को नहीं छोड़ा। कौन–सा ऐसा बाण है जो बालि के पुत्र अंगद को बांध दे। जिसके ऊपर भगवान श्रीराम की कृपा है जिससे सबको उसने नाच नचाकर छोड़ दिया, ऐसा तो भगवान श्रीराम ही कर सकते हैं।

विशेष

1. मदिरा छंद है।
2. बलि बलि में यमक अलंकार है।

टिप्पणी

रावण (विजय)– *नील सुखेन हनू उनके नल और सबै कपिपुंज विहारे।*
आठहु आठ दिसा बलि दै, अपसो पदु लै, पितु जा लगि मारे।
तोसे सपूतहि जाइकै बालि अपूतन की पदवी पगु धारे।
अंगद संग लै मेरो सबै दल आजहिं क्यों न हतैं बपमारे ।।15।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में रावण द्वारा अंगद को कूटनीतिक वाणी के द्वारा अपने पक्ष में लाने की प्रयास किया जा रहा है–

व्याख्या

रावण कहता है कि हे अंगद। नल, नील, सुखेन हनुमान जी और सभी तुम्हारे जो वानर समूह हैं, ये सभी आठ होकर आठ दिशाओं के बल है जिनके साथ अपना स्थान प्राप्त कर ले, जिसने तुम्हारे पिता को मारा था, उसको मारकर। नहीं तो तेरा जैसा सपूत पाकर भी बालि अपूत ही कहलाएगा। इसलिए हे अंगद, मेरा साथ लेकर आज ही अपने पिता की हत्या का बदला ले ले।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में मदिरा छंद है।
2. प्रस्तुत पद में अनुप्रास अलंकार है।

दोहा– *जो सुत अपने बाप को बैर न लेइ प्रकास।*
तासों जीवत ही मरयो लोग कहैं तजि त्रास।।16।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से लिया गया है।

प्रस्तुत पद में रावण रामदूत अंगद को राम के विरुद्ध ही भड़काने का प्रयास कर रहा है।

व्याख्या

रावण कहता है कि हे अंगद, जो पुत्र अपने पिता की शत्रुता का प्रकाशित होकर विरोध नहीं करता वह पुत्र जीवित होकर भी मरे हुए के समान है, ऐसा लोग निर्भय होकर कहते हैं।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में दोहा छंद है जिसमें 1, 3 पाद में 13–13 एवं 2, 4 पाद में 11 मात्राएं होती हैं।

2. प्रस्तुत पद में पर्यायोक्ति अलंकार है।

3. "जीवत ही मर्‌यौ" में विरोधाभास अलंकार है।

अंगद– *इनको बिलगु न मानिये कहि 'केसव' पल आधु।*
पानी पावक पवन प्रभु ज्यों असाधु त्यों साधु ।।17।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्‌धृत है।

प्रस्तुत पद में राम के प्रति उसकी श्रद्धा, आस्था एवं निष्ठा का परिलक्षण होता है। वह रावण को कहता है कि–

व्याख्या

पानी, पावक, पवन एवं प्रभु आदि इनमें किसी का भी आधे पल के लिए भी बुरा नहीं मानना चाहिए। क्योंकि ये सभी साधु असाधु में कोई भेद नहीं करते। अर्थात श्रीराम जी तो भगवान ही हैं वे कभी किसी के साथ अन्याय नहीं कर सकते।

विशेष

1. "पानी पावक पवन प्रभु ज्यों असाधु त्यों साधु" में तुल्ययोगिता अलंकार है।

2. इस पद में दोहा छंद है।

रावण (द्रुतविलंबित)

उरसि अंगद लाज कछू गहौ। जनकघातक–बात बृथा कहौ।
सहित लक्ष्मन रामहिं संघरौं। सकल बानराज तुम्हें करौं।।18।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्‌धृत किया गया है। प्रस्तुत पद में रावण अंगद को कूटनीतिक रूप से राम के खिलाफ भड़काते हुए कहता है कि–

व्याख्या

हे अंगद, तू अपने हृदय में कुछ तो लज्जा–शर्म रख। ये वही राम है जिसने तेरे पिता का वध किया था और तू इसी राम की बात का सम्मान करता है। तू यह याद रख कि मैं तेरे राम सहित सीता और लक्ष्मण का भी वध कर दूंगा, और यदि तू मेरा इस कार्य में समर्थन करता है तो मैं तुझे उनकी मृत्यु के उपरांत वानरों का राजा बना दूंगा।

विशेष

1. द्रुतविलंबित छंद है। इसमें नगण, भगण, भगण, रगण होते हैं।

2. रावण के कूटनीतिक व्यक्तित्व का वर्णन किया है।

टिप्पणी

अंगद–(निशिपालिका)

सत्रु सब मित्र हम चित्त पहिचानहीं।
दूतबिधि नूत कबहूँ न उर आनहीं।
आप मुख देखि अभिलाष अभिलाषहू।
राखि भुज–सीस तब और कहँ राखहू।। 19।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में अंगद रावण की बात का उत्तर देते हुए कह रहा है कि–

व्याख्या

शत्रु और मित्र सबको हमारा चित्त पहचानता है। दूत का धर्म यही है कि उसके हृदय में कभी भी कपट न आए। आप के मुख को देखकर मेरी अभिलाषा पूरी होती दिख रही है। अपनी भुजाओं को अपने शीश किसी और के लिए दे देना ही अच्छी बात होती है।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में निशिपालिका छंद है।
2. राजदूत के धर्म का आख्यान किया गया है।

रावण–(इंद्रवज्रा)

मेरी बड़ी भूल कहा कहौं रे। तेरो कह्यो दूत सबै सहौं रे।
वै तौ सबै चाहत तोहि मार्‌यो। मारौं कहा तोहि जो दैवमार्‌यो।।20।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में रावण फिर से अंगद को अपनी कूटनीतिक शब्दावली से भटकाने का प्रयास करता है।

व्याख्या

रावण कहता है। हे अंगद! मेरी बड़ी भूल के लिए कहते हो। तेरे जैसा दूत ही सब सह सकता है। वे सब तो तुझे मरवाना चाहते है। पर तुझे क्या मारें तुझे तो भाग्य ने मार रखा है।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में इंद्रवज्रा छंद है। इंद्रवज्रा छंद में तगण, जगण एवं दो गुरु होते हैं।
2. प्रस्तुत पद में रावण के भाग्यवादी होने की पुष्टि हो रही है।

अंगद (उपेंद्रवज्रा) *नराज श्रीराम जहीं धरैंगे। असेष माथे कटि भू परैंगे।*
सिखा सिवा स्वान गहे तिहारी। फिरैं चहूँ ओर निरै–बिहारी।।21।।

टिप्पणी

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में रावण–अंगद के संवाद के मध्य रावण के द्वारा अंगद के भाग्य को कोसा जाता है। जिस पर अंगद कहता है–

व्याख्या

हे रावण! जहां श्री राम है वहां कुछ भी छिपा नहीं है। जहां श्रीराम के चरण पड़ेंगे वही सब शत्रुओं के सिर और हाथ पृथ्वी पर गिर जाएंगे। और ऐसा होने पर तेरे यहां कुत्ते ही भौंकेंगे। चारों ओर वही घूमते फिरेंगे।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में 'उपेन्द्रवज्रा' छंद है। जिसमें जगण, तगण, जगण, दो गुरु होते हैं।
2. 'स्वान' – कुत्ता।

रावण–(भुजंगप्रयात)

महामीचु दासी सदा पाइँ धोवै। प्रतीहार ह्वैकै कृपा सूर जोवै।
छपानाथ लीन्हे रहै छत्र जाको। करैगो कहा सत्रु सुग्रीव ताको।।22।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

प्रस्तुत दोहे में रावण आत्मप्रशंसा युक्त वाक्यों से अपने पराक्रम का उल्लेख करता है।

व्याख्या

रावण कहता है, हे अंगद। मृत्यु सदैव मेरे पैर धोती है और, सूर्यदेव द्वारपाल के समान मेरी कृपादृष्टि के लिए देखता है। मैं वही रावण हूं जिसका छत्र–चंद्रमा थामता है। भला मेरा वह राम क्या करेगा।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में उदात्तालंकार है
2. प्रस्तुत पद में भुजंगप्रपात छंद है जिसमें चार यगण होते हैं।

सका मेघमाला सिखी पाककारी। करै कोतवाली महादंडधारी।
पढ़ै बेद ब्रह्मा सदा द्वार जाके। कहा बापुरो सत्रु सुग्रीव ताके ।।23।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में रावण अपनी महिमा का ही गुणगान करता हुआ अंगद को कह रहा है कि–

टिप्पणी

व्याख्या

हे अंगद, संपूर्ण मेघमालाएं जिसके राज्य को ढके हुए है, और जिसके यहां महादंडधारी यमराज स्वयं कोतवाली करते हैं, जिसके द्वार ब्रह्माजी वेदादि का अध्ययन करते हैं। ऐसे उस रावण का बेचारा सुग्रीव क्या बिगाड़ेगा।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में भुजंगप्रयात छंद है। जिसमें चार यगण होते हैं।
2. अतिशयोक्ति अलंकार का प्रयोग हुआ है।

अंगद (विजय) *गेट चढ़यो पलना पलिका चढ़ि पालकिहू चढ़ि मोह मढ़यो रे।*
चौक चढ़यो चित्रसारी चढ़यो गजबाजि चढ़यो गढ़गर्ब चढ़यो रे।
ब्योमबिमान चढ़योई रह्यो कहि 'केसव' सो कबहूं न पढ़यो रे।
चेतन नाहि रह्यो चढ़ि चित्त सो चाहत मूढ़ चिताहूँ चढ़यो रे।।24।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के रावण–अंगद संवाद से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में अंगद रावण को उसके अहंकार को तोड़ने के लिए जीवन की वास्तविकता बताता है। वह उसे चेतावनी भी देता है कि यदि अब भी वह नहीं समझा तो वह समूल नष्ट हो जाएगा।

व्याख्या

रावण को अंगद कहता है कि हे रावण, जन्म के समय तो तू मां की कोख में रहा। जब शिशु था तो पालने में झूला, युवा बनने पर पलंग पर चढ़ा। विवाह के समय पालकी पर चढ़कर तुझे मोह भी हो गया। इसके बाद तू चौकी पर चढ़ा, रंगमहल में चढ़ा, हाथी–घोड़ों की सवारी भी की और इतने से तो अहंकार भी चढ़ गया। तूने कल्पनाओं की उड़ान तो बहुत भरी पर ईश्वर को कभी जानने का प्रयास नहीं किया। इतना सब होकर भी तेरी चेतना जागृत नहीं हुई तो अहंकार से चूर हो रहा है। हे मूढ़! तू चिता पर ही चढ़ने को उतारू हो रहा है।

विशेष

1. इस पद में 'चिता पर चढ़ना' एवं पेट पर चढ़ना' आदि मुहावरों का कुशलता से प्रयोग किया गया है।
2. प्रस्तुत पद में सार एवं दीपक अलंकार है।
3. प्रस्तुत पद में विजय छंद का प्रयोग हुआ जिसमें आठ भगण एवं अंत में दो गुरु वर्ण होते हैं।

रावण–(भुजंगप्रयात)

निकारयोजु भैया लियो राज जाको। दियो काढ़िकै जू कहा त्रास ताको।
लिये बानराली कहौं बात तोसों। सु कैसे जुरै राम संग्राम मोसों।।25।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में रावण राम की कमजोरी बताकर अंगद को उकसाने का प्रयास करता है।

व्याख्या

रावण कहता है कि हे अंगद। जिसको अपने ही भाईयों ने राज्य से निकाल कर राजपाठ हड़प लिया हो, जिसको उसी के भाई ने दुःख दिया हो, जिसने मनुष्यों को छोड़कर वानरादि का साथ लिया, वह राम मुझसे कैसे युद्ध करेगा।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में भुजंगप्रयात छंद है।
2. प्रस्तुत पद में रावण की वाकपटुता का परिलक्षण हो रहा है।

अंगद (विजय) *हाथी न साथी न घोरे न चेरै न गाउँ न ठाउँ कुठाउँ बिलैहै।*
तात न मात न पुत्र न मित्र न बित्त न तीय कहूं संग रैहै।
'केसब' काम के राम बिसारत, और निकाम के काम न ऐहै।
चेति रे चेति अजौं, चित–अंतर अंतकलोक अकेलोई जैहै।।26।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के रावण–अंगद संवाद से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में संसार की निस्सारता, वैभव, धन संपदा की क्षणभंगुरता का उल्लेख किया गया है। अंगद रावण से कहता है कि

व्याख्या

हे रावण! ये तेरे हाथी, साथी, घोड़े, चाकर, गांव और महल आदि सब कुछ नश्वर है। इतना ही नहीं पिता, माता, पुत्र, मित्र, धन और स्त्री कोई भी किसी के साथ नहीं जाता। ये सांसारिक पदार्थ यहीं रह जाते हैं। अंगद पुनः कहता है कि "हे रावण, जो तेरे हितैषी हैं, जो तेरा हित लाभ करा सकते हैं, उन्हें भूल कर तू निस्सार पदार्थों में लगा हुआ है जबकि ये निस्सार पदार्थ तेरे किसी काम नहीं आएंगे। हे रावण, अब भी तू सजग हो जा। यह समझ ले कि अंत लोक तुझे अकेले ही जाना है।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में 'छेकानुप्रास' एवं 'पुनरूक्तवदाभास' अलंकार है।
2. प्रस्तुत पद में 'विजय छंद है।

डरै गाइबिप्रै अनाथै जो भाजै। परद्रव्य छोड़ै परस्त्रीहि लाजै।
परद्रोह जासों न होवै रतीको। सों कैसें लरै बेष कीन्हें जती को।।27।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

टिप्पणी

प्रस्तुत पद में राम की महिमा का गुणगान किया जा रहा है–

व्याख्या

अंगद कहता है कि हे रावण, जिनकी विप्र, अनाथ सभी वंदना करते हैं। दूसरे के धन को छोड़कर एवं पर–स्त्री से लज्जा करते हैं। श्रीराम से प्रेम करने पर कोई किसी से द्रोह नहीं करता। उनसे कैसे कोई युद्ध करेगा।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में 'विजय' छंद है।
2. प्रस्तुत पद में रामभक्ति का प्रदर्शन हुआ है।

दोहा– *गेंद करयो मैं खेल को, हरिगिरी 'केसवदास'।*
सीस चढ़ाए आपने, कमल समान सहास ।।28।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के रावण–अंगद संवाद से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में रावण द्वारा एक बार फिर से अपने पराक्रम का यशोगान किया जा रहा है।

व्याख्या

रावण अंगद से कहता है कि हे अंगद! मैंने खेल खेल में गेंद की तरह कैलास पर्वत को उठा लिया था और कमल पुष्प के समान प्रसन्नतापूर्वक अपने शीश को कई बार चढ़ा दिया।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में दोहा छंद है।
2. 'कमल समान' में उपमा अलंकार है।

अंगद (दंडक)

जैसो तुम कहत उठायो एक गिरिबर ऐसे कोटि कपिन के बालक उठावहीं।
काटे जो कहत सीस काटत घनेरे घाघ भागर के खेले कहा भट–पद पावहीं।
जीत्यो जु सुरेस रन साप रिषिनारि ही को समझहु हम द्विज–नातें समुझावहीं।
गहौ रामपाई सुख पाई करैं तपी तप, सीताजू कों देहि, देव दुंदुभी बजावही ।।29।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में रावण के द्वारा की गई स्वयं की आत्मप्रशंसा का अंगद के द्वारा उत्तर दिया जा रहा है।

व्याख्या

हे रावण! जैसा कि तुमने कहा कि मैंने कैलास उठा लिया तो ऐसे करोड़ों वानरों के बालक बचनप में ही उठा लेते हैं। और जैसे तुमने कहा कि तुमने अपने ही सीस काट दिए थे। ऐसे हमारे योद्धा खेल–खेल में ही करते है। और जो तू कहता है कि तूने इंद्र को हराया, ऐसा नहीं है वह तो ऋषि पत्नी के शाप से हारा था। ऐसा ब्राह्मण कहते हैं। राम के पैरों को पकड़ ले। क्योंकि बड़े–बड़े तपस्वी भी अपने तप श्रीराम के पैरों के द्वारा प्राप्त कर सुख पाते हैं। हे रावण, सीता को ससम्मान लौटा दो, समस्त देवता ढोल नगाड़े बजाएंगे।

टिप्पणी

विशेष

1. प्रस्तुत पद में 'दण्डक' छंद है।
2. प्रस्तुत पद में अंगद की रामभक्ति का साक्षात्कार होता है।

रावण (बंशस्थ) *तपी जीप बिप्रन क्षिप्रहीं हरौं। अदेवद्वेषी सब देव संहरौं।*
सिया न देहौं यह नेम जी घरौं। अमानुषी भूमि अबानरी करौं।।30।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में अंगद की बातों को सुनकर रावण गुस्से में अंगद को कहता है कि–

व्याख्या

हे अंगद! तपस्वी; ब्राह्मणों के प्राणों को मैं शीघ्रता से हर लूंगा और असुर के दुश्मन देवताओं का भी संहार कर दूंगा। सीता को मैं कभी नहीं दूंगा। ये कसम खाता हूं। इस पृथ्वी को मैं अमानुषी एवं अवानरी कर दूंगा। अर्थात संपूर्ण मनुष्य जातियों एवं वानर जाति को नष्ट कर दूंगा।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में वंशस्थ छंद है। जिसमें जगण, तगण, जगण, रमण होते हैं।
2. प्रस्तुत पद में रावण की हठधर्मिता एवं राक्षस प्रवृत्ति का परिलक्षण हो रहा है।

अंगद (विजय) *पाहन तें पतिनी करि पावन टूक कियो धनु द्वै हर को रे।*
छत्रबिहीन करी छन में छिति गर्व हत्यो तिनके बर को रे।
पर्बतपुंज परैन के पात समान तरे अजहूँ धरको रे।
होइँ नरायनहूँ पै न ये गुन कौन इहाँ नर बानर को रे।।31।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के रावण–अंगद संवाद से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में अंगद द्वारा पुनः राम के शक्तिशाली व्यक्तित्व एवं महानता का गुणगान किया गया है।

टिप्पणी

व्याख्या

अंगद कहता है कि जिनके पैर के स्पर्श मात्र ने पत्थर रूप पड़ी गौतम पत्नी अहिल्या को मानुषीय रूप प्रदान किया, जनक के राजदरबार में जिन्होंने शिव धनुष के दो टुकड़े कर दिए थे, जिसने पूरी पृथ्वी को क्षत्रिय विहीन कर दिया था, उन्हीं परशुराम के अहंकार को भी चूर–चूर कर दिया। श्रीराम के प्रताप के समस्त पर्वत कमल पत्र के समान जल में तैरते हैं। हे रावण समस्त गुण से संपन्न तो ईश्वर भी नहीं होते। इसके अलावा यहां न तो कोई मानव है और न ही वानर।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में 'कोकुवक्रोक्ति' का प्रयोग हुआ है।
2. 'पुरैन के पात समान में' उपमा अलंकार है।
3. इस पद में विजय छंद का प्रयोग हुआ है।

रावण (चंचरी) *देहिं अंगद राज तोकहँ मारि बानरराज कों।*
बाँधि देहिं बिभीषनै अरु फोरि सेतु–समाज कौं।
पूँछि जारहिं अक्षरिपु की पाइँ लागहिं रुद्र के।
सीय कों तब देहुं रामहिं पार जाइँ समुद्र के।।32।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में रावण के द्वारा अंगद की कही हुई बात का उत्तर दिया जा रहा है।

व्याख्या

हे अंगद! वानरराज को मारकर तुझे राजा बना दूंगा। जिसने समाज के नियम को नष्ट कर दिया, ऐसे विभीषण को बांध दूंगा। जिसने अक्षयकुमार को मारा उसकी पूंछ जला दूंगा। शिव के पैरों की शपथ खाता हूं। रामजी समुद्र को पार करके चले जाएं तो मैं सीता को दे दूंगा।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में चंचरी छंद है।
2. रावण के शिवभक्त होने की पुष्टि होती है।

अंगद *लंक लाइ गयो बली हनुमंत संतन गाइयो।*
सिंधु बाँधत सोधिकै नल छीरछीट बहाइयो।
ताहि तोहि समेत अंध उखारि हौं उलटी करौं।
आजु राज कहाँ बिभीषन बैठिहैं तेहि तें डरौं।।33।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में रावण की बात का उत्तर देते हुए अंगद कहता है कि–

व्याख्या

हे रावण। लंका में लाए गए बली हनुमान का संत भी गुणगान करते हैं, जिसकी कृपा से सिंधु को बांध दिया नल नीलों ने वे तेरे समेत पूरी लंका को उल्टा कर देंगे। आज तेरा राज कहां है, विभीषण बैठा है उससे डर रावण।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में 'चंचरी' छंद है।
2. अंगद के द्वारा अंततः युद्ध के लिए रावण को कह दिया गया है।

दोहा अंगद रावन को मुकुट लै करि उड़यो सुजान।
मनो चल्यो जमलोक कों दससिर को प्रस्थान ।।34।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद केशवदास विरचित 'रामचंद्रिका' के 'अंगद–रावण संवाद' से उद्धृत है।

प्रस्तुत पद में अंगद के उड़ने का वर्णन करते हुए केशवदास कहते हैं कि

व्याख्या

अंगद रावण के मुकुट को लेकर उड़ गया। मानो रावण के यमलोक जाने का इंतजाम कर दिया हो।

विशेष

1. प्रस्तुत पद में 'दोहा' छंद है।
2. प्रस्तुत पद में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

गतिविधि

रामचंद्रिका के प्रमुख पात्र भगवान श्रीराम की लीलाओं का गहन अध्ययन करने के उपरांत उनकी लीलाओं का नाट्य रूपांतरण करें।

क्या आप जानते हैं?

केशव को उनके काव्य की कठिनता के कारण 'कठिन काव्य का प्रेत' भी कहा जाता है।

3.7 सारांश

भारतीय संस्कृति की मूलभूत चेतना अर्थात उसके सांस्कृतिक मूल्यबोध की दीर्घकालीन परंपरा रामकाव्य के पात्रों और उनके आचरण के विविध आयामों में अभिव्यक्त हुई है।

टिप्पणी

रामकाव्य वस्तुतः प्रागैतिहासिक युग से वर्तमान युग तक के जनमानस को प्रभावित एवं आंदोलित करने वाले नैतिक, आध्यात्मिक, सामाजिक एवं राजनैतिक मूल्यों का प्रतिबिंब है। रामकाव्य में मूल्यों और प्रतिमानों का अनुसंधान हमें उस वैदिक संस्कृति के उत्स तक ले जाता है जहां रामकथा के पात्रों और स्थानों का न केवल अभिधान अनुशीलन मात्र है, अपितु एक सांस्कृतिक परिवेश भी उपलबध होता है जिसके साम्य और वैषम्य के बिंदुओं का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में विश्लेषण किया जा सकता है।

तुलसीदास को अपने काव्य की प्रेरणा भक्ति–आंदोलन से प्राप्त हुई। रामावत संप्रदाय के प्रवर्तक स्वामी रामानंद ने भक्ति को जन–जीवन की व्यावहारिकता में उतार कर तत्कालीन सामाजिक परिस्थितियों तथा मूलभूत समस्याओं के साथ उसका सामंजस्य स्थापित किया।

'केशवदास' की दृष्टि में राम पूर्णब्रह्म हैं; किंतु संपूर्ण 'रामचंद्रिका' का वातावरण एक विशिष्ट अभिजात्य एवं सामंतीय सांस्कृतिक मूल्यों से परिवेष्टित है। व्यक्ति–व्यक्ति के बीच का संबंध बहुत कुछ नगर–सांस्कृतिक मूल्यों के आधार पर निर्मित है।

केशव ने 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' नामक दो प्रसिद्ध ग्रंथ लिखे। केशव के आचार्यत्व का आधार भी यही दो प्रसिद्ध ग्रंथ हैं। केशव ने 'कविप्रिया' में अलंकारों का तथा 'रसिकप्रिया' में रसों का वर्णन किया है।

केशव भी अपने काव्य में शृंगार का रस राजत्व सिद्ध करना चाहते थे। केशव ने रौद्र, वीभत्स आदि रसों को शृंगार रस के अंतर्गत रखने का असंभव प्रयास किया।

कहा जा सकता है कि केशव बहुविद कवि थे। केशव के समीप शब्द–भंडार की कमी न थी, क्योंकि ब्रजभाषा के अतिरिक्त केशव के पास बुंदेलखंडी, अरबी–फारसी के साथ–साथ संस्कृत भाषा के शब्दों का अक्षय भंडार विद्यमान था। केशव की संस्कृत भाषा में अबाध गति थी और संस्कृत शब्दों की बहुलता के कारण ही केशव की भाषा में सरसता एवं सरलता के स्थान पर क्लिष्टता एवं कठोरता दृष्टिगोचर होती है। परंतु केशव का हिंदी भाषा की समृद्धि एवं शब्द–भंडार की पूर्ति में जो योगदान है तथा केशव ने हिंदी भाषा को विविध अर्थों के प्रकट करने में जो सक्षम एवं सशक्त बनाया है, इस कार्य के लिंए वे चिरस्मरणीय रहेंगे। केशव ने हिंदी भाषा को संस्कृत के ही समान चमत्कारपूर्ण एवं विविध अर्थमयी बनाने में बड़ा सराहनीय कार्य किया है। यह दूसरी बात है कि ऐसा करने में केशव की कविता क्लिष्ट हो गई है और उसे जनसाधारण समझ नहीं सकता, परंतु इससे हिंदी–भाषा का उत्कर्ष हुआ है, उसमें चमत्कार उत्पन्न करने की शक्ति आई है और इससे हिंदी को गौरव प्राप्त हुआ है, क्योंकि हिंदी में सूर और तुलसी की अपेक्षा केशव की ही कविता ऐसी कविता है, जिसे समझने के लिए पांडित्य की आवश्यकता होती है, जिसमें एक–एक पंक्ति के पांच–पांच अर्थ होते हैं, जो विविध अलंकारों से अलंकृत हैं और जो शास्त्रीय विशेषताओं से अधिक विभूषित है। निस्संदेह, केशव की भाषा में सशक्तता एवं काव्योपयोगिता का प्राधान्य है, उसमें भावानुकूल गति है, संवादानुकूल धारा–प्रवाह है, नाटकीय सजीवता है, साहित्यिक गंभीरता है और इन सबसे अधिक उत्कृष्ट अभिव्यंजना–शक्ति विद्यमान है। इसीलिए केशव की भाषा

कवि की उत्कृष्ट कवित्व–शक्ति की परिचायक तथा काव्य–भाषा पर कवि के पूर्ण अधिकार की द्योतक है।

3.8 मुख्य शब्दावली

- **अवगाहन** : अवगाह की क्रिया
- **विरंचि** : ब्रह्मा, विष्णु, शिव
- **उच्छृंखल** : क्रमरहित, बंधन न मानने वाला
- **आलंबन** : सहारा लेना, रस की उत्पत्ति का आधार
- **अतिशयोपमा** : उपमा का वह भेद जिसमें किसी एक वस्तु की उपमा एक वस्तु को छोड़कर अन्य किसी से न दी जा सके

3.9 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. मनोवैज्ञानिक युग का
2. वाल्मीकि रामायण में
3. श्री नाभादास
4. पंद्रहवीं शताब्दी की
5. भक्ति आंदोलन से
6. आचार्य शब्द के दो अर्थ होते हैं.– 1. दीक्षा गुरू 2. किसी नवीन मत का प्रवर्त्तक
7. 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया'
8. 'रसिकप्रिया' में
9. नौ संवाद
10. पात्रानुकूलता
11. अंगद–रावण–संवाद
12. लंका कांड

3.10 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. अर्थालंकार किसे कहते हैं?
2. रामचंद्रिका में वर्णित नौ संवाद कौन से हैं? बताइए।
3. रामचंद्रिका के 'अंगद–रावण संवाद' में कूटनीति का वर्णन कीजिए।

टिप्पणी

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. रीतिकाल की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हुए केशव के व्यक्तित्व व कृतित्व का वर्णन कीजिए।
2. केशव के आचार्यत्व की विवेचना कीजिए।
3. केशव कृत 'रामचंद्रिका' की संवाद–योजना की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
4. 'रामचंद्रिका के राम' पर एक विस्तृत लेख लिखिए।
5. सप्रसंग व्याख्या कीजिए–

   (क) चित्रपदा– अंगद यौं सुन बानी। चित्त महा रिस आनी।
   ठेलिकै लोग अनैसे। जाई सभा महंबैसे।।

   (ख) दोहा– गेंद करयो मैं खेल को, हंरिगिरी 'केशवदास'।
   सीस चढ़ाए आपने, कमल समान सहास।।

3.11 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल *हिंदी साहित्य का इतिहास*
2. डॉ. नगेन्द्र *हिंदी साहित्य का इतिहास*
3. बाबू गुलाब राय *हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास*
4. डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना *हिंदी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि*
5. परमानन्द शर्मा *कविवर बिहारी*
6. डॉ. रामानन्द शर्मा *भारतीय काव्य–शास्त्र*
7. डॉ. विजय कुमार वेदालंकार *भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य–शास्त्र*
8. डॉ. प्रणव शर्मा केशव के *काव्य का शैली वैज्ञानिक अध्ययन*

इकाई 4 बिहारी

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

4.0 परिचय
4.1 इकाई के उद्देश्य
4.2 श्रृंगार परंपरा और बिहारी सतसई
4.3 दरबारी संस्कृति और बिहारी का काव्य
4.4 'सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर' की कसौटी पर बिहारी का काव्य
4.5 बिहारी का काव्य–वैभव
4.5.1 भाव पक्ष
4.5.2 कला पक्ष
4.6 बिहारी की काव्य–भाषा
4.7 बिहारी की बहुज्ञता
4.8 मुक्तक काव्य परंपरा और बिहारी
4.9 पाठांश
4.10 सारांश
4.11 मुख्य शब्दावली
4.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
4.13 अभ्यास हेतु प्रश्न
4.14 आप ये भी पढ़ सकते हैं

4.0 परिचय

बिहारी हिंदी साहित्य के इतिहास में 'रीतिकालीन काव्यधारा' के प्रमुख कवि हैं। इनका संपूर्ण काव्य मुक्तक शैली में लिखा गया है। महाकवि बिहारी का जन्म 1595 ई. के लगभग ग्वालियर में हुआ। वे जाति के माथुर चौबे थे। इनके पिता का नाम केशवदास था। बिहारी सतसई बिहारी की एक मात्र रचना है। यह एक मुक्तक काव्य है जिसमें 719 दोहे समाहित हैं। इनकी कविता का मुख्य विषय श्रृंगार है। श्रृंगार के दोनों पक्षों–संयोग व वियोग का वर्णन इनके काव्य में बखूबी किया गया है। बिहारी प्रकृति के चित्रण में भी किसी से पीछे नहीं हैं। अपने काव्य में उन्होंने षट् ऋतुओं का बड़ा ही सुंदर वर्णन किया है। बिहारी को ज्योतिष, वैद्यक, गणित, विज्ञान आदि विविध विषयों का अत्यंत ज्ञान था। अपने दोहों में उन्होंने अपने ज्ञान का बड़ी ही खूबी के साथ उपयोग किया है।

बिहारी की काव्य भाषा साहित्यिक ब्रजभाषा है। अपनी लेखनी में इन्होंने ब्रज के अतिरिक्त पूर्वी हिंदी, बुंदेलखंडी, उर्दू, फारसी आदि भाषाओं के शब्दों का भी प्रयोग किया है। इनका शब्द चयन अत्यंत सुंदर और सार्थक है। बिहारी ने अपने काव्य में केवल दो ही छंदों का प्रयोग किया–1. दोहा और 2. सोरठा। परंतु दोहा छंद की काव्य में प्रधानता पाई जाती है। इनके दोहे समास–शैली के उत्कृष्ट उदाहरण हैं। बिहारी को उनके अकेले एकमात्र ग्रंथ 'बिहारी सतसई' ने हिंदी साहित्य में अमरता प्रदान कर दी। श्रृंगार रस के ग्रंथों में बिहारी सतसई के समान प्रसिद्धि किसी अन्य रचना को नहीं मिली। प्रस्तुत इकाई में हम बिहारी और उनकी प्रसिद्ध कृति 'बिहारी सतसई' का विस्तृत रूप से अध्ययन करेंगे।

टिप्पणी

4.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप—

- शृंगार परंपरा और बिहारी सतसई का अध्ययन कर पाएंगे;
- दरबारी संस्कृति में बिहारी के काव्य का मूल्यांकन कर पाएंगे;
- 'सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर' के आधार पर बिहारी के दोहों का वर्णन कर पाएंगे;
- बिहारी के काव्य वैभव और काव्यभाषा का विस्तारपूर्वक वर्णन कर पाएंगे;
- बिहारी की बहुज्ञता का अध्ययन व विश्लेषण कर पाएंगे;
- मुक्तक काव्य परंपरा और बिहारी सतसई का तुलनात्मक विवेचन कर पाएंगे।

4.2 शृंगार परंपरा और बिहारी सतसई

रीति कवियों की कविता का प्राण शृंगारिकता की प्रवृत्ति है। रीति—निरूपण की यह प्रवृत्ति अन्य प्रवृत्तियों में विद्यमान नहीं थी। यद्यपि एक तरफ काव्यशास्त्रीय बंधनों का निर्वाह और दूसरी तरफ नैतिक बंधनों से मुक्ति तथा विलासी आश्रयदाताओं के प्रोत्साहनों के कारण इस प्रवृत्ति को जो रूप प्राप्त हुआ उसे अन्य कवियों की शृंगारिक प्रवृत्ति से सहज ही अलग करके देखा जा सकता है। इस शृंगारिक प्रवृत्ति को शास्त्रीय बंधनों ने इतना रूढ़ बना दिया कि शृंगार के विभाव—पक्ष में नायक नायिकाओं के सभी भेद तथा उद्दीपक सामग्री के अंग, अनुभावों के विविध रूप, प्रत्येक संचारी तथा संयोग और वियोग के अनेक भेदों सहित रचनाओं के अलग—अलग वर्ग बनाए जा सकते हैं।

शृंगार रस को रसराज भी कहा जाता है। इसका एकमात्र कारण यह है कि शृंगार ही संसार का प्रथम रस है। इसकी ख्याति दूर—दूर तक फैली हुई है। इस रस के अंतस में अनेक प्रकार के भावों को समाहित किया जाता है। इस रस के संयोग और वियोग नामक दो प्रकार हैं अतः इसमें सुखात्मक और दुखात्मक, दोनों प्रकार की अनुभूतियों के दर्शन होते हैं। प्रेम ही इस विश्व की एक ऐसी विभूति है जो संपूर्ण विश्व को एक माला में पिरोती है।

शृंगारिकता के दर्शन भारतीय साहित्य में तो होते ही हैं परंतु विश्व साहित्य भी इससे अछूता नहीं है। आंग्ल साहित्य शृंगार परक रचनाओं से भरा पड़ा है। भारतीय शृंगारिकता के जितने भेद हैं उतने अन्य रसों के नहीं है। हास्य रस, शृंगार रस का पोषक मात्र है।

शृंगारिकता की परंपरा को भृतहरि ने अपने द्वारा रचित शृंगार शतक में प्रस्तुत किया। उन्होंने तीन प्रकार के काव्य रूपों को अपने रचना संसार में स्थान प्रदान किया। उनका रचना संसार 'भक्ति', 'नीति' व 'शृंगारिकता' की संपूर्ण प्रवृत्ति को अपने में समाए हुए है।

टिप्पणी

आदिकाल में भी शृंगार परंपरा परिलक्षित होती है। रासो काव्यकारों व विद्यापति आदि रचनाकारों ने शृंगार की परंपरा को आगे बढ़ाया। भक्तिकाल के कवि जायसी ने पद्मावती के सौंदर्य वर्णन के द्वारा प्रभु के अलौकिक रूप के माध्यम से भी इस परंपरा को जीवंत किया, वहीं दूसरी ओर घनानंद ने अपनी प्रियतमा 'सुजान' के सौंदर्य वर्णन के द्वारा इस परंपरा को आगे बढ़ाया।

रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि 'बिहारी' की प्रवृत्ति शृंगारिक थी। यह बात निम्न उदाहरण से प्रमाणित होती है–

"नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल।
अली कली ही सौं बंध्यौ, आगै कौन हवाल।।"

कहते हैं कि इस दोहे को पढ़कर राजा जयसिंह की मोहनिद्रा भंग हुई और वे एक बार फिर राजकाज में रुचि लेने लगे।

बिहारी के काव्य में शृंगारिकता के विविध रूपों को दर्शन होते हैं। उनका शृंगार वर्णन अत्यंत सजीव प्रकट होता है।

संयोग शृंगार– संयोग शृंगार का मुख्य भाव है प्रेमी–प्रेमिका के रूपाकर्षण, गुणाकर्षण से दोनों के बीच हास–परिहास, प्रेम क्रीड़ाएं आदि संयोग शृंगार के अंतर्गत आते हैं। बिहारी के काव्य में संयोग शृंगार की नायक नायिका संबंधी सभी सुक्ष्मातिसूक्ष्म क्रीड़ाओं, हाव–भाव, मुद्राओं आदि का सहज, स्वाभाविक एवं मनोवैज्ञानिक चित्रण मिलता है। कुछ विशेषताएं निम्नलिखित हैं–

बिहारी के काव्य की सबसे बड़ी खूबी उनका सौंदर्य बोध है। शृंगार वर्णन में वे नायिका के यप का, उसके अंग–प्रत्यंग का बिंबात्मक, सौंदर्य चित्र खींचते हैं–

अंग–अंग छवि की लपट उपटत जाति अहारे।
खरी पातरीऊ तऊ लगै भरी सी देह।

बिहारी ने सलोने सौंदर्य का अद्‌भुत मधुरिमा के साथ वर्णन किया है–

किता मिठास दयौ देई इतै सलौने रूप।

बिहारी ने नायक नायिका के हास–परिहास का अत्यंत सजीव एवं मधुर अंकन प्रस्तुत किया है–

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाइ।
सौंह भरैं भौहनु हंसै दैन कहै नटि जाइ।।

शृंगार रस के पारखी बिहारी ने नायक नायिका की प्रणय क्रियाओं, चेष्टाओं, नयन–कटाक्ष आदि का स्वाभाविक चित्रण किया है।

बिहारी ने नायक नायिका के प्रेम संबंधी जो वर्णन दिए हैं वे पहले से चली आ रही नायक नायिका के प्रेम संबंधी वर्णन की परंपरा को लांघ गए हैं। जैसे एक उदाहरण देखिए जिसमें नायक के द्वारा लिए गए कबूतर रमणीयता ला रहे हैं–

ऊचें चितै सराहिय गिरह कबूतर लेत।
झलकति दृग पुलकित बदन तन पुलकित किहिं हेत।।

टिप्पणी

भक्ति में जिस प्रकार उपास्य और उपासक की एकता होती है उसी प्रकार प्रेम के क्षेत्र में प्रिय और प्रेमी की। कोई नायिका, नायक के ध्यान में इतनी मग्न है कि वह अपने को ही नायक समझकर स्वयं अपने पर ही रीझ रही है—

पिय के ध्यान गही गही रही वही ह्वै नारि।
आपु आपुहीं आरसी लखि रीझति रिसवारि।।

वियोग श्रृंगार— बिहारी ने संयोग श्रृंगार संबंधी जितने दोहे लिखे हैं उसकी अपेक्षा वियोग श्रृंगार संबंधी दोहे अल्पमात्र है। कारण, कवि की रुचि और युग की मांग है। काव्याचार्यों ने वियोग श्रृंगार के चार भेद बताए हैं— पूर्वराग, मान, प्रवास, करुण।

मिलन से पहले नायक का नायिका में एक दूसरे के प्रति उठने वाली जिज्ञासा, उत्कंठा, अभिलाषा, वेदना, तड़प या टीस 'पूर्वराग' कहलाती है। संयोग हो जाने पर नायिका या नायक का एक दूसरे के प्रति रूठ जाने का भाव 'मान' कहलाता है। अधिकांशतः नायिका की ओर से ही मान की क्रिया होती है क्योंकि नायक परस्त्री गमन करके आता है। अतः मान दो प्रकार का होता है— प्रणयमान और ईर्ष्यामान।

बिहारी के विप्रलंभ श्रृंगार वर्णन में पूर्वराग की अपेक्षा प्रवास का वर्णन ही अधिक मिलता है। मान संबंधी दोहों की रचना भी की है। यथा—

रही पकरि पाटी सु रिस, भरे भौंह चित नैन।
लखि सपनौ पिय आन रत जगहू हू लगत हियै न।।

वियोग में वेदना की पूर्ण विवृति के लिए इन दस दशाओं का वर्णन होता है—वियोग, चिंता, स्मरण, गुणकथन, उद्वेग, प्रलाप, उन्माद, जड़ता, व्याधि, मरण।

बिहारी ने नायिका की विरहावस्था को प्रवत्स्यतपतिका, आगतपतिका व प्रोषितपतिका के रूप में व्यक्त किया है।

बिहारी के काव्य में विरह की सभी दसों दशाओं के भी दर्शन होते हैं। लेकिन बिहारी का वियोग वर्णन उतना मार्मिक और स्वाभाविक नहीं है जितना संयोग वर्णन। बिहारी का विरह वर्णन ऊहात्मक हो गया है। बिहारी की चमत्कार प्रियता, अलंकार प्रियता ने विरह को सहल नहीं रहने दिया है। उदाहरणार्थ—

आडे दे आले बसन जोडे हू की रात।
साहस ककै सनेह बस सखी सभी ढिग जात।

वस्तुतः बिहारी द्वारा वर्णित नायक नायिका के प्रेम, व्यापार एवं श्रृंगार का जो वर्णन किया है, उसमें मिलन, मस्ती, अधीरता, विवशता, उत्सुकता, संबंध भावना, मोह, आमोद—प्रमोद, व्यंग्य विनोद, स्पर्श सुख, अभिसार, कामुकता आदि सभी कुछ विद्यमान है। बच्चन सिंह के अनुसार, "बिहारी के संयोग वर्णन में यौवन, प्रेम और सौंदर्य की त्रिवेणी पूरे वेग के साथ

बहती है, जिसमें नहाकर काव्य का रसिक उस स्थिति को पहुंच जाता है, जिसे आचार्य शुक्ल हृदय की 'मुक्तावस्था' कहते हैं।"

टिप्पणी

बिहारी का मूल विषय श्रृंगार रहा है जिसका उन्होंने विभिन्न, विशिष्ट ढंग से वर्णन किया है जिसमें स्वाभाविकता, मौलिकता, मार्मिकता, मनोवैज्ञानिकता, सूक्ष्मता आदि गुण विद्यमान है लेकिन वियोग श्रृंगार में उनकी अभिव्यक्ति हल्की जान पड़ती है जो कि उनकी रुचि ओर उनके युग की प्रवृत्ति की परिणाम है।

बिहारी सतसई

कविवर बिहारी की यह अत्यंत प्रौढ़ कृति है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल के अनुसार "श्रृंगार रस के ग्रंथों में जितनी ख्याति और जितना मान बिहारी सतसई का हुआ उतना और किसी का नहीं। उसका एक–एक दोहा हिंदी साहित्य में एक–एक रत्न माना जाता है। इसकी पचासों टीकाएं रची गई हैं।"

बिहारी–सतसई में सब मिलाकर 719 दोहे हैं। इसकी रचना बिहारी ने जयपुराधीश मिर्जा राजा जयसिंह के लिए संवत् 1692 में आरंभ की थी। इसमें श्रृंगार, वैराग्य, नीति आदि कई विषयों के दोहे हैं। परंतु श्रृंगार के ही दोहे अधिक हैं। नायिका भेद के प्रायः सभी प्रकार के उदाहरण बिहारी–सतसई से दिए जा सकते हैं।

बिहारी–सतसई की रचना श्रृंगार–रस–प्रधान है। श्रृंगार को लोग रसराज कहते हैं। इसका कारण यही है कि श्रृंगार ही संसार का प्रथम रस है। इसकी व्याप्ति बहुत दूर तक है। इसके अंतर्गत अधिकाधिक भावों का समावेश किया जा सकता है। क्योंकि इसके संयोग और वियोग नामक सुखात्मक एवं दुःखात्मक दो पक्ष हो जाते हैं। इसका स्थायी भाव रति या प्रेम है। प्रेम ही विश्व में एक ऐसी विभूति है, जो संसार को एक सूत्र में बांध सकती है।

श्रृंगार रस की धूम भारतीय साहित्य में तो है ही, विश्व–साहित्य भी इसकी व्यंजना से भरा पड़ा है। आंग्ल–साहित्य में भी श्रृंगारी रचनाओं की कमी नहीं और यदि विचारपूर्वक देखा जाए तो श्रृंगार के भीतर रूपों की बिविधता और उसकी व्यंजना की वैसी गहराई नहीं दिखाई देती जैसी यहां है। भारतीय श्रृंगार के जितने भेदोपभेद हैं, उतने अन्य रसों के नहीं। हास्य रस की तो कोई ही नहीं, वह श्रृंगार रस का पोषक मात्र है। अन्य रसों में भी वह विविधता नहीं जो श्रृंगार में दिखाई देती है। करुण रस का प्रभाव विशेष अवश्य दिखाई देता है इसीलिए भवभूति ने उसकी प्रधानता की घोषणा की है। पर उसमें केवल दुःखात्मक पक्ष है। श्रृंगार की भांति उसके दो पक्ष नहीं हैं।

बिहारी सतसई के विभिन्न भाषाओं में अनुवाद भी इसकी लोकप्रियता के प्रमाण हैं। किसी ने इसके दोहों को छंदों में पल्लवित किया, तो कुछ ने उन्हें कुण्डलियों में बांधा। उसकी श्रेष्ठता का कारण यह है कि इसमें एक ओर श्रृंगार रस का व्यापक चित्रण है–अनुभावों की रमणीय योजना है, प्रेम की विभिन्न दशाओं का सम्यक वर्णन है, भावों और संचारियों का कुशल प्रयोग है, कवि का जीवन–दर्शन अनुस्यूत है, तो दूसरी ओर अर्थ–गाम्भीर्य, भाषा की कसावट, कल्पना की समाहार शक्ति और अलंकारों की छटा भी

टिप्पणी

दृष्टिगत होती है। "बिहारी के दोहों में भाषा की कसावट, भावों की जैसी मौलिकता और अर्थ की जैसी गंभीरता मिलती है, वैसी अन्यत्र दुर्लभ है।

परवर्ती रचनाओं को प्रभावित करने की दृष्टि से भी 'बिहारी सतसई' का अपना महत्व है। नीचे से तुलनात्मक उद्धरणों से स्पष्ट हो जाएगा कि बिहारी ने अपने परवर्ती कवियों को किस प्रकार प्रभावित किया—भाव और पदावली दोनों की छाप स्पष्ट दृष्टिगत होती है—

बिहारी— *दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।*
परति गांठि दुरजन हियै, दई नई यह रीति।।

रसनिधि— *उरझत दृग, वंधि जात मन कहौ कौन यह रीति।*
प्रेम नगर में आई कै देखी बड़ी अनीति।।

अद्‌भुत गति यह प्रेम की लखौ सनेही आइ।
जुरै कहुं टूटै कहूं कहूं गांठि परि जाइ।।

बिहारी ने जो बात एक दोहे में कही है, उसी को रसनिधि दो दोहो में कह पाए हैं। बिहारी के दोहों का प्रभाव मतिराम, विक्रम और चंद पर स्पष्ट दिखलाई पड़ता है। बिहारी की समानता यदि सतसईकारों में कोई कर सकता है, तो मतिराम। परंतु एक तो मतिराम की प्रतिभा विभक्त हो गयी थी—उन्होंने उसका उपयोग कई रचनाओं में किया जबकि बिहारी ने केवल एक रचना लिखी, दूसरे बिहारी की प्रतिभा और साहित्यिक श्रेष्ठता मतिराम से अधिक ही थी, अतः निःसंकोच कहा जा सकता है कि हिंदी सतसई—परंपरा में 'बिहारी सतसई' का सर्वोच्च स्थान है।

'बिहारी सतसई' के रचना—विधान में भाव और कला पक्ष की महत्वपूर्ण उपलब्धियां सन्निहित हैं। डॉ. विश्वम्भर मानव के अनुसार, 'बिहारी ने अपने से पूर्व छः सौ वर्ष के काव्य को धर्म के प्रभाव से मुक्त करके जीवन की ओर मोड़ा। यही काम आज के युग में यदि किसी ने किया होता तो वह 'काव्य में विद्रोह' कहलाता। लौकिक जीवन के एक बड़े पक्ष के सौंदर्य, क्रीड़ा और आनंद का जैसा सजीव वर्णन बिहारी में पाया जाता है, वैसा आज तक के किसी कवि के काव्य में नहीं। यह जीवन कहीं—कहीं गंदला है, पर धरती का जीवन ऐसा ही है, क्या किया जाए। इतना तो निश्चित ही है कि उनके काव्य का एक ऐतिहासिक महत्व है। जैसे चंदवरदायी, कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, हरिश्चंद्र, मैथिलीशरण गुप्त और जयशंकर प्रसाद के बिना काव्य के विभिन्न युगों का इतिहास नहीं लिखा जा सकता, वैसे ही रीतिकाल के दो वर्ष की कड़ी टूटी हुई दिखाई देगी, यदि उसमें से बिहारी का नाम निकाल दिया जाए।

'बिहारी—सतसई' की मूल संवेदना शृंगारी है। शृंगार को लोग रसराज कहते हैं। इसका कारण यही है कि शृंगार ही संसार का प्रथम रस है। इसकी व्याप्ति बहुत दूर तक

है। इसके अंतर्गत अधिकाधिक भावों का समावेश किया जा सकता है। क्योंकि इसके संयोग और वियोग नामक सुखात्मक एवं दुःखात्मक दो पक्ष हो जाते हैं। इसका स्थायी भाव रति या प्रेम है। प्रेम ही विश्व में एक ऐसी विभूति है, जो संसार को एक सूत्र में बांध सकती है।

टिप्पणी

बिहारी सतसई का महत्व

बिहारी के विषय में बहुत से वाद–विवाद है क्योंकि उनके समर्थकों ने अतिशयोक्ति से काम लिया है तथा उन्हें हिंदी साहित्य के सर्वोच्च शिखर पर बैठा दिया है। उनके समर्थकों के कुछ कथन उल्लेखनीय हैं–

पद्मसिंह शर्मा बिहारी के विषय में लिखते हैं–'हिंदी कवियों में श्री युत महाकवि बिहारीलाल का आसन सबसे ऊंचा है। शृंगार रस वर्णन, पद–विन्यास–चातुर्य अर्थ–गांभीर्य, स्वभावोक्ति और स्वभाविक बोलचाल आदि खास गुणों से वह अपना जोड़ नहीं रखते। 'राधाचरण गोस्वामी के अनुसार 'बिहारी को ऐसा पीयूषवर्षी घनश्याम कहा है जिसका उदय होते ही सूर और तुलसी आच्छादित हो जाते हैं।' विश्वनाथ प्रसाद मिश्र के अनुसार 'प्रेम के भीतर उन्होंने सब प्रकार की सामग्री सब प्रकार के वर्णन प्रस्तुत किये और वे भी सात सौ दोहों में। यह उनकी एक विशेषता ही है।'

निष्कर्षत : यही कहा जा सकता है कि कवि की सहज अनुभूति, तन्मयता और रसमयता में बिहारी से सूर, तुलसी, मीरा और घनानंद बहुत आगे हैं। सरसता में तो बिहारी के समकालीन कवि मतिराम, पद्माकर, देव तक इनसे आगे निकल गए हैं। वस्तुतः बिहारी का काव्य नक्काशीदार उत्कृष्ट शिला का एक अप्रतिम नमूना है। यदि इसके साथ भावों की गहनता और तन्मयता भी मिल जाती तो बिहारी हिंदी साहित्य के सर्वश्रेष्ठ कवि बन जाते। अपने उत्कृष्ट शिल्प द्वारा बिहारी हमें क्षणभर के लिए ही आंदोलित कर जाते हैं, परंतु उनके भावों की अनुगूंज अधिक समय तक स्थायी नहीं रह पाती।

4.3 दरबारी संस्कृति और बिहारी का काव्य

हिंदी साहित्य में भक्तिकाल को 'स्वर्ण युग' कहा जाता है। इस काल में हिंदी काव्य का बहुमुखी विकास हुआ साथ ही साथ काव्य में मानव के उद्दाम आदर्शों को अभिव्यक्ति मिली। सामाजिक संकीर्णता, पाखंड, कुरीतियों आदि पर कुठाराघात करते हुए इस काल के कवियों ने मानव के शील, सदाचार, दया, क्षमा, ज्ञान आदि गुणों को प्रतिष्ठित करने के लिए काव्य की जिस दिव्य एवं अलौकिक धारा से भारतीय समाज को आप्लावित किया, उसकी तुलना अन्य किसी युग के काव्य से नहीं की जा सकती। भाव की गहनता, अनुभूति, तीव्रता, अभिव्यक्ति की विलक्षण कुशलता की दृष्टि से भी इस काल की काव्य रचनाएं अन्य सभी कालों से श्रेष्ठ है। इस काल की रचनाएं काव्य साहित्य की दिव्यता एवं अलौकिकता के गुणों की संपूर्ण वास्तविकता के साथ प्रकाशमान होकर प्रस्फुटित हुईं और उन्होंने युगों तक समाज का मार्गदर्शन किया। इनमें शाश्वत आदर्श एवं कर्तव्य की अभिव्यक्ति की गई जो कि किसी भी साहित्यकार एवं साहित्य का अंतिम उद्देश्य होता है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. रीति कवियों की कविता का प्राण क्या है?
2. शृंगारिकता की परंपरा को भृर्तहरि ने अपने किस ग्रंथ में प्रस्तुत किया?
3. बिहारी के काव्य की सबसे बड़ी खूबी क्या है?
4. बिहारी सतसई में कुल मिलाकर कितने दोहे हैं?
5. किस रस को 'रसराज' कहा जाता है?

टिप्पणी

रीतिकालीन युग के कवियों की दृष्टि इतनी व्यापक एवं भावनाएं उद्दाम नहीं रही। इस काल का कवि मानवीय, सामाजिक एवं राष्ट्रीय समस्याओं से मुंह मोड़कर अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करना ही अपना कर्तव्य समझने लगे इसी कारण इस काल के कवियों को दरबारी कवि कहा जाने लगा। यह भारतीय संस्कृति के कवियों, ज्ञानियों एवं ऋषियों की परंपरा नहीं रही थी। जिस संस्कृति में कवियों एवं मनीषियों ने ज्ञान की आराधना को ठुकराकर अपनी अंतरआत्मा की अनुभूतियों को महत्व दिया था, उसी समाज, उसी संस्कार के कवियों ने इस काल में अपने आश्रयदाताओं को प्रसन्न करना ही अपना चरम उद्देश्य बना लिया और अपने मान–सम्मान को भुलाकर भाटों की भांति उनकी विलासिता को तुष्ट करने के लिए कामुक शृंगारिक रचनाओं की सृष्टि करने लगे। संभवतः यह मुगल–संस्कृति के शासक की देन थी, जिसने संपूर्ण समाज को, यहां तक कि बुद्धिजीवियों को भी विलासिता के दलदल में झोंक दिया था। इस प्रवृत्ति का प्रथम महत्वपूर्ण कवि विद्यापति को माना जाता है, जिनका शृंगारिक रचनाओं ने न केवल रीतिकालीन विभिन्न राजाओं एवं सामंतों को, अपितु कवियों को भी अपनी विलासिता की धारा में प्रवाहित कर दिया, जबकि भक्तिकालीन कवियों पर उनका प्रभाव इसके ठीक विपरीत पड़ा ओर उन्होंने उन्हें भक्त की दृष्टि से देखा। रीतिकालीन कवियों की दृष्टि यद्यपि संकुचित हो गई थी और उनकी अनुभूतियों की सीमा नायिका के अंग सौंदर्य, कामुकता एवं विलासिता के भावों तक ही सीमित हो गई थी, तथापि इस काल में काव्य कला का विकास अपनी चरम सीमा पर था। इसमें अपने पूर्ववर्ती काव्य की अपेक्षा अनुभूति, सूक्ष्मता के काव्य में कुछ विशेष प्रकार के गुण परिलक्षित होने लगे, जो इसे भक्तिकाल के काव्य से पृथक करके एक भिन्न काव्यधारा के रूप में प्रतिष्ठि कर गए। इन्हीं विशेष गुणों के आधार पर इस काल के काव्य को रीतिकालीन काव्य कहा जाता है। दरबारी कवि अपने आश्रयदाताओं की महिमाओं का गुणगान करना, उनकी विलासिता, भौतिकता व शृंगार के दोनों पक्षों का ही वर्णन करने में व्यस्त रहता था। बिहारी ने भी अपनी कलम के द्वारा अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा को रेखांकित किया है। दरबारी कवियों की संस्कृति में बिहारी के स्थान को निम्न प्रकार से समझा जा सकता है–

आश्रयदाता का मनोरंजन– रीतिकालीन कवियों का एकमात्र उद्देश्य अपने आश्रयदाताओं का मनोरंजन करना होता था, इसलिए इस काल के काव्य में कवि की व्यापक उद्दाम दृष्टि या भावनाओं का अभाव मिलता है। उनके काव्य की अनुभूति स्थूल सौंदर्य चित्र एवं भौतिक स्तर के प्रणय केलि निरूपण तक ही सीमित रही है। बिहारी के काव्य में भी व्यापक दृष्टि का अभाव मिलता है। इसमें भी किसी उद्दाम भावों की गहनता के दर्शन नहीं होते। कवि की संपूर्ण अनुभूति भौतिक सौंदर्य, प्रेम व्यवहार, कामुकता, विलासानुभूति तक ही सीमित है–

दीठ्यौ दै बोलति, हँसति पोढ़–विलास अपोढ़।
त्यौं त्यौं चलत न पिय–नयन छकए छकी नवोढ़।।

× × ×

निपट लजीली नवल तिय बहकि बारुनी सेइ।
त्यौं–त्यौं अति मीठी लगति, ज्यौं–ज्यौं ढीठ्यौ देइ।।

टिप्पणी

बिहारी ने भक्ति एवं नीति के दोहों की भी रचना की है। इनके आधार पर बहुत से विद्वान संभवतः उपर्युक्त मत से सहमत नहीं होंगे, परंतु इस संदर्भ में हमारा कहना है कि 'बिहारी सतसई' एक श्रृंगार प्रधान रचना है, इसलिए काव्य की मूल प्रवृत्तियों का निर्धारण श्रृंगारिक दोहों के आधार पर ही किया जा सकता है। दूसरी महत्वपूर्ण बात इस संदर्भ में यह है कि बिहारी की सतसई के भक्ति एवं नीति संबंधी दोहों में भी किसी गहन अनुभूति या भाव की उद्दामता के दर्शन नहीं होते। हां उनके सभी दोहों की व्यंजना अवश्य अद्‌भुत है–

चलित जजित, श्रम–स्वेदकन–कलित, अरुन मुख लैं न।
वन–विहार थाकी तरुनि–खरे थकाए नैन।

× × ×

नासा मोरि, नचाइ जे करी कका की सौंह।
काँटे सी कसकैं लि हिय गड़ी कँटीली भौंह।।

विलासिता– रीतिकालीन काव्य की प्रमुख प्रवृत्तियों में एक उसकी श्रृंगारिकता है, किंतु यह श्रृंगारिकता भक्तिकालीन काव्य की भांति शांत रस के माधुर्यपूर्ण अलौकिक भावों का आह्लाद उत्पन्न करने वाली नहीं है। इस श्रृंगारिकता में कामुकता, विलासिता एवं अश्लीलता के दर्शन होते हैं। बिहारी के काव्य में यह विलासिता एवं कामुकता चरम सीमा पर है। इन्होंने जपयपुर के शीशमहल में होने वाली विलासिता से लेकर ईख, सन, अरहर आदि के खेतों तक में होनेवाली प्रणय संबंधी कामुकता का वर्णन किया है, जो अश्लीलता की सीमा को छूता हुआ दृष्टिगोचर होता है–

चलत देत आभारु सुनि उहीं परोसहिं नांह।

लसी तमासे की दृगुन हांसी आंसुनु मांह।।

× × ×

मोहि करत कत बावरी, करैं दुराउ रूरै न।

कहे देत रंग राति के रंग–निचुरत से नैन।

भौतिकता– रीतिकालीन काव्य की एक प्रमुख विशेषता उसकी भौतिकता है। रीतिकालीन काव्य अभिव्यक्ति की सूक्ष्मता, गहनता, मनोविश्लेषण की अद्‌भुत क्षमता से युक्त रहते हुए भी गहन मानवीय संवेदनाओं एवं अनुभूतियों की अभिव्यक्ति करने में असफल रहा है। इस काल के काव्य में नायक–नायिका का सौंदर्य, प्रेम भाव, अन्य मानवानुभूति संबंधी भाव, प्रकृति सौंदर्य आदि का चित्रण स्थूल भौतिक रूप में मिलता है। इसमें

भक्तिकालीन गंभीरता एवं सूक्ष्मता का अभाव है। बिहारी के काव्य में भी इसी प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। उनके दोहों में मानव मन के अंतर्मन से उठने वाले उद्दाम भावों एवं सौंदार्यानुभूति की गहनता का अभाव है–

टिप्पणी

गड़ी कुटुम की भीर मैं रही बैठि दै पीठि।
तऊ पलकु परि जाति इन, सलह हँसौ ही डीठि।।

विस्तृत शृंगार–वर्णन– रीतिकालीन कवियों ने शृंगार के संयोग, वियोग, मान, केलि, प्रणय, स्वभाव, गुण, यौवन की अनुभूतियों आदि का विस्तृत वर्णन किया है। इस काल में कवियों ने नायिका के सौंदर्य, व्यवहार, मुद्राओं हाव–भाव आदि के आधार पर तीन सौ से ऊपर भेद किये हैं। काव्य में स्वकीया, परकीया एवं सामान्य नायिका भेद पहले से विद्यमान थे, परंतु रीतिकाल के कवियों ने इसका वर्गीकरण करके इसके सैकड़ों भेद–प्रभेद स्थापित कर दिए। इन्होंने नारी के शारीरिक सौंदर्य, कामुक छवि, विलासितापूर्ण मुद्राओं आदि का विस्तृत वर्णन किया है। बिहारी की 'सतसई' में भी रीतिकाल की यह प्रवृत्ति अपने चरमोत्कर्ष में परिलक्षित होती है। इन्होंने नायिकाओं का वर्गीकरण तो नहीं किया है, किंतु नायिकाओं की विशिष्ट मुद्राओं एवं हाव–भावों के मादक चित्रों का अंकन इसी प्रवृत्ति के अनुरूप किया है–

गह्यौ अवौलौ बोलि ज्यौ आपहिं पठै बसीठि।
दीठि चुराई दुहुनु की लखि सकुचौंही दीठि।।

झुकि झुकि झपकौ है पलनु, फिरि फिरि जुरि, जमुहाइ।
बीदि पिआगम, नींद–मिसि, दी सब अली उठाइ।।

नख–शिख वर्णन– रीतिकालीन काव्य की एक प्रमुख विशेषता नायिका के रूप–सौंदर्य का चित्रांकन करते समय उसके पैरों के नाखून से लेकर चोटी तक के सौंदर्य की मादक अभिव्यक्ति भी रही है। रीतिकालीन शृंगारिक कवियों की यह मनोवृत्ति उनकी रूपलिप्सा या आश्रयदाता को प्रसन्न करने हेतु की गई कामुक अभिव्यंजना की परिचायक है। इस युग का कोई भी शृंगारिक कवि इस मनोवृत्ति से अछूता नहीं रहा। नख–शिख वर्णन में अपनी काव्यात्मक प्रतिभा का प्रदर्शन करने हेतु इन्होंने तत्कालीन सामाजिक नैतिकता के बंधन को भी तोड़ दिया है। बिहारी इस दिशा में अपने युग के अन्य कवियों से भी चार कदम आगे हैं। इन्होंने नख–शिख वर्णन में सहज सौंदर्य के साथ–साथ इंद्रियोत्तेजकता एवं कामुकता का प्रबल भाव भी समाविष्ट कर दिया है–

नख–रूचि–यूरनु डारि कै, ठगि, लगाइ, निज साथ।
रह्यौ राखि हठि लै गए हथाहथी मनु हाथ।।
छूटे छुटावत जगत तैं सटकारे, सुकुमार।
मनु बाँधत बेनी–वैधे नील छबीले वार।।

टिप्पणी

संयोग वर्णन– रीतिकाल के काव्य की प्रमुख प्रवृत्ति श्रृंगार भाव की अभिव्यक्ति रही है। श्रृंगार भाव में भी इस काल के कवियों का मन सर्वाधिक संयोग श्रृंगार के चित्रण में लगा है। संयोग श्रृंगार में विलासिता एवं कामुकता के भावों की पुष्टि अधिक होती है। संभवतः इसी कारण रीतिकालीन कवियों ने इसके अंतर्गत नायिका के रूप, हाव–भाव, हास–परिहास, नायक के साथ उपवन में आंख मिचौनी, अभिसार, मिलन, केलि आदि का चित्रण अत्यंत रमणीयता से किया है। इस काल के कवियों ने प्रणय संकेतों, मुद्राओं नयन संकेतों, केलि की क्रीड़ाओं आदि के ऐसे–ऐसे अद्‌भुत तरीकों का वर्णन किया है जिन्हें देखकर विस्मित हो जाना पड़ता है। ऐसा प्रतीत होता है कि इस काल के कवि प्रतिपल इन्हीं मुद्राओं, अदाओं एवं प्रणय अभिव्यक्ति के नये–नये ढंगों को ढूंढने में लगे रहते थे। बिहारी भी इसी प्रवृत्ति से ग्रसित थे। उनकी 'सतसई' में संयोग श्रृंगार के इस प्रकार के चित्रों का प्राचुर्य है–

बिछुरैं जिए, संकोच इहिं बोलत बनत न बैन।
दोऊ दौरि लगे हियै किए लजौहें नैन।।

मैं मिसहा सोयौ समुझि, मुँह यूम्यौ ढिंग जाइ।
हँस्यौ, खिसानी, गल गह्यौ, रही गरै लपटाई।।

वियोग वर्णन– रीतिकालीन काव्य में वियोग श्रृंगार की भी विभिन्न दशाओं का हृदयगाही मर्मस्पर्शी चित्रण प्राप्त होता है। बिहारी ने यद्यपि वियोग श्रृंगार की रचना में संयोग श्रृंगार की अपेक्षा कम ही रुचि ली है, तथापि उन्होंने वियोग की सभी दशाओं का सुंदर एवं मनोहारी चित्रण किया है। इनके वियोग–वर्णन के चारों प्रकारों–पूर्वराग, मान, प्रवास एवं करुणा के दर्शन होते हैं–

फिरि सुधि दै, सुधि द्याइ प्यौ, इहिं निरदई निरास।
नई–नई बहुरयौ, दई! दई उसासि उसाम।।

• आश्रयदाताओं की आलोचना

बिहारी ने अपने रचना कौशल के द्वारा सिर्फ अपने आश्रयदाताओं की प्रशंसा मात्र ही नहीं की, अपितु उन्होंने उनके अवगुणों को भी चित्रित किया है जो उनकी काव्य धर्मिता को प्रदर्शित करता है तथा उन्हें अन्य दरबारी कवियों से इतर करता है। यथा–

आगरा के शाही महल में शाहजहां के पुत्र जन्मोत्सव पर देश भर के महान कलाकारों, कवियों, संगीतशास्त्रियों आदि को आमंत्रित किया गया था। कवि बिहारी की असाधारण प्रतिभा से वहां उपस्थित सभी नरेश तथा विद्वान मंत्रमुग्ध हो गए जिसके परिणामस्वरूप राजाओं ने प्रसन्न होकर बिहारी के लिए वार्षिक वृत्ति नियत कर दी थी।

बिहारी ने जयपुर पहुंचने पर एक दोहे की मार से ही अपनी नयी रानी के प्रेम में आबद्ध महाराज जयसिंह को अन्तःपुर के घेरे से मुक्त किया, उसे लेकर सभी आलोचकों

ने प्रायः एक–सी बात कही है। यह घटना यदि सच हो तो भी इससे प्रमाणित यही होता है कि प्रारंभ से ही बिहारी की प्रकृति शृंगारी थी। उस दोहे को लीजिए–

नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं विकासु इहिं काल।
अली कली ही सौं बंध्यौ, आगै कौन हवाल।।

इस दोहे का आशय यह नहीं है कि रज और रसहीन कली से ही जो भौंरा इतना बंधा हुआ है, अर्थात जो नायिका की यौवन–प्राप्ति से पहले ही उसके रूप पर मुग्ध होकर कर्तव्य–ज्ञान भूल गया है, उसकी आगे क्या दशा होगी; वरन यह कि जो समय से पूर्व ही अपने आकर्षण का परिचय दे रहा है वह रस का समय आने पर अपने अनुराग की दृढ़ता और भी प्रमाणित करेगा। इस प्रकार यह दोहा बोधोदय के लिए न लिखा जाकर रसोदय के उद्देश्य से ही लिखा गया होगा।

कहा जाता है कि अन्योक्ति गर्भित उपदेश से मिर्जा जयसिंह को प्रबोध हुआ और उनका प्रेमोन्माद उतर गया। इस स्थिति का वर्णन एक विद्वान आलोचक ने इस प्रकार किया है–"उनकी (राजा जयसिंह की) आंखें खुल गईं और आगा–पीछा सोचने की क्षमता लौट आई। तत्काल ही अंजलि भर स्वर्ण मुद्राएं देकर उन्होंने बिहारी का सत्कार किया और उनकी प्रशंसा करते हुए प्रति दोहा एक स्वर्ण मुद्रा पारितोषिक स्वरूप देने का वचन देकर इस प्रकार के अन्य दोहों के रचने की प्रेरणा दी।"

वस्तुतः बिहारी सतसई की रचना किए जाने के मूल में यही कारण क्रियाशील रहा है। बिहारी ने जयसिंह की आज्ञा से ही सतसई का प्रणयन किया था–

"हुकुम पाइ जयसिंह कौ, हरि राधिका–प्रसाद,
करी बिहारी सतसई, भरी अनेकन स्वाद।"

बिहारी रीतिकाल के प्रमुख कवियों में से थे किंतु वे बहुत–सी दृष्टियों से रीतिकालीन कवियों से पृथक थे। बिहारी का युग सामंतों और राजाओं के प्रश्रय में चलने वाला युग था। उस युग का सामाजिक जीवन उचित–अनुचित का विवेक भुलाकर धन वैभव का संचय करने का युग था। बिहारी के जीवन में भी अनेक ऐसे अवसर आए जब वे अपने आश्रयदाता जयसिंह की अंधी प्रशंसा करके अपार धन और संपत्ति जुटा सकते थे किंतु उन्होंने जीवन के 'सनातन मूल्यों' की उपेक्षा नहीं की। एक स्थल पर वे कहते हैं–

"मित्र न नीति गलित है, जो रखिये धन जोरि।"

अभिप्राय यह है कि वे रीतिकालीन कविता की मूलधारा से तनिक हटकर काव्य सृजित कर रहे थे।

बिहारी को अपने हिंदुत्व पर गर्व था। जब राजा जयसिंह ने महाराजा शिवाजी को (मुगल शासकों की इच्छापूर्ति के लिए) पराजित किया था तो बिहारी ने राजा जयसिंह की प्रशंसा की अपेक्षा निंदा करते हुए लिखा था–

"स्वारथु सुकृत न, स्त्रमु बृथा, देखि विहंग विचारि।
बाज पराए पानि पर तुं पच्छीनु न मारि।"

इस दोहे में बिहारी ने अन्योक्ति के माध्यम से राजा जयसिंह पर व्यंग्य किया है। उनके इस दोहे ने निश्चय ही राजा जयसिंह को सजग कर दिया था। राजा जयसिंह ने बाद में शिवाजी से संधि वार्ता भी करनी चाही थी। यह बात दूसरी है कि मुगल शासक औरंगजेब ने अपने निहित स्वार्थों के कारण यह संधि वार्ता कभी नहीं होने दी थी।

टिप्पणी

4.4 'सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर' की कसौटी पर बिहारी का काव्य

"सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर।
देखन में छोटे लगैं, घाव करै गंभीर।।

अर्थात सतसई के दोहे नावक अर्थात शिकारी के बाणों की तरह हैं जो देखने में बहुत छोटे लगते हैं किंतु लक्ष्य संधान की कसौटी पर पूरी तरह खरे उतरते हैं। कवि ने 'श्रृंगार में सागर भरने' की उक्ति चरितार्थ की है। उनके एक–एक दोहे में भावों की अपरिमित संपदा बिखरी पड़ी है।

बिहारी के एक ही मुक्तक काव्य ग्रंथ ने उनकी काव्य प्रतिभा का वह प्रकाश फैलाया, जिसने उन्हें लोकप्रियता के शिखर पर पहुंचा दिया। इनके दोहे हिंदी काव्य जगत के सभी मुक्तकों से अधिक लोकप्रिय हैं और अपनी रचना के कई शताब्दियों के बाद भी जन–सामान्य में प्रसिद्ध है। वे कौन से तत्व हैं जिन्होंने उनको इतनी लोकप्रिसिद्धि दिलाई? इस प्रश्न पर विचार करने के लिए बिहारी के दोहों पर समीक्षात्मक दृष्टि डालना उचित होगा–

(क) **सफल मुक्तक**– बिहारी के दोहे उत्कृष्ट कोटि के मुक्तक हैं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल कहते हैं– "मुक्तक कविता में जो गुण होना चाहिए वह बिहारी के दोहों में अपने चरमोत्कर्ष पर पहुंचा है, इसमें कोई संदेह नहीं। जिस कवि में कल्पना की समाहार शक्ति के साथ–साथ भावों की समाहार शक्ति जितनी अधिक होगी, उतना ही वह मुक्तक रचना में सफल होगा। यह क्षमता बिहारी में पूर्ण रूप से विद्यमान थी। इसी से वे दोहे के ऐसे छोटे छंदों में शब्दों में इतना रस भर सके हैं। इनके दोहे क्या हैं, रस के छोटे–छोटे छींटे हैं।"

बिहारी के दोहों में इस समाहार शक्ति के कारण अद्‌भुत रस–व्यंजना हुई है, जो तीव्र तीक्ष्ण एवं मार्मिक अनुभूतियों से युक्त है। उनके दोहों की यही रस–व्यंजना उन्हें महान कवि के रूप में प्रतिष्ठित करती है। दोहों जैसे छोटे छंद में अपने भावों की यह चमत्कारिक रस–व्यंजना बिहारी के दोहों में ही प्राप्त होती है–

'अपनी प्रगति जांचिए'

6. हिंदी साहित्य में किस काल को 'स्वर्ण युग' की संज्ञा दी गई है?
7. बिहारी की श्रृंगार प्रधान रचना कौन–सी है?
8. बिहारी का युग किसके प्रक्षय में चलने वाला युग था?

हरि–छवि–जन जब तै परे, तब तैं छिनु बिछुरैं न।
भरत, ढरत, बूड़त, तरत, रहत घरी लौं नैन।।

टिप्पणी

(ख) **अनुभावों का विधान–** बिहारी की रस–व्यंजना का पूर्ण वैभव उनके अनुभावों के विधान में दिखाई देता है। इस विधान में इनकी कल्पना की मधुरता झलकती है। इस मघुरता के कारण इनके दोहों की रस–निष्पत्ति अत्यंत तीव्र हो उठती है। अनुभावों एवं भावों की ऐसी सुंदर योजना अन्य किसी कवि में दृष्टिगोचर नहीं होती–

ज्यौं ज्यौं पटु झटकति, हठति, हँसति, नचावति नैन।
त्यौं त्यौं निपट उदारहूँ फगुवा देत बनै न।।

ज्यौं ज्यौं पावक–लपट सी तिय हिय सौ लपटाति।
त्यौं त्यौं छुही गुलाब सै छतिया अति सियराति।।

(ग) **उत्कृष्ट संयोग वर्णन–** बिहारी के दोहों में श्रृंगार के संयोग–पक्ष का वर्णन, भावों की सुकुमारता के साथ अत्यंत सजीव रूप में हुआ है। इसमें मधुरता, सौंदर्य, सुकुमारता, मार्मिकता एवं मादकता का भाव एक–साथ प्रस्फुटित होता है–

निपट लजीली नवल तिय बहकि बारूनी सेइ।
त्यौं त्यौं अति मीठी लगति, ज्यौं ज्यौं ढीठ्यौ देई।।

सरस कुसुम मँडरातु अलि, न झुकि झपटि लपटातु।
दरसत अति सुकुमारू तनु, परसत मन न पत्यातु।।

(घ) **रस विधान–** बिहारी के दोहों में अनुपम रस योजना के दर्शन होते हैं। इसमें आरंभ से लेकर अंत तक संपूर्ण रस विधान रीतिबद्ध है। इन दोहों में श्रृंगार रस के स्थाई भाव 'रति' से लेकर संपूर्ण आलंबन एवं उद्दीपन विभाव, रोमांच, स्वेद, कंप, प्रेमालाप आदि विविध कायिक, वाचिक एवं मानसिक अनुभाव, उग्रता, मरण जुगुप्सा के अतिरिक्त सभी संचारी भावों आदि का वर्णन हुआ है–

रनित भृंग घंटावली, झरति दान मधु–नीरू।
मंद मंद आवतु चल्यौं कुंजरू कुंज–समीरू।।

(ङ) **मार्मिकता–** बिहारी के दोहों की लोकप्रियता का एक अन्य कारण उसकी मार्मिकता है। इनमें श्रृंगार भावना, भक्ति एवं नीति संबंधी विषयों की अत्यंत स्वाभाविक एवं मार्मिक भाव–व्यंजना हुई है–

लाल तुम्हारे रूप की, कहौ, रीति यह कौन।
जासौं लागत पलकु दृग, लागत पलक पलौ न।।

(च) **विलासिता–** ऐसा देखा जाता है कि भक्ति–भावना, मानवीय संवेदना, आदर्श की भावना, ज्ञान भावना आदि की गहन भावाभिव्यक्ति की ओर मानव मन श्रृंगारिक

भावों की अपेक्षा कम उन्मुख होता है। बिहारी के दोहों की लोकप्रियता का एक मुख्य कारण उसमें व्याप्त शृंगार रस की कामुकतापूर्ण विलासिता की अभिव्यक्ति भी है, जो दोहों के लघु चमत्कारिक स्वरूप में जन–जन के आकर्षण का केंद्र बन गई है–

टिप्पणी

इक भीजै, चहलैं परैं, बुड़ै, बहै हजार।
किते न औगुन जग करै वै नपै चढ़ती बार।।

(छ) **उक्ति वैचित्र्य–** बिहारी के दोहों के विलक्षण उक्ति वैचित्र्य ने भी उनको लोकप्रिय बनाने में अपना प्रमुख योगदान दिया है। विचित्र प्रकार से कहा गया कोई कथ्य, मानव मन को शीघ्र अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है। बिहारी के उक्ति वैचित्र्य ने भी इनके दोहों के प्रति लोगों को आकर्षित किया–

कहत, नत, रीझत, खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरै भौन में करतु हैं, नैननु ही सब बात।।

(ज) **विलक्षणता एवं अलौकिकता–** बिहारी के दोहों में एक विशिष्टता है। इनके भाव तो विलक्षण हैं ही, इनकी कल्पना, अनुभूति, बिंब योजना भी अद्‌भुत है। इसके अतिरिक्त अनुभावों, हावों, अभिव्यक्ति, अलंकार योजना आदि में भी विलक्षणता विद्यमान है। इनके दोहों की लोकप्रियता का एक कारण यह भी है–

लटु वा लौं प्रभु–कर–गहैं निगुनी गुन लपटाई।
वहै गुनी–कर तैं छुटैं, निगुनीयै छै जाइ।।

(झ) **भावों की रमणीयता एवं कल्पना की समाहार–शक्ति–** बिहारी के दोहों में जिन भावों की अभिव्यक्ति की गई है, उनका विषय चाहे शृंगार, भक्ति या नीति जो भी हो, स्वरूप अत्यंत रमणीय है, जिसे उन्होंने अपनी कल्पना की समाहार शक्ति के माध्यम से केंद्रित करके तीव्र संवेदनात्मक अनुभूति से युक्त कर दिया है। इस समाहार शक्ति के कारण ही बिहारी अपने दोहों में व्यापक भावभूमि को समाविष्ट करने में सफल रहे हैं।

(ञ) **चमत्कार प्रदर्शन–** बिहारी ने अपने दोहों में रीतिकालीन कवियों की परंपरागत प्रवृत्ति के कारण जिस चमत्कार का प्रदर्शन किया है, वह अत्यंत अद्‌भुत एवं चमत्कृत कर देने वाला है। बिहारी के दोहों की लोकप्रियता का एक कारण यह भी है–

करे चाह सौ चुटकि के खरैं उड़ौं है मैन।
लाज नवाऐं तरफ तरत, करत खूँद सी नैन।।

(ट) **विषयों की विविधता–** उपर्युक्त विशेषताओं से युक्त बिहारी के दोहों की लोकप्रियता का एक अन्य कारण उनके विषयों की विविधता है। इन्होंने भक्ति, नीति, शृंगार, व्यावहारिकता, ज्योतिष आदि विभिन्न विषयों पर दोहों की रचना की,

टिप्पणी

जो विषयानुकूल अवसर पर अपनी अन्य विशेषताओं एवं लघुतम स्वरूप के कारण लोगों में लोकप्रिय होते चले गए—

चित पितमारक जोगु गनि भयौ, भयैं सुत, सोगु।
फरि हुलस्यौ, जिय जोइसी समुझै जारज—जोगु।।

इस विषय का विस्तारपूर्वक वर्णन आगे 'बिहारी की बहुज्ञता' विषय में करेंगे।

इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि बिहारी के दोहों की लोकप्रियता का कारण उनका लघु आकार, अभिव्यंजना की तीव्रता एवं विचित्रता, विलक्षण कल्पनाएं, अद्भुत अनुभूतियां, चमत्कारिक अलंकार योजना एवं उक्ति वैचित्र्य आदि के साथ—साथ विषयों की विविधता भी है। बिहारी के दोहों में अपने भावों एवं अनुभूतियों को केंद्रित कर सीधे मानव हृदय के मर्म पर आघात करने की क्षमता है। उन्हें इसी क्षमता के कारण सर्वाधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई है। कहा भी जाता है—

सतसैया के दोहरे, ज्यों नावक के तीर
देखन में छोटै लगै, घाव करै गंभीर।।

बिहारी के काव्य में इन सभी गुणों के समावेश के पश्चात भी अनेक विद्वानों ने इसके भाव की गहनता के अभाव की ओर इंगित करते हुए इसे सामान्य स्तर का काव्य ग्रंथ ही माना है। इन विद्वानों का कथन है कि निःसंदेह बिहारी एक महान कवि थे। उनकी काव्यात्मक प्रतिभा के प्रति किसी प्रकार का संदेह उत्पन्न करना अज्ञानता ही होगी, परंतु उनके दोहों में भावों की गहन मार्मिकता का अभाव है। विषय जो भी रहे हों, बिहारी उसके गहनतम सूक्ष्म अलौकिक भावों की अभिव्यक्ति करने में असमर्थ रहे हैं। उनके दोहों की भावाभिव्यक्ति सतही और पूर्णतः स्थूल है। वे नावक के तीर तो हैं और उनका घाव भी तिलमिला देने वाला है, किंतु उनमें मानव—हृदय की समस्त काव्यात्मक प्रतिभा अलंकार, समास, अनुभाव, सौंदर्य, हाव—भाव आदि को चमत्कारिक रूप में प्रस्तुत करने में ही नष्ट हुई है। उनके दोहों में हृदय को गहरे तक प्रभावित करने की क्षमता नहीं है।

4.5 बिहारी का काव्य—वैभव

कविवर बिहारी एक सजग सर्जक कलाकार हैं जो वचन भंगिमा में सिद्ध हस्त हैं। बिहारी के रीति काव्य के सर्वोच्च कवि के रूप में परिगणना किये जाने के मूल में उनकी उत्कृष्ट कला का भी पर्याप्त हाथ है। उनकी सौंदर्य चेतना को अनूठी बताते हुए डॉ. नगेंद्र के उद्‌गार हैं कि— "रीतिकाल के प्रतिनिधि कवि बिहारी की सौंदर्य चेतना का धरातल घनानंद और भक्त कवि सूर की तुलना में बहुत उदात्त एवं महान तो नहीं कहा जा सकता किंतु जिस वस्तुनिष्ठ सौंदर्य के सूक्ष्म अंकन एवं उसके वैविध्यपूर्ण निरूपण में बिहारी ने अपनी निपुणता का परिचय दिया है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।"

'अपनी प्रगति जांचिए'

9. शृंगार रस का स्थायी भाव क्या है?
10. बिहारी के दोहे किस छंद में लिखे गए हैं?
11. बिहारी के दोहों में किसकी अभिव्यक्ति अत्यधिक मात्रा में नहीं है?

टिप्पणी

बिहारी की ख्याति का एक कारण उनकी सूक्ष्माभिवेशी अंतर्दृष्टि रही है जिससे उन्होंने बड़े ही सूक्ष्म–कोमल और मधुर चित्र प्रस्तुत किए हैं। बिहारी की काव्य–कला के विवेचन से पूर्व हम इस प्रकार का एक चित्र देना चाहेंगे जिसमें वयः संधि को प्राप्त नायिका की झांकी प्रस्तुत की गई है–

"छुटी न सिसुता की झलक, झलकायौ जोबनु अंग।
दीपति देह दूहून मिल, दिपति ताफता–रंग।"

प्रस्तुत दोहे में बिहारी ने नायिका की वयः संधि कालीन शारीरिक दीप्ति के संदर्भ में ताफता अर्थात धूपछांही कपड़े का उपमान प्रस्तुत किया गया है। इस उपमान योजना की विलक्षणता यह है कि 'धूपछांह कपड़े में अरुण–श्यामल रंगों का कुछ ऐसा अनूठा मिलाव रहता है कि बड़ी से बड़ी सूक्ष्म दृष्टि वाले व्यक्ति के लिए भी यहां पर बताना मुश्किल हो जाता है कि अमुक स्थान अमुक क्षण में श्यामल रंग दीख पड़ता है और अमुक स्थल पर अमुक क्षण में अरुण रंग का आलोक चमकता है। उस मुग्ध नवयौवना के शरीर में कौमार्य एवं तारुण्य, घूपछांह तथा कपड़े की अनिर्वचनीय दीप्ति के समान अपनी झलक दिखला रहा है। यहां यह समझ लेना चाहिए कि शिशुता एवं यौवन की, एक अत्यंत जटिल ढंग से 'धूप–छांह' चमकने वाली दीप्तियों के निदर्शन में कवि ने उस नव–बाला की मानसिक दीप्तियों को तथा उन क्षण–क्षण बदलती आंतरिक चेतनाओं की मोहक मिलावट की ओर भी कलात्मक संकेत किया।

डॉ. दयाशंकर तिवारी के अनुसार, "यहां कवि की रूप सृष्टि करने वाली कल्पना उसके हृदय की परिचारिका बन गई है। काव्य द्राक्षासव को ऐसी मधुर कनक–कटोरियों 'सतसई–सागर' में निश्चय ही कोई कमी नहीं है। 'सतसई' के सौंदर्यलोक में सरस, मनमोहक चित्रों की एक चटकीली 'गैलरी' की अवतारणा हुई है जो 'नव–नागरी' के 'नवल–नेह' की सीमा से मर्यादित होने पर भी, बिहारी की सौंदर्यानुभूति की व्यापकता, विशदता, सूक्ष्मता एवं मार्मिक .... का मंजुल साध्य प्रस्तुत करती है।" वास्तव में, कविता और कामिनी का शृंगार बिहारी से बढ़ कर दूसरा कोई कलाकार नहीं कर सका।

4.5.1 भाव पक्ष

शृंगार– बिहारी की सतसई में संयोग और वियोग शृंगार की एक अनूठी व्यंजना हुई है किंतु वे शृंगार के संयोग पक्ष में जितने अधिक रमे हैं, उतने वियोग पक्ष में नहीं। संयोग शृंगार का निम्नांकित उदाहरण द्रष्टव्य है–

"मैं मिसहा सोयौ समुझि मुंह चूम्यो ढिंग जाई।
हंस्यौ खिसानी, गल गह्यौ रही गरै लपटाई।"

इसी प्रकार वियोग शृंगार का भी उदाहरण अवलोकनीय है–

"कर लै चूमि चढ़ाी सिर उर लगाई भुज भेंटि।
लहि पाती पिय की लखति वांचति धरति समेटि।।"

टिप्पणी

बिहारी का संयोग वर्णन जितना सफल हुआ है उतना वियोग वर्णन नहीं। विरह जीवन की एक गंभीर स्थिति है। इसका जब तक किसी साहित्यकार को अनुभव न हो वह इसका मार्मिक वर्णन नहीं कर सकता। यही बात कवि बिहारी के साथ हुई है। उनका मन वियोग वर्णन में रमा नहीं है वरन वे खिलवाड़ और पहेलियां बुझाने में ही लग गए हैं। यही नहीं अनेक अत्युक्ति पूर्ण मंजमून बांधने का दोष भी उनके विरह वर्णन में आ गया है। एक उदाहरण दर्शनीय है–

"इत आवति चलि जात उत चली छःसातक हाथ।
चढ़ि हिंडोरे सी रहै लगी उसासन साथ।।"

इन्हीं बातों को देखकर ही शुक्ल जी ने लिखा है– "भावों का बहुत उत्कृष्ट और उदात्त स्वरूप बिहारी में नहीं मिलता।" दिनकर जी का यह कथन भी इस दृष्टि से उल्लेखनीय है– "बिहारी के दोहों में न तो कोई बड़ी अनुभूति है न कोई ऊंची बात सिर्फ लड़कियों की कुछ अदाएं हैं। मगर कवि ने उन्हें कुछ ऐसे ढंग से चित्रित किया है कि आज तक रसिकों का मन कचोट खाकर रह जाता है जो लोग कविता में ऊंची अनुभूति या ज्ञान की बड़ी–बड़ी बातों की तलाश में रहते हैं, बिहारी की कविताओं में उन्हें अपने लिए चुनौती मिलेगी।"

अनुभव विधान– बिहारी के दोहों का अनुभव विधान अत्यंत प्रभावपूर्ण तथा रसाभिव्यंजक है। इन्होंने हावों और भावों की ऐसी सुंदर योजना की है कि कोई भी इनका समकालीन शृंगारी कवि इनकी समता नहीं कर सका। इनके वर्णन को पढ़ कर ऐसा प्रतीत होता है मानो इन्होंने सजीव हाव–भाव भरी मूर्तियां तैयार कर दी हों। एक उदाहरण अवलोकनीय है–

बतरस लालच लाल की मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै भैंहनि हंसै देन कहै नटि जाय।।

भक्ति और नीति– बिहारी सतसई में प्रमुखता तो शृंगार की है परंतु भक्ति और नीति के दोहों की भी सुंदर अभिव्यक्ति हुई है। बिहारी भक्त कवि नहीं थे इसलिए इन्होंने निर्गुण, सगुण, नाम स्मरण, प्रतिबिंबवाद, अद्वैतवाद आदि की महिमा मुक्त कंठ से गायी है। बिहारी की दृष्टि राधा की तन द्युति पर टिकी रहती है, मन तक नहीं जा पाई है। इसी प्रकार नीति की उक्तियां भी मात्र बाह्य कवच है (जिन्हें उन्होंने बिहारी सतसई में अनेक स्वाद भरने के लिए प्रयोग किया है)। इनकी भक्ति नीति पूर्ण उक्तियों के उदाहरण द्रष्टव्य है–

भक्ति – *पतवारी माला पकरि और न कुछ उपाउ।*
तरि संसार पयोधि की, हरि नाम करि नाउ।।

नीति – *दुसह दुराज प्रजानु को, क्यों न बढ़ै दुःख द्वन्द्व।*
अधिक अंधरौ जग करत मिलि मावस रविचन्द।।

उक्ति वैचित्र्य विनोद– किसी बात को कहने का बिहारी का अपना निराला ढंग है। वे अपनी प्रतिभा शक्ति के माध्यम से एकदम नई बात उपस्थित कर देते हैं। बिहारी ने

टिप्पणी

शब्दों को इतना नापा–तोला है कि अनेक स्थान पर पर्यायवाची शब्दों को रख देने से अर्थ का अनर्थ हो जाता है और दोहे का संपूर्ण काव्य–सौंदर्य मारा जाता है। इस संबंध में उनकी यह उक्ति दर्शनीय है–

"दृग उरझत, टुटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परित गांठ दुरजन हिए, दई नई यह रीति।"

इसी प्रकार उनकी उक्तियों में कहीं पानी पीकर प्यास नहीं बुझती है जिससे बिहारी के दोहे खरादे हुए, स्वर्ण जटित रत्नों के समान काव्य प्रभा से मंडित हो उठे हैं।

बिहारी ने बहुत–सी उक्तियां सज्जन, दुर्जन, कला–प्रेम और मनुष्य के स्वभाव को लक्ष्य करके कही हैं जो कि बड़ी ही सरल, सहज और स्वाभाविक बन पड़ी है–

"बड़े न हूजै गुनुन बिनु विरद बड़ाई पाइ।
कहत धतुरे सौं कनकु गहनौ गढ़ी न जाइ।।"

प्रकृति चित्रण– प्रकृति सौंदर्य का वर्णन कवि बिहारी ने छिट–पुट रूप से ही किया है। इनका प्रकृति वर्णन चित्रांकन और नाद सौंदर्य की दृष्टि से अनुपम बन पड़ा है। बिहारी ने प्रकृति को मनुष्य स्वभाव से बहुत कुछ प्रभावित माना है, अतः उन दोनों का चित्रण उन्होंने आमने–सामने रखकर किया है। उदाहरणार्थ–

"रनित भृंग घंटावली झरति दान मधु नीर।
मद–मंद आवतु चल्यौ कुंजरू कुंज समीर।
बैठि, रही अति सघन बन पैठि सदन तन माह।
देखि दुपहरी जेठ की छांहौं चाहती छांह।"

4.5.2 कला पक्ष

बिहारी की अभिव्यक्ति के प्रसाधनों अथवा काव्य–कला की चर्चा करते समय जो बातें प्रमुख रूप से हमें आकर्षित करती हैं, उनमें ध्वनि चित्र, वर्ण और अलंकार योजना सबसे अधिक महत्वपूर्ण स्थान रखती है। इसके अतिरिक्त है– उक्ति वैचित्र्यगत चमत्कार भी बिहारी सतसई में सर्वत्र दृष्टिगत होता है। बिहारी काव्य कला के चतुर शिल्पी थे, अतः उनके काव्य में इस प्रकार की अनेक शिल्पगत सूक्ष्मताएं विद्यमान हैं। उनकी शिल्पगत विशेषताएं निम्नांकित शीर्षकों के अंतर्गत विभक्त की जा सकती हैं–

उत्कृष्ट पद संघटना– बिहारी मुक्तककार होने के नाते छोटे से दोहा छंद में कथ्य को बड़े कौशल के साथ ही भर सकते थे जबकि 'रीति' में विश्वास रखने के कारण भी वे 'पद संघटना' पर बल देते थे। बिहारी के काव्यत्व का यह प्राण तत्व है कि वे कितने कौशल से शृंगार रसोचित माधुर्य व्यंजक पदों की नियोजना करके विलक्षण रमणीयता उत्पन्न करने में सफल हुए हैं। कुछ उदाहरणों से इस कथन की पुष्टि की जा सकती है–

"जंघ जुगल लोइन निरे करे मनौ विधि मैन।
केलि–तरून दुख दैन ए, केलि–तरून सुख दैन।।"

इसी प्रकार अन्यत्र एक दोहे से सानुप्रासिक पद योजना द्वारा माधुर्य की वृद्धि की गई है–

टिप्पणी

"रस–सिंगार–मंजनु किए खंजनु भंजनु दैन।
अंजून रंजन हूं बिना कंजनु गंजनु नैन।।"

भावानुरूप शब्द चयन की दृष्टि से तो बिहारी की लेखनी का लोहा मानना पड़ता है। नीचे के दोहे में कुछ ही शब्दों से माधुरी की सृष्टि करने का कौशल देखा जा सकता है–

"ज्यौं–ज्यौं आवति निकट निसि, त्यौं–त्यौं खरी उताल।
झमकि झमकि रहलै करै लगी स्वहटै बाल।।"

समास पद्धति परक कसाव– बिहारी की मुक्तक कला के प्रसंग में यह बात अक्सर कही जा सकती है कि बिहारी अत्यंत लघु आकारीय छंद में अपने कथ्य को इतना कूट–कूट कर भरते हैं कि उसमें समास पद्धति का सहारा लेना पड़ता है। यही समास शैली अभिव्यक्तिगत कसाव लाने में समर्थ रहती है। बिहारी की काव्य कलात्मक उपलब्धि में भाषा एवं शैली की सामासिकता का इसलिए भी महत्व है कि भावगत तीव्रता एवं संक्षिप्तता के कारण प्रखर आवेग सर्वत्र सुरक्षित रहता है, जिसके आधार पर उनके दोहों में 'गागर में सागर भरने' की बात कही गई है या उनके दोहों का 'नावक के तीर' कहकर देखने में छोटे लगने पर भी गहरा घाव करने वाला कहा गया है। यह सब इसी समास शैली के कारण संभव हुआ है। अनेक संदर्भों को एक–एक शब्द मात्र से व्यंजित करने की कला में बिहारी समूचे हिंदी साहित्य में अपना प्रतिद्वंद्वी नहीं रखते। एक–दो उदाहरण से इस सत्य की पुष्टि की जा सकती है–

"मैं मिसहा सोयौ समुझि, मुंह चूम्यौ ढिंग जाइ।
हंस्यौ, खिसानी गल गह्यौ, रही गरै लिपटाई।।"

इसी प्रकार के दोहों के देखकर डॉ. रमाशंकर तिवारी को बिहारी की इस विशेषता के विषय में निम्न मत व्यक्त करना पड़ा है– "बिहारी की इस समास पद्धति का रहस्य यह है कि उनकी रचना कहीं से शिथिल अथवा लचर नहीं होने पाई है। उसमें एक कसावट है, एक चुस्ती है, एक सजगता है, जो भाव को प्रत्येक प्रसंग में चमत्कृत कर देती है।"

बिहारी की वह समास शैली श्लेष एवं रूपक अलंकारों की सहायता से भी जुटाई गई है। दोनों अलंकारों के उदाहरणों से इस कथन की पुष्टि हो जाएगी। श्लिष्ट पद योजना द्वारा उत्पन्न कसावट देखिए–

"चिरजीवौ जोरी जुरै, क्यों जन सनेह गंभीर।
को घटि ये बृजभानुजा वे हलधर के बीर।।"

एक अन्य दोहे में सांगरूपक की योजना द्वारा उत्पन्न कसावट अवलोकनीय है–

"खौरि पनिच, भृकुटी–धनुष, बीधकु–समरू तजि कानि।
हनतु तरून–मृग तिलक–सुर कमान भरि तानि।।"

टिप्पणी

वैदग्ध्य की नियोजना– बिहारी के काव्य में वाग्विदग्धता एवं क्रियाविदग्धता के उदाहरणों के आधार पर कवि की कल्पना कुशलता का परिचय प्राप्त हो जाता है। उदाहरणार्थ बिहारी के काव्योद्यान में प्रवेश करते ही हमें मंगलाचरण के रूप में जिस प्रथम पुष्प के दर्शन होते हैं, उसमें भक्ति–भावना की सुंगध, शृंगार भावना की कोमलता एवं सरसता तथा काव्य के कला–पक्ष की कारीगरी, ये तीनों गुण एक ही स्थान पर एकत्र मिलते हैं–

"मेरी भव–बाधा हरौ, राधा नागरि सोई।
जा तन की झांई परै, श्यामु हरित दुति होइ।।"

अर्थात हे चतुर राधा, मेरे जन्म–मरण संबंधी अथवा सांसारिक दुखों को दूर करो। तुम्हारे शरीर की आभा के आगे कृष्ण का सौंदर्य भी फीका पड़ जाता है अथवा तुम्हारी छाया–मात्र को देखने से ही श्रीकृष्ण जी आनंद–मग्न हो जाते हैं अथवा तुम्हारे शरीर के पीत वर्ण की आभा पड़ने से नील वर्ण वाले श्रीकृष्ण हरित वर्ण के हो जाते हैं।

काव्य में वचन–भंगी का बहुत महत्व होता है, जबकि बिहारी की लेखनी की कुशलता के कारण ऐसे स्थल अत्यंत व्यंजक बन गए हैं। एक ही उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है–

"मानहु विधि तन अच्छ छवि स्वच्छ राखिवै काज।
दृग–पग पोंछन कौ करे भूषण पायंदाज।"

वाक्वैदग्ध्य उन स्थलों पर और निखर कर सामने आता है जहां कवि ने विरोधमूलक कथनों की योजना की है–

"रही लटू ह्वै लाल, हो लखि वह बाल अनूप।
कितौ मिठास दयौ दई इते सलौने रूप।"

कवि की भाव योजना उसके द्वारा किए गए हाव और अनुभावों के चित्रण में सफल रूप से अभिव्यंजित हुई है। नायिका नायक से वार्तालाप करने का साधन ढूंढ़ती है। विचार करने पर वह नायक की मुरली छिपा देती है। नायक के पूछने पर वह कहती है कि "मैंने नहीं छिपाई।" पर उसकी हंसी से प्रकट होता है कि मुरली उसके ही पास है। दो प्रेमी एवं विनोदशील सरस हृदयों का पारस्परिक वार्तालाप को कवि ने बड़े सुंदर शब्दों में व्यक्त किया है और रसिकेंद्र बिहारी ने हाव–भावपूर्ण चित्र–सा खींच दिया है–

"बतरस–लालच लाल की मुरली धरी लुकाई।
सौंह करै भौंहनि हंसै दैन कहैं नटि जाइ।।"

ध्वनि एवं वर्ण चित्रों का अंकन– शब्द ध्वनि के तीन प्रकार हैं–(क) रचनात्मक शब्द ध्वनि, (ख) अनुकरणात्मक शब्द ध्वनि, (ग) व्यंजक शब्द ध्वनि।

(क) रचनात्मक ध्वनि चित्र–

"रनित भृग घंटावली झरति दान मधु नीरु।
मंद–मंद आवत चल्यौ कुंजरु कुज–समीरु।"

टिप्पणी

(ख) अनुकरणात्मक शब्द ध्वनि–

"रुकयौ सांकरे कुंज मग करत झांझ झुकरात।
मंद–मंद मारुत तुरंग खूंदिन आवत जात।।"

(ग) नातदत्व द्वारा व्यंजक चित्रों की सृष्टि–

"लहलहाति तन तरुनई लचि लग सौ लफि जाइ।
लगै लांक लौइन भरी लोइनु लेति लगाइ।"

इन चित्रों के प्रसंग में डॉ. बच्चनसिंह ने ऐसे चाक्षुष चित्रों को जिनमें शब्द स्पर्श गंध, रस आदि का समावेश हो, रेखाचित्र कहकर पुकारा है और बिहारी के दोहों के उदाहरण देकर उनकी 'रेखाचित्र कला' का उद्‌घाटन किया है। रेखाचित्र की सोद्देश्यता के विषय में उनका मापक मानदंड यही रहा है कि वे रेखाचित्र पाठक की संवेदनाओं को जगाने और संवेगों को तीव्र बनाने में पर्याप्त योगदान करते हैं। एक उदाहरण द्वारा इस तथ्य की पुष्टि की जा सकती है–

"पीठि दिए ही नैकु मरि कर–घुंघट पटु टारि।
भरि गुलाल की त्रुटि सौं, गई मूठि सी मारि।"

नायिका का पीठ किए हुए थोड़ा–सा मुड़कर नायक को देखना, तत्पश्चात एक हाथ से घूंघट उठाना तथा दूसरे हाथ से गुलाल की मुट्‌ठी भरकर नायक पर फेंकना एक सजीव बिंब का निर्माण करते हैं।

वर्ण चित्रण– डॉ. नगेंद्र के अनुसार बिहारी ने रेखाचित्र केवल आंके ही नहीं, अपितु उनमें रंग भी भरे हैं।

"बिहारी और देव दोनों ने अपने चित्रों में वर्ण योजना का अद्‌भुत चमत्कार दिखाया है। कहीं छाया–प्रकाश के मिश्रण द्वारा चित्र में चमक उत्पन्न की गई है, कहीं उपयुक्त पृष्ठभूमि देते हुए एक ही रंग को काफी चटकीला कर दिया गया है और कहीं अनेक प्रकार के सूक्ष्म कौशल से मिलाते हुए उसमें सतरंगी आभा उत्पन्न की गई है।" उदाहरणार्थ यह दोहा अवलोकनीय है–

"अधर धरत हरि के परत ओठ दीठि पर जोति।
हरित बांस की बांसुरी, इन्द्रधनुष सी होति।।"

वयः संधि के वर्णन में रंगों का प्रयोग अति सूक्ष्मता, तरलता और कोमलता पूर्वक किया गया है–

"छूटि न सिसुता की झलक झलक्यो जोबन अंग।
दीपति देह दूहन मिलि दिपत ताफता रंग।।"

चमत्कार से अनुप्राणित होने पर कवि ने विरोधी रंगों के मेल से बड़ी उत्कृष्ट भाव व्यंजना की है–

"या अनुरागी चित्त की गति समुझे नहि कोय।
ज्यौं–ज्यौं डूबै स्याम रंग त्यौं–त्यौं उज्ज्वल होय।।"

टिप्पणी

अलंकार योजना– बिहारी ने अपने काव्य में वस्तु और भावों को स्पष्ट करने के लिए ही अलंकारों की योजना की है। उनकी अलंकार सुषमा का आकलन दो शीर्षकों के अंतर्गत किया जा सकता है–

1. **सादृश्य मूलक अलंकार–** इस वर्ग के अलंकार रूप धर्म एवं प्रभाव साम्य के आधार पर प्रस्तुत विषय को स्पष्ट करके पाठकों के सामने उभरकर आते हैं। इसके अंतर्गत उपमा, रूपक एवं उत्प्रेक्षा अलंकार ही प्रमुख है। डॉ. अंबा प्रसाद सुमन ने उचित ही कहा है–"अलंकारों की दृष्टि से 'बिहारी सतसई' के दोहों को देखें तो कोई दोहा ऐसा नहीं जो किसी शब्दालंकार या अर्थालंकार से चमत्कृत न हो।" बहुत से दोहे तो दो–दो, तीन–तीन अलंकारों से सुसज्जित हैं। जैसे–

उत्प्रेक्षा – *सोहत ओढ़े पीतु पट्ु स्याम सलोनै गात।*
मनौ नीलमनि सैल पर आतपु पर्‌यौ प्रभात।

रूपक – *मंगल बिन्दु सुरंग, मुख ससि केसर आड़ गुरू।*
इक नारी लहि सग रसमय किय लोचन जुगल।।

उपमा – *सहज सेत पचतोरिया पहरें अति छवि होति।*
चलचादर के दीप लौ जगमगाति तन जोति।।

2. **विरोधमूलक अलंकार–** विरोधमूलक अलंकारों में प्रधानतया विरोधाभास, विशेषोक्ति, अतिशयोक्ति आदि अलंकारों को लिया जाता है। इनके कुछ उदाहरण अवलोकनीय हैं–

असंगति – *दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर–चित प्रीति।*
परत गाठ दुरजन हिये दई नई यह रीति।

विशेषोक्ति – *निसि अंधियारी नील पट पहिर चली पिय गेह।*
कहों दुराई क्यौ दुरै, दीप, दीप सिखा सी देह।।

विभावना – *अंग अंग नग जगमगैं दीप सिखा सी देह।*
दिया बढ़ायै हू रहै बड़ी उजेरी गेह।।

इन अलंकारों के अतिरिक्त बिहारी ने जहां ऊहाओं आदि का प्रयोग किया है वहां अत्युक्तिपरक अलंकृतियां, संवेदनाहीन बनकर रह गई हैं। इसी प्रकार कहीं–कहीं कवि उक्ति वैचित्र्य के कोरे वाग्जाल में फंसकर रह गया है। डॉ. भगीरथ मिश्र जी के अनुसार, "परंतु उक्ति वैचित्र्य की दृष्टि से बिहारी सर्वोपरि हैं। उनमें जो कथन का बांकपन और व्यंग्य है, वह बड़ा ही विलक्षण है। उनके उक्ति चमत्कार के भीतर शब्द चमत्कार, संकेतपूर्ण अर्थ, विरोधाभास, व्यंग्योक्ति, असंगति आदि की आकर्षक आभा विद्यमान है, जो काव्य मर्मज्ञ के हृदय को तन्मय करने वाली है।"

टिप्पणी

छंदगत सौंदर्य– बिहारी ने दोहा छंद के अनेक भेदों– भ्रमर, भ्रामर, श्येन मण्डूक, मर्कट, करम, नर मराल, मढकल, पयोधर, चल, बानर, शार्दूल, विड़ाल, श्वान आदि– का प्रयोग किया है। कहीं–कहीं उन्होंने सोरठे भी लिखे हैं। आचार्य शुक्ल के अनुसार, "इसका एक–एक दोहा हिंदी साहित्य में रत्न माना जाता है। मुक्तक कविता में जो गुण होना चाहिए वह बिहारी के दोहे में अपने चरमोत्कर्ष को पहुंचा है। इसमें कोई संदेह नहीं।.... इनके दोहे क्या हैं? रस की छोटी–छोटी पिचकारियां हैं। वे मुंह से छूटते ही श्रोता को सिक्त कर देते हैं।" बिहारी की छंदगत उपलब्धियां इस प्रकार हैं–

बिहारी के काव्य–कला के संदर्भ में हम डॉ. हरवंश लाल शर्मा के निम्नांकित उद्‌गारों से सहमति रखते हैं– "इनके बहुत से दोहों में रस की समस्त सामग्री इतनी सहज शैली से जुटाई गई है कि वे पूरे रसवादी प्रतीत होते हैं किंतु वस्तु अलंकार आदि ध्वनि के भी इतने अधिक उदाहरण मिल जाते हैं कि उन्हें ध्वनिवादी ही मानना पड़ता है। एक ओर तो उनका वाग्वैदग्ध्य 'वक्रोक्ति काव्य जीवितम्' का घोष करता हुआ–सा प्रतीत होता है और दूसरी ओर सभी अलंकारों के ऐसे साफ उदाहरण जैसे हिंदी के रीतिग्रंथों में भी नहीं मिलते, उन्हें अलंकारवादी कहने के लिए प्रोत्साहित करते हैं। बिहारी मानो प्रत्येक का विश्वास प्राप्त कर सबका प्रतिनिधित्व कर रहे थे।"

अंत में कहा जा सकता है कि बिहारी की सतसई मुक्तों का मनोरम कोष काव्य है। इसमें बिहारी ने अनेक संवाद भरने का उपक्रम किया है। अतएव, बिल्कुल स्वाभाविक ढंग से वस्तु भाव तथा शिल्प, अनेक दृष्टियों में सतर्स में गूढ़–अगूढ़ अर्थ खोजे गए हैं तथा आज भी यह प्रयत्न शिथिल नहीं हुआ है। वस्तुतः बिहारी की कविता इतनी प्रगल्भ, इतनी विदग्धतापूर्ण एवं संकेत गर्भित है तथा इसकी समास–पद्धति में इतनी कसावट लाने का उद्योग किया गया है कि इसकी अनेक मनोनुकूल व्याख्याएं संभव हो सकी हैं। इसकी अर्थ विषयक समानताओं के ध्यान में रखते हुए भी डॉ. ग्रियर्सन ने इसे 'अक्षर कामधेनु' कहा है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

12. कविवर बिहारी किस कार्य में सिद्धहस्त थे?
13. बिहारी की ख्याति का मुख्य कारण क्या था?
14. बिहारी का प्रकृति चित्रण किस दृष्टि से अनुपम बन पड़ा है?
15. बिहारी ने अपने मुक्तक काव्य को सफल बनाने में किस शैली का सहारा लिया है?
16. बिहारी की अलंकार सुषमा का आकलन किन दो शीर्षकों के अंतर्गत किया जाता है?

4.6 बिहारी की काव्य–भाषा

जहां तक काव्य में भाषा के अध्ययन का प्रश्न है, उसे दो प्रकार से समझा जा सकता है– व्याकरण की दृष्टि से और सौंदर्यशास्त्र की दृष्टि से। बिहारी की भाषा उक्त दोनों ही कसौटियों पर कुंदन जैसी खरी सिद्ध होती है। रससिद्ध कविवर बिहारी की भाषा का उक्त दो दृष्टियों से अध्ययन करने के पूर्व यह जान लेना भी आवश्यक है कि सतसई की प्रतिनिधि भाषा कौन–सी है? उसमें किन–किन भाषाओं का समावेश हुआ? इस जानकारी के आधार पर हम सुविधापूर्वक कवि की भाषा के सभी पक्षों पर विचार कर सकेंगे और एक सच्चे निर्णय पर पहुंच सकेंगे।

यह निर्विवाद है कि सतसई की प्रतिनिधि भाषा ब्रज है। ब्रज के पश्चात दूसरी महत्वपूर्ण भाषा बुंदेली है और इसके बाद पूर्वी, खड़ी बोली एवं अरबी फारसी है।

जहां तक ब्रज भाषा का प्रश्न है, यह एक लंबे समय तक काव्य–भाषा रही है। इसका क्षेत्र भी अत्यंत विस्तृत रहा है। यह भाषा इतनी प्रचलित एवं लोकप्रिय थी कि इसमें कविता

करने वाले के लिए यह आवश्यक न था कि वह ब्रज में जन्मा हो। सूर के समय तो ब्रज का एक ग्रामीण रूप ही प्रचलित हो गया था परंतु बिहारी तक आते–आते वह अत्यंत परिष्कृत हो गया। इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि उसमें कृत्रिमता का प्रवेश हो गया। अरबी फारसी के भी बिहारी में पर्याप्त शब्द मिलते हैं जो अपने स्थान पर भाव प्रकाशन में अत्यंत खरे उतरे हैं। कुछ ये हैं– बकवाद, मुलुक, दरबार, अहसान, इजाफा, खूनी, चसमा, रकम, हमाम, हजार, हद, फतै आदि।

टिप्पणी

1. **शुद्ध भाषा प्रयोग–** कविवर बिहारी की भाषा सर्वत्र अत्यंत व्यवस्थित एवं व्याकरण सम्मत है। ब्रज भाषा के व्याकरण की कसौटियों पर खरी उतरती है। इन्होंने भाषा के क्षेत्र में अपनाये जाने वाले अनेक रूपों पर ध्यान दिया और उसका परिमार्जित ढांचा तैयार कर लिया। इनकी भाषा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें प्रयोग अव्यवस्थित नहीं पाए जाते। बिहारी के पहले किसी भी कवि की भाषा इतनी परिमार्जित और एकरूप नहीं मिलती। उनकी सतसई का कोई भी दोहा इसके लिए उद्‌धृत किया जा सकता है।

   भाषा की सरसता और ब्रज भाषा की क्रियाओं का इतना व्याकरण सम्मत एवं प्रभावक रूप अन्यत्र कहां मिलेगा?

   दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुरचित प्रीति।
   परति गांठि दुरजन हिए, दई नई यह रीति।।

   भाषा पर बिहारी का शत–प्रतिशत अधिकार था। वह उनके संकेत पर सदा नर्तित होती है। भावों का इससे अच्छा और किस भाषा में संप्रेषणा होगा।

   ललन चलन सुनि पलन में, अंसुआ छलके आई।
   भई लखाई न सखिन्ह हू, झूठै ही जमुहाइ।।

   बिहारी की भाषा चलती होने पर भी साहित्यिक है। वाक्य रचना व्यवस्थित है और शब्दों के रूप का व्यवहार एक निश्चित प्रणाली पर है। यह बात बहुत कम कवियों में पाई जाती है। ब्रज भाषा के कवियों में शब्दों को तोड़–मरोड़ विकृत करने की आदत बहुतों में पाई जाती है। 'भूषण' और 'देव' ने शब्दों का बहुत अंगभंग किया है और कहीं–कहीं गलत शब्दों का व्यवहार किया है। बिहारी की भाषा इस दोष से भी बहुत कुछ मुक्त है। बिहारी की भाषा में एक ओर यदि पाणिनी की सूत्र शैली विद्यमान है तो दूसरी ओर उसमें अर्थ की गहनता और भावविस्तार भी अपनी पूर्णता में निहित है। इतनी चुस्त, चलती हुई एवं सरस भाषा अन्यत्र दुर्लभ है।

   पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने ठीक ही कहा है, "इतनी ठोस या प्रौढ़ भाषा लिखने वाला हिंदी में दूसरा कवि नहीं हुआ। जैसी सशक्त भाषा बिहारी ने लिखी है, वैसी भाषा लिखने वाले तो दूर रहे, उल्टे भाषा को बिगाड़ने वाले ही पैदा हो गए।" बिहारी की भाषा प्रायः क्लिष्टता, दुरूहता, ग्राम्यत्व एवं अश्लीलत्व आदि दोषों से दूर है।

चिरजीवौ जोरी जुरै, क्यों न सनेह गंभीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के बीर।।

अजों तरयौना ही रहयौ श्रुति सेवत इक रंग।
नाक वास वेसर लहयौ, बसि मुकुतन के संग।।

टिप्पणी

उल्लिखित दोहे व्याकरण की सभी कसौटियों पर खरे उतरते हैं। सौंदर्य और व्याकरण का निर्वाह प्रायः कठिन होता है, पर बिहारी इसमें पूर्ण सफल हैं। उक्त दोहों में शब्द, वाक्य और कारक प्रयोग दर्शनयी है।

2. **समास बहुला भाषा–** गंभीर और विराट भावों को अत्यंत चुस्त और थोड़े शब्दों में पूर्णता के साथ कहने की शक्ति बिहारी में अद्‌भुत है। बिहारी श्रृंगार रस के कवि हैं। अतः छोटे–छोटे समासों को ही उन्होंने अपनाया है। भाव व्यंजना के लिए भी यही उपयुक्त है। प्रायः बिहारी के समास तीन–चार पदों के लंबे हैं। समास से भाषा में कसाव तथा भावों में भी गठन आ गया है। समासों से भावों की व्यंजना में कहीं भी विकार या अवरोध नहीं आ पाया है। अधोलिखित दोहे दृष्टव्य हैं–

विकसति नवमल्ली कुसुम, निकसत परिमल पाइ।
परास पजारति बिरह हिम, वरसि रहे की बाइ।

समरस समर सकोच बस विवस न ठिक हहराइ।
फिर–फिर उझकति, फिर दुरति, दुरि दुरि उझकत आइ।।

बिहारी के समासों में सरलता और प्रवाह भी है। इससे व्यंग्य और अधिक मोहक हो जाता है–

रनित भृंग घंटावली झरत दान मधु नीर।
मंद मंद आवत चल्यौ, कुंजर कुंज समीर।।

दोहे जैसे छोटे छंद में रस और भावों की तीव्र तथा विशाल धारा भरने के लिए बिहारी ने समास शैली को अपनाया। गागार में सागर ही नहीं बिहारी बिंदु में सिंधु भर सके हैं–

सोहित धोती सेत में, कनक वरन तन बाल।
सारद बारद बीजुरी भा, रंद की जति लाल।।

3. **अलंकारिता–** बिहारी ने अपने मुक्तकों में अपने अलंकारिक ज्ञान का प्रयोग करके भाषा सौष्ठव और चुस्ती उत्पन्न की है। प्रत्येक दोहे का एक–एक शब्द अद्वितीय कौशल और शिल्प की महिमा से मंडित है। अलंकार विधान में कविवर बिहारी अद्‌भुत हैं। उनके दोहों को अलंकारों का आगार कहते हैं। अनेक अलंकारों की जगमगाहट के साथ श्रृंगारी एवं भक्तिमूलक भावों को चित्रित करने में बिहारी की भाषा ने कमाल कर दिखाया है–

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झांई परै, स्याम हरित दुति होय।।

इस दोहे में पांच अलंकार और तीन अर्थ हैं। राधा के रूप और गुण का व्यापक चित्रण है। झांई, स्यामु तथा हरित दुति शब्द का कवि के शब्द–शिल्प का, उसकी चातुरी का अत्यंत प्रभावक द्योतन कर रहे हैं।

टिप्पणी

'बिहारी सतसई' में शायद ही कोई दोहा हो जिसमें अलंकार प्रयोग न हुआ हो। शब्दालंकार, अर्थालंकार, उभयालंकार तीनों प्रकार के अलंकारों का बड़ा ही सार्थक एवं सृजनात्मक प्रयोग हुआ है। यमक और विरोधाभास की छटा निम्न दोहों में दृष्टव्य है–

कनक कनक तै सौ गुनी, मादकता अधिकाय।
जा खाएं बौराय नर, वा पायें बौराय।।

– यमक

या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहीं कोय।
ज्यौं ज्यौं बूड़े स्यामु रंग, त्यौं त्यौं उज्ज्वल होय।।

– विरोधाभास

4. **सरसता–** बिहारी रससिद्ध कवि हैं। उनकी भाषा ने उनकी रस धार को लोकोत्तर शरीर प्रदान किया है। भाषा की पिचकारी से रस की धार सर्वत्र अति मोहक होकर ही प्रकट हुई है। श्रृंगार रस के अनुरूप ही सर्वत्र कवर्ग एवं चवर्ग का तथा कोमल स्वरों का प्रयोग हुआ है। टवर्ग एवं अन्य कर्णकटु शब्दों का प्रयोग प्रायः नहीं किया गया है।

अरून बरन तरूनी चरन, अंगुरि अति सुकुमार।
चुवति सुरंग रंग सी मलै, चपि बिछयन के भार।

× × ×

बतरस लालच लाल की मरली धरी लुकाइ।
सौं करे भौंहन हंसै, दैन कहै नट जाइ।।

5. **मुहावरे–** मुहावरों और लोकोक्तियों के प्रयोग से भाषा में सजीवता और शक्ति का संचार होता है। रस धार और भी तीव्र हो जाती है। बिहारी ने अनेक प्रचलित मुहावरों और लोकोक्तियों का अत्यंत औचित्यपूर्ण प्रयोग किया है। यथा–

(क) *गैड़ी दै गुन राबरे कहति कलैड़ी डीठि।*

(ख) *पीनस बारौ जो तजे, सोरा जानि कपूर।*

(ग) *खरी पातरी कान की, कौन बहाऊ बानि।*
आक कली न रली करै, अली अली जिय जानि।।

टिप्पणी

6. **लाक्षणिक प्रयोग–** लाक्षणिक प्रयोगों में भी बिहारी सिद्धहस्त हैं। उनकी भाषा सर्वत्र तीर की भांति सधे हुए, सीधे और लाक्षणिक प्रयोग करती है। कचनार और हार पर किये गए लाक्षणिक प्रयोग का एक उदाहरण–

मूड़ चढ़ाए हूं रहे, परयौ पीठि कब भारू।
रहै गरै परि राखिबौ, तऊ हिये पर भारू।।

कई लोकप्रिय लाक्षणिक प्रयोग एक ही दोहे में प्रयुक्त हुए हैं–

दृग उरझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गांठ दुरजन हिये, दई नई यह रीति।।

और भी–

खरी पातरी कान की, कौन बहाउ वानि
आक कलि न रली करै, अली अली जियानि।।

7. **अन्य भाषाएं–** कविवर बिहारी ने प्रमुख रूप से ब्रज भाषा में ही सतसई का सृजन किया है, किंतु साथ ही बुंदेली, अवधि तथा फारसी और उर्दू के भी अनेक शब्दों का प्रयोग सतसई में बड़ी स्वाभाविकता से किया है। बुंदेली भाषा तो बिहारी की मातृभाषा थी अतः उसका ललित प्रयोग तो स्वाभाविक ही है।

पूर्वी एवं अवधि के प्रयोग– दीन, कीन, लीन, आहि, लजियात, जेहि, केहि।

बुंदेली प्रयोग– खैर, लखबी, करबी, पायवी, लाने, कोद, मरोर, चाल आदि।

कई दोहे पूर्णतया ही बुंदेली भाषा में रचे गए हैं–

चिलक चिकनई चटकस्यों, लफति सटक लौं आइ।
नारि सलोनी सांवरी, नागिन लों डसि जाइ।।

मुसलमानों का राज्यकाल था, अतः उर्दू का वातावरण था ही। उसका प्रभाव भी बिहारी पर पड़ा ही था। सतसई में अनेक शब्द उर्दू और फारसी के प्रयुक्त हुए हैं। जैसे–इजाफा, खुबी, खुशहाल, अदब, हद, पायन्दाज, बरजोर, हुक्म आदि।

8. **ध्वन्यात्मकता या नाद सौंदर्य–** ध्वन्यात्मकता या नाद सौंदर्य के लिए बिहारी हिंदी काव्य जगत में विख्यात हैं। इस दिशा में उनका वैशिष्ट्य निर्विवाद है। नायिका की रसभरी अंग चेष्टाओं का ध्वन्यात्मक वर्णन प्रस्तुत दोहे में द्रष्टव्य है–

बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करे, भौंहिन हसैं, दैन कहैं नटि जाय।।

अनियरे दीरघ दृगनि किसी न तरूनि समान।
वह चितवन औरै कछू, जिहि दस होत सृजान।।

यह नेत्र सौंदर्य का चित्र अपनी ध्वन्यात्मकता में अद्वितीय है–'और कछू' के द्वारा प्रतीयमान अर्थ की ओर इंगित है।

पद मैत्री और नाद सौंदर्य को अनुप्रास के साथ कैसा सजाया है–

कहत, नटत, रीझत खिझत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैनन ही सौं बात।।

रस सिंगार मंजन किए, कंजन, मंजन दैन।
अंजन, रंजन हू बिना, खंजन गंजन नैन।।

रति भृंग घंटावली झरत दान मधु नीर।
मंद मंद आवत चल्यौ कुंजर कुंज समीर।

9. **प्रवाहात्मकता**– दोहे जैसे छोटे छंद में और जबकि काव्य मुक्तक शैली में रचा गया हो, तो प्रवाह की संभावना प्रायः नहीं रहती है। बिहारी ने इन सीमाओं के होते हुए भी प्रवाह की लोकोत्तर सृष्टि की है। कवि की रस धार एवं प्रवाहात्मकता की अनेक मर्मज्ञों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। शुक्ल जी ने हर दोहे को रस की पिचकारी ही कहा है। रस प्रवाह का यह उदाहरण दृष्टव्य है–

मुखु उघार पिउ लखि रहत, रह्यौ न गौ मिस सैन।
फरके औंठ, उठे पुलक, गये उघार जुरि नैन।।

नायक नायिका की प्रेममयी चेष्टाएं व्यंजित हैं। नायिका सोने का बहाना कर रही थी कि ओष्ठ फड़क उठे। बस दोनों के नेत्र मिल गए।

निष्कर्षतः बिहारी की भाषा सभी दृष्टियों से श्रेष्ठ है। व्याकरण और सौंदर्य की विरोधी कसौटियों पर भी वह खरी उतरती है। बिहारी का भाषा पर सच्चा अधिकार था। बिहारी को भाषा का पंडित कहना चाहिए। भाषा की दृष्टि से बिहारी की समता करने वाला, भाषा पर वैसा ही अधिकार रखनेवाला कोई मुक्तककार नहीं दिखाई पड़ता। शब्दों की आत्मा, उनका ध्वनन, उनका गठन, अर्थ वैविध्य, संकेतात्मकता एवं अलंकारिता सभी दृष्टियों से बिहारी की काव्य भाषा सच्चे अर्थों में संप्रेषणीयता की अद्भुत शक्ति रखती है।

4.7 बिहारी की बहुज्ञता

कविवर बिहारी के सांसारिक ज्ञान का क्षितिज अत्यंत विस्तृत है। उन्होंने गांव की फटेहाली भी देखी, खुशहाली भी। उन्होंने कवि संतों की संगति भी की और शास्त्र ज्ञान भी प्राप्त किया। उन्होंने राज दरबारों में दरबारीपन भी किया और एक जागरूक सृष्टा की भांति राजाओं के साथ व्यवहार भी किया। उन्होंने केवल प्रशंसा ही नहीं की बल्कि आलोचनात्मक व्यंग्य भी किये। उन्हें मानव समाज के सज्जन से सज्जन और दुर्जन से दुर्जन व्यक्ति की पहचान है। जहां वह सच्चे प्रेमी के हृदय की दशा व्यक्त करते हैं, वहीं लंपट और काइयां नायक का मनोविज्ञान समझते हैं। मनोविज्ञान के आधार पर कोन–सी बात कब कहनी चाहिए इसे बिहारी खूब जानते हैं। बिहारी के काव्य में क्या भक्ति और क्या शृंगार, क्या काइंयापन ओर क्या भोग–विलास सभी कुछ उनकी लेखनी पर सधे हुए हैं। 'बिहारी

टिप्पणी

'अपनी प्रगति जांचिए'

17. काव्य में भाषा के अध्ययन को कितने प्रकार से समझा जा सकता है?
18. बिहारी की मातृभाषा कौन–सी थी?
19. "मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
    जा तन की झांई परै, स्याम हरित दुति होय।।" इस दोहे में कितने अलंकार हैं।
20. शुक्ल जी बिहारी के प्रत्येक दोहे को क्या कहकर पुकारते हैं?

सतसई' के सृजन में कवि की प्रतिभा बहुआयामी दृष्टिगत होती है। उसमें जीवन के विविध क्षेत्र के अनुभव संसार का गहरा साक्षात्कार होता है। 'बिहारी सतसई' में आए विभिन्न दोहों के आधार पर बिहारी के ज्ञान को निम्न आधारों पर समझा जा सकता है–

ज्योतिष शास्त्र का ज्ञान– कविवर बिहारी को ज्योतिष शास्त्र का गहरा ज्ञान था। उन्होंने ज्योतिष शास्त्र का अध्ययन विधिवत ज्योतिषियों के संसर्ग में किया था। उन्होंने अपनी कविता की सृजनात्मकता में इस ज्ञान का उपयोग किया है। ज्योतिष शास्त्र संबंधी उनके कई दोहे हैं। जातक संग्रह के राजयोग प्रकरण में लिखा है कि यदि शनिश्चर तुला, धनु या मीन में हो अथवा लग्न में पड़ा हो तो वह स्वयं राजा होता है तथा राजवंश का करने वाला होता है। ज्योतिष के इस सिद्धांत को लेकर बिहारी ने निम्नलिखित दोहा लिखा है–

सनि–कज्जल चख–झख लगन उपज्यौ सुदिन सनेहु।
क्यौ न नृपति है भेगवै लहि सुदेसु सबु देहु।।

नेत्र–रूपी मौन की लगन (लग्न तथा लगालगी) में सनेह–रूपी बालक का जन्म हुआ है। अतएव यह सनेह–रूपी बालक सारे शरीर–रूपी देश पर शासन कर रहा है। इसी प्रकार एक दूसरा सिद्धांत है कि यदि मंगल, चंद्रमा और बृहस्पति एक ही नाड़ी के चारों नक्षत्रों में से किसी एक पर पड़े हों तो इतनी वर्षा होती है कि संसार जलमय हो जाता है। निम्नलिखित दोहे में मस्तक पर लगी लाल बिंदी को मंगल माना गया है, मुख को चंद्रमा माना गया है और केशर के पीले तिलक को बृहस्पति माना गया है। इसी में तीनों एक ही नारी (नाड़ी या स्त्री) में विराजमान है। अतएव नेत्र–रूपी संसार रसमय, प्रेममय या जलमय हो गया है–

मंगल बिंदु सुरंग, मुख ससि, केसरि–आड़ गुरू।
इस नारी लहि संग, रसमय किय लोचन जगतु।।

इसी प्रकार निम्नलिखित दोहे में कवि ने मंगल के अंदर चंद्र की अंतर्दशा पर ध्यान दिलाया है जो कि स्त्री पुत्रादि अनेक सुखों को देने वाला होता है–

भाल लाल वेंदी, ललन आखत रहे विराजि।
इन्दु कला कुज मैं बसी मनौ राहु भय भाजि।।

लाल बिंदी रूप मंगल में अक्षत रूप चंद्रमा विराजमान है जो कि स्त्री रूप सप्तम स्थान केंद्र में पड़ा हुआ है, अतएव अनेक सुखों का देने वाला है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि कविवर बिहारी ने अपनी काव्याभिव्यक्ति में ज्योतिष शास्त्र के ज्ञान का प्रयोग अनेक दोहों में किया है।

आयुर्वेद शास्त्र का ज्ञान– 'बिहारी सतसई' में ऐसे अनेक दोहे समाहित हुए हैं जिनमें बिहारी का आयुर्वेद का व्यावहारिक ज्ञान दिखलाई पड़ता है। किसी दोहे में विषम ज्वर का उपचार सुदर्शन चूर्ण बताया है तो सुदर्शन चूर्ण के रस से ज्वर की तीव्रता की बात

टिप्पणी

कही है। कहीं नाड़ी ज्ञान, निदान की बात कही है तो कहीं पीनस रोग के लक्षण बतलाए हैं। निम्नलिखित दोहे में बिहारी ने पारे से नपुंसकता के उपचार की बात कही है–

वहु धनु लै, अहसानु कै, पारौ देत सराहि।
वैद–वधू हंसि भेद सौं रही नाह मुंह चाहि।।

दार्शनिकता– बिहारी के दोहों में कहीं–कहीं दार्शनिक विषयों की छाया पायी जाती है। कुछ तो साधारण विषय हैं और कुछ दोहों में विशेषता भी है। निम्नलिखित दोहे में प्रमाणवाद का उल्लेख किया गया है जो कि सर्वजन–संवेद्य नहीं कहा जा सकता–

बुधि अनुमान, प्रमान श्रुति किऐं नीठि ठहराइ।
सूछम कटि पर ब्रह्म सी अलख, लखी नहिं जाइ।।

किसी–किसी दोहे में परमात्मा की व्यापकता इत्यादि सर्वजन संवेद्य सुलभ सिद्धांतों की छाया पाई जाती है। भगवान की व्यापकता में–

मैं समझ्यौ निरधार, यह जगु कांचो कांच सौ।
एकै रूपु अपार प्रतिबिम्बित लखियतु जहां।।

बिहारी सतसई में दर्शन शास्त्र संबंधी अनेक दोहे समाहित हैं जिनमें कहीं एक तत्व की प्रधानता अभिव्यक्त की गई है। योग तथा अद्वैतवाद का वर्णन किया है तथा ईश्वर की सर्वव्यापकता एवं रहस्यमयता पर प्रकाश डाला है। जीवन और जगत के विभिन्न प्रश्नों को रचनाकार ने अपने ढंग से बड़ी कलात्मक अभिव्यक्ति की है।

वैज्ञानिकता– एक–दो दोहों में बिहारी के वैज्ञानिक ज्ञान की भी छाया पायी जाती है। जब किसी औषधि का अर्क खींचना होता है तब उसे पहले पानी में डुबा देते हैं, फिर किसी बर्तन में भरकर उसे आग पर चढ़ा देते हैं ओर नीलाभ यंत्र से उसका संबंध एक दूसरे बर्तन से कर देते हैं। औषधि पात्र का जल औषधि का सार लेकर भाप बनकर उड़ता है और नीलाभ यंत्र के द्वारा दूसरे बर्तन में पहुंचकर पानी बनकर टपक जाता है। बिहारी ने इसी क्रिया का उपादान आंसुओं के वर्णन के प्रसंग में किया है–

तच्यौ आंच अब विरह की, रह्यौ प्रेम–रस भीजि।
नैननु कै मन जलु बहे हियौ पसीजि पसीजि।।

हृदय प्रेम–रस में भीगा हुआ है और वियोगाग्नि से संतप्त किया गया है। इस प्रकार हृदय नेत्रों में मार्ग से पसीज–पसीज कर पानी के रूप में बहता है।

दो–एक दोहों से रंगों के सम्मिश्रण के भी ज्ञान का पता चलता है। प्रथम दोहे में ही पीले और नीले रंग को मिलाकर हरे रंग बन जाने की बात कही गई है। एक दूसरे दोहे में धूप–छांह का वर्णन है–

छूटी न सिसुता की झलक, झलक्यौ जोबनु अंग।
दीपति देह दुहुन मिलि दिपति ताफता–रंग।।

दो दोहों में गणित के ज्ञान की छाया पायी जाती है। एक दोहे में बिंदु से दस गुने अंक हो जाने की बात कही गई और दूसरे दोहे से टेढ़ी बकारी लगाने से दस का रुपया हो जाने की ओर संकेत किया गया है।

टिप्पणी

कर्मकांड– दो–एक दोहों पर बिहारी के कर्मकांड विषयक ज्ञान की भी छाप पायी जाती है। बिहारी ने निम्नलिखित दोहे में यज्ञ की ओर संकेत किया है–

होमति सुखु, करि कामना तुमहिं मिलन की, लाल।
ज्वालमुखी सी जरति लखि लगनि–अगन की ज्वाल।।

इसी प्रकार एक दूसरे दोहे में पाणिग्रहण संस्कार की छाया अधिगत होती है–

स्वेद सलिलु, रोमांच कुसुगहि दुलही अरू नाथ।
दियौ हियौ संग हाथ कैं हथलैवै ही हाथ।।

कामशास्त्र– कामशास्त्र का ज्ञान भी शास्त्रीय ज्ञान में ही आता है। बिहारी का दंत–क्षत, नख–क्षत, विपरीत रति इत्यादि का वर्णन कामशास्त्रीय ज्ञान के अंदर सन्निविष्ट हो जाता है। निम्नलिखित दोहे में कामशास्त्र संबंधी अनेक आसनों की छाया लक्षित होती है–

पलनु पीक, अंजनु अधर, धरै महावरू माल।
आज मिले सुभली करी भले बने हौ लाल।।

प्राचीन ग्रंथों का ज्ञान– 'बिहारी सतसई' के दोहों में कुछ ऐसे दोहों का समावेश है जो हमारे प्राचीन ग्रंथों के इति वृत्त से सरोकार रखते हैं जैसे महाभारत, रामायण एवं पौराणिक आख्यान। महाभारत के कथावृत्त के अनुसार दुर्योधन जल स्तंभन की विद्या जानता था। अंत में जब उसके वर्ग के सभी वीर मारे गए तब वह जल में जाकर छिपा था। इस कथा की छाया निम्न दोहे में देखी जा सकती है–

विरह–विथा–जल परस बिनु असियतु मो–मन–ताल।
कछु जानत जल–थम्भ विधि दुर्योधन लौं, लाल।।

दुर्योधन जल में बैठा था किंतु जल–स्तंभ की विद्या के प्रभाव से स्पर्श जल से नहीं होता था। इसी प्रकार नायक–नायिका के हृदय में विरह रूपी दुर्योधन निवास करता है। किंतु आश्चर्य है कि उसका स्पर्श किसी तरह से नहीं हो पाता।

दो–एक दोहों में रामायण के ज्ञान की छाया पायी जाती है। कहा जाता है कि जब हनुमान समुद्र में कूद रहे थे तब समुद्र में रहने वाली राक्षसी ने हनुमान की छाया पकड़ ली जिससे हनुमान रुक गए और कठिनाई से पार जा सके। बिहारी ने संसार सागर को पार करने में स्त्री को छाया–ग्राहिणी राक्षसी माना है जिसके कारण सरलतापूर्वक कोई भी भवसागर के पार नहीं जा सकता–

या भव–पारावार कौं उलंघि पार को जाइ।
तिय–छवि–छायाग्राहिनी ग्रहै बीच हीं आइ।।

टिप्पणी

एक दोहे में शंकर जी के मस्तक पर चंद्र और विष्णु भगवान के वक्ष स्थल पर लक्ष्मीजी के निवास की पौराणिक कल्पना का सुंदरता के साथ उपादान किया गया है–

प्रनप्रिया हिय में बसै, नखरेखा ससि भाल।
भलौ दिखायौ आइ यह हरि–हर–रूप, रसाल।।

लोक जीवन का ज्ञान– 'बिहारी सतसई' में शास्त्रीय ज्ञान के अतिरिक्त लोक जीवन के ज्ञान की अभिव्यक्ति हुई है। कविवर बिहारी को जन जीवन की गहरी जानकारी थी। बिहारी का कृषि ज्ञान निम्न दोहे में देखा जा सकता है–

सुनु सूक्यौ वीत्यौ बनौ, ऊखौ लई उखारि।
अरी हरी अरहर अजौं, धरि घर हरि जियनारि।।

बिहारी ने इस दोहे में समाप्त होने वाली फसलों का क्रमशः उपादान किया है। पहले तो सन काटा जाता है, उसके बाद कपास का नंबर आता है, फिर ईख समाप्त होती है और उसके बाद अरहर काटी जाती है।

राजनीति शास्त्र व तात्कालिक समस्याओं का ज्ञान– बिहारी सतसई के अतिशय दोहों में राज धर्म, राजनीति संबंधी विषयों पर तथा तात्कालिक समस्याओं पर भी अपने विचार दोहों में प्रकट किए हैं। कुछ दोहों में इनके युद्ध विधा संबंधी ज्ञान का भी पता चलता है। युद्ध के लिए जब सेनाएं प्रस्थान करती हैं, तब उसके आगे चलने के लिए सेना की छोटी टुकड़ी भेजी जाती है जिससे मुख्य सेना सुरक्षित रहे और उस सेना की आड़ में शत्रु पर प्रहार करे। सेना के इस भाग को 'हरौल' कहते हैं। जब शत्रु पक्ष की मुख्य सेनाएं सबल होती हैं तब हरौल की उपेक्षा कर तत्काल मुख्य सेना पर जा पहुंचती हैं। बिहारी ने घूंघट के पतले परदे को हरौल माना है और नायक–नायिका के नेत्रों को मुख्य सेना। जिस प्रकार मुख्य सेना हरौल का अतिक्रमण कर शत्रु की मुख्य सेना पर जा टूटती है, उसी प्रकार घुंघट पट का अतिक्रमण कर दोनों के नेत्र जा मिले–

जुरे दुहुन के दृग झमकि रुके न झीनै चीर।
हलुकी फौज हरौल ज्यौं घरे गोल पर भीर।।

एक और दोहे से भी बिहारी की युद्ध विद्या का ज्ञान प्रकट होता है–

लिख दरौत प्रिय–कर–कटकु बास–छुड़ावन–काज।
वरूनी–वन गाढ़ै दृगनु रही गुढ़ौ करि लाज।।

जिस प्रकार जब शत्रु सेना आवास छुड़ाने का आक्रमण कर रही हो तब कोई दुर्बल प्रतिपक्षी बन में बने हुए अपने किसी निवास स्थान में छिपा रहता है, उसी प्रकार जब प्रियतम का हाथ रूपी सैन्यदल नायिका के वास (वस्त्र) को छुड़ाने के लिए दौड़ने लगा तब नायिका की लज्जा वरूणी–रूपी जंगल में नेत्र–रूपी गुप्त आवास स्थान में छिप रही।

निष्कर्षत : कहा जा सकता है कि बिहारी का निरीक्षण क्षेत्र व्यापक था किंतु उन्हें किसी शास्त्र अथवा विद्या का महान विद्वान मान लेना उनके प्रति अन्याय करना होगा।

टिप्पणी

उनके दोहों की सफलता और लोकप्रियता के मूल में उनकी बहुलता नहीं, उनकी पर्यवेक्षण दृष्टि है। जन–जीवन से अनेक प्रचलित बातों को उठाकर उन्होंने अपने काव्य में यथावसर गूंथ दिया है। जो भी वस्तु उनकी दृष्टि में आई, जिस किसी का निरीक्षण उन्होंने किया उसकी तह तक पहुंच जाने की उनमें विलक्षण शक्ति थी।

4.8 मुक्तक काव्य परंपरा और बिहारी

'मुक्तक' ऐसी काव्य रचना को कहते हैं जो छोटी, स्वतंत्र एवं अपने आप में पूर्ण होती है। इसमें कवि अपने कथ्य के पूर्णतः नियंत्रित एवं सुव्यवस्थित स्वरूप को कम–से–कम शब्दों में व्यक्त कर देता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल मुक्तक की व्याख्या करते हुए कहते हैं– "मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती, जिसमें कथा–प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भुला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थाई प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें तो रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं जिनसे हृदय कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है। यदि प्रबंधकाव्य एक विस्तृत वनस्थली है, तो मुक्तक काव्य एक चुना हुआ गुलदस्ता है।"

भारतीय साहित्य ही नहीं, विश्व के साहित्य का प्रथम ग्रंथ ऋग्वेद को माना जाता है। यह मुक्तकों का ही संग्रह है। इसमें विभिन्न चेतन शक्तियों की स्तुती की गई है। ये स्तुतियां सूक्तों के रूप में इसमें संकलित हैं।

'ऋग्वेद' से प्रारंभ हुई यह मुक्तक परंपरा एक विस्तृत अंतराल तक संस्कृत साहित्य पर छाई रही। 'ऋग्वेद' के पश्चात रचे गए तीनों वेद इसी परंपरा के ग्रंथ हैं। मुक्तक की यह परंपरा भक्ति या नीति के श्लोकों के रूप में उपनिषदकाल, पुराणकाल में भी विद्यमान रही और हिंदी–साहित्य के रीतिकाल तक इसके दर्शन होते रहे हैं।

संस्कृत साहित्य की इसी मुक्तक परंपरा ने कालांतर में 200 से 300 ईसा पूर्व प्राकृत को प्रभावित किया। प्राकृत में कई उत्कृष्ट कोटि के मुक्तक ग्रंथ प्राप्त होते हैं। इन ग्रंथों में 'गाथा सप्तशती' एवं 'अमरूक शतक' उल्लेखनीय हैं। इस समय तक इन मुक्तकों के मुलभूत विषय में अंतर आ गया था। मुक्तक काव्य की वह धारा जो संस्कृत–साहित्य के अंतर्गत केवल ज्ञान और भक्ति के क्षेत्र में बहती थी, सामाजिक लोक जीवन में प्रवेश कर गई। इसने लोक व्यवहार, सामाजिक एवं पारिवारिक जीवन, प्रेमानुभूति तथा प्रेम क्रीड़ाओं को भी अपने आंचल में समेट लिया। प्राकृति में रची गई 'गाथा सप्तशती' लोक व्यवहार एवं श्रृंगार संबंधी प्रथम रचना थी। यह मुक्तक परंपरा की प्रथम श्रृंगारिक रचना समझी जाती है। इसके पश्चात 'अमरूक शतक', 'आर्य सत्पशती', 'चोर पंचाशिका', 'श्रृंगार शतक' आदि अनेक श्रृंगारिक रचनाओं ने परंपरा में सहयोग किया। इन मुक्तक ग्रंथों में से कुछ ही भाषा प्राकृत थी, कुछ की संस्कृत। संस्कृत में रचे गए ये मुक्तक प्राचीन संस्कृत मुक्तक से विषय के कारण भिन्न थे। प्राचीन संस्कृत में ज्ञान एवं भक्ति के विषय पर मुक्तकों की रचनाएं की गई थीं, पर इन नवीन ग्रंथों का विषय श्रृंगार प्रमुख था।

'गाथा सप्तशती' से प्रारंभ होने वाले श्रृंगारपरक मुक्तकों में जयदेव कृत 'गीत गोविंद' हिंदी साहित्य का प्रथम श्रृंगारिक मुक्तक ग्रंथ समझा जाता है। जयदेव के पश्चात विद्यापति ने भी इस परंपरा में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया। भक्तिकाल में तो मानो भक्तिपरक

'अपनी प्रगति जांचिए'

21. कामशास्त्र का ज्ञान किस ज्ञान के अंतर्गत आता है?
22. महाभारत के कथावृत्त के अनुसार जल स्तंभन की विद्या कौन जानता था?
23. बिहारी ने अपने काव्य में घूंघट के पतले परदे को क्या माना है?
24. 'वास' का क्या अर्थ है?

मुक्तकों की मूसलाधार बारिश ही होने लगी। कबीर, सूर, तुलसी आदि महाकवियों के भक्तिपरक मुक्तक घर–घर गूंजने लगे।

टिप्पणी

रीतिकाल में पुनः मुक्तक का रूप बदल गया और इसमें शृंगारपरक रचनाएं होने लगीं। इस युग की मुक्तक रचना में एक विशेषता थी। रीतकालीन कवि इन मुक्तकों की रचना रीतिबद्ध एवं रीत्यानुसार काव्यांगों के लक्षणों तथा उदाहरणों के साथ करने लगे। इन मुक्तकों में शृंगार रस के विविध व्यापक स्वरूप के दर्शन होते हैं। इस युग में प्रमुख मुक्तककारों में बिहारी, बेनी, मतिराम, कुलपति मिश्र, सुखदेव मिश्र, कालिदास त्रिवेदी, रसनिधि, नृपशंभु, देव, श्रीपति, कृष्णकवि, रसलीन, दूलहबेनी प्रवीन, पद्माकार, ग्वालकवि हठी जी रामसहायदास, पजनेस, द्विजदेव आदी अनेक कवि उत्पन्न हुए।

आधुनिक युग में भारतेंदु हरिश्चंद्र, गिरिधर कविराय, रत्नाकर, 'हरिऔध', मैथिलीशरण गुप्त आदि अनेक कवियों ने इस मुक्तक परंपरा में अपना योगदान दिया। मुक्तक की रनाएं आज भी हो रही हैं और इन्होंने काव्य के नये–नये स्वरूप से काव्य जगत को परिचित कराया है।

मुक्तक परंपरा में बिहारी का स्थान

हिंदी में मुक्तक की परंपरा जयदेव से प्रारंभ हुई। जयदेव के गीतों में भक्ति एवं शृंगार–भाव की लालित्यमय गहन संवेदनात्मक तीव्रता विद्यमान है। भाव की प्रबलता एवं गंभीर आह्लादित कर देने वाले प्रभाव के कारण इन्हें उत्कृष्ट काव्य की कोटि में रखा जाता है। विद्यापति के गीतों में भी यही भाव, अनुभूत, संवेदना एवं प्रभावोत्पादक दृष्टिगोचर होती है। भाव एवं रस की सृष्टि में ये बिहारी से श्रेष्ठ रहे हैं, किंतु इस तथ्य को दृष्टि में रखा जाए कि बिहारी ने अपने भावों की अभिव्यक्ति दोहे जैसे लघु छंद मुक्तकों में की है, तो बिहारी इनसे श्रेष्ठ प्रमाणित होते हैं।

भक्तियुग के मुक्तकों में भाव गहनता का प्राबल्य है। इनमें भक्ति के जिन उदात्त भावों की गहन अभिव्यक्ति हुई है, वे बिहारी से कई गुना श्रेष्ठ हैं। कबीर एवं तुलसी के दोहे इसके उदाहरण हैं। सूरदास एवं तुलसी दास के पदों को बिहारी के दोहों की तुलना में नहीं रखा जाए तो बिहारी, कबीर एवं तुलसी के दोहों के सामने नहीं ठहरते। कतिपय विद्वानों ने भक्तिपरक मुक्तक होने के कारण भक्तिकालीन कवियों के मुक्तक को बिहारी के शृंगारिक मुक्तक से तुलना करना उचित नहीं समझा है, किंतु यह दृष्टिकोण अनुचित है। मुक्तक तो ये भी हैं। केवल विषयांतर के होने के कारण इनको तुलनात्मक काव्य नहीं मानना सही नहीं है। काव्य में भावगहनता एवं कलात्मक निपुणता का ही महत्व होता है। बिहारी की कलात्मक निपुणता तो इन मुक्तकों से भी श्रेष्ठ है, किंतु उनका भाव इनकी अपेक्षा अत्यंत सतही है।

शृंगारपरक मुक्तकों का रीतिकाल में प्राचुर्य रहा है। इन मुक्तकों की बिहारी से तुलना करने पर ज्ञात होता है कि बिहारी रीतिकालीन सभी मुक्तककारों से श्रेष्ठ हैं। इनके लघु दोहों में भाव, प्रभाव एवं अनुभूति की जो विलक्षण तीव्रता विद्यमान है, वह अन्य कवियों के मुक्तकों में नहीं है। काव्य कला की दृष्टि से भी बिहारी इन सब में श्रेष्ठ हैं। उनके दोहों में जिस काव्यशास्त्रीय निपुणता का प्रदर्शन किया गया है, वह केशव को छोड़कर अन्यत्र

कहीं प्राप्त नहीं होती, किंतु केशव ने बड़े–बड़े पदों की रचना की है, दोहों जैसे लघु छंदों को नहीं। इस लघु मुक्तक में बिहारी ने सर्वश्रेष्ठ काव्याशास्त्रीय ज्ञान का परिचय दिया है।

टिप्पणी

आचार्य रामचंद्र शुक्ल एवं देव एवं पद्मकार के कवित्त–सवैये को इनस श्रेष्ठ मुक्तक माना है। उनके अनुसार देव एवं पद्माकर में जिस भाव प्रवाह के दर्शन होते हैं, वह बिहारी में नहीं है। उन्होंने भाव की आह्लादपूर्ण अलौकिक आनंदानुभूति के स्तर पर भी बिहारी के दोहों की सतही माना है। यह सत्य है कि देव एवं पद्माकर के मुक्तकों में भाव–प्रवाह बिहारी की अपेक्षा अधिक है, किंतु यह भी सत्य है कि कवित्त एवं सवैये में कवि को दोहे की अपेक्षा कई गुना अधिक अवसर प्राप्त होता है। उसके पास अपनी भावानुभूति को व्यक्त करने के लिए अधिक स्थान होता है। इस दृष्टिकोण से इन दोनों कवियों से भी बिहारी को श्रेष्ठ समझना समीचीन होगा जहां तक भाव के सतही होने का प्रश्न है। यह रीतिकालीन प्रवृत्ति रही है। इसके लिए अकेले बिहारी को दोषी नहीं ठहराया जा सकता।

यहां समालोचक की एक अन्य दृष्टि का भी अवलोकन आवश्यक है। प्रायः सभी मूर्द्धन्य विद्वानों ने यह स्वीकार किया है कि बिहारी 'गाथा सप्तशती' एवं 'अमरूक शतक' से अत्यधिक प्रभावित थे और उन्होंने अपने अधिकतर दोहों का भाव वहीं से ग्रहण किया है, किंतु इन्होंने बिहारी के दोहों को भावाभिव्यक्ति एवं कलात्मक चमत्कार के दृष्टिकोण से 'गाथा सप्तशती' की अपेक्षा उत्तम बताते हुए बिहारी को कविवर हाल (गाथा सप्तशती के रचियता) से भी श्रेष्ठ प्रभावित किया है।

समालोचना का यह दृष्टिकोण इन मूर्द्धन्य विद्वानों की निष्पक्षता पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर देता है। किसी भी काव्य, संगीत, वास्तु–निर्माण कला आदि में प्रारंभिक कल्पना (आइडिया) का महत्व सर्वाधिक होता है। किसी भी कलाकार, कथाकार, संगीतकार, काव्यकार, वास्तुकार की मौलिकता का मापदंड यही प्रारंभिक कल्पना है। किसी अन्य रचना से भाव को ग्रहण कर उसके आधार पर कोई कलाकार चाहे कितनी ही भव्य–मनोहारी कलात्मक कृति निर्मित कर ले वह द्वितीय श्रेणी का ही कलाकार कहलाता है। इसलिए बिहारी को हाल से श्रेष्ठ प्रमाणित करने का प्रयास एक 'पूर्वाग्रह युक्त' प्रयास है। इसमें कोई तथ्य नहीं। इन विद्वानों का कथन है बिहारी के अनुभाव योजना एवं प्रस्तुति हाल से श्रेष्ठ है। प्रथम तो इस कथन में ही कई भ्रामक तथ्य हैं। बिहारी के दोहों की बखिया तो सभी विद्वानों ने उधेड़ी है और उसमें छुपे विभिन्न रत्नों को ढूंढ़ निकाला है, किंतु 'गाथा सप्तशती' को पढ़ा भी शायद ही किसी ने हो। प्राकृत में होने के कारण यह ग्रंथ सभी की समझ में आने योग्य नहीं है। एक दो अपूर्ण व्याख्याएं कहीं प्राप्त भी होती हैं तो उसमें व्याख्याकार की मानसिकता का ध्यान न रखना भी भ्रम का निरूपण करने के लिए पर्याप्त है। हमारी दृष्टि में शृंगार मुक्तकों की परंपरा में 'गाथा सप्तशती' प्रथम मौलिक रचना है, जिसके काव्य वैभव का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इसके पश्चात लिखे गए संख्यावाचक सभी मुक्तक ग्रंथ इसी से प्रभावित रहे हैं।

गोवर्द्धनाचार्य ने 'आर्य सप्तशती' के रूप में इसका संस्कृत अनुवाद किया और यह कहते हुए पराजय स्वीकार कर ली कि संस्कृत भाषा के माध्यम से प्राकृत जैसा माधुर्य और

लालित्य उत्पन्न नहीं किया जा सकता। स्वयं बिहारी इस ग्रंथ से अत्यधिक प्रभावित रहे हैं और उनके अनेक दोहे इसके दोहों के भावानुवाद मात्र हैं।

टिप्पणी

उपर्युक्त सभी तथ्यों पर दृष्टिपात करने के पश्चात कहा जा सकता है कि संस्कृत प्राकृति आदि साहित्य की शृंगार मुक्तक परंपरा में कवि हाल सर्वश्रेष्ठ थे। बिहारी का स्थान इसमें दूसरा है। हिंदी साहित्य की मुक्तक परंपराओं में कबीर, तुलसी जैसे भक्तिकालीन मुक्तककार बिहारी से सभी दृष्टियों में श्रेष्ठ थे। काव्य चमत्कार की दृष्टि से बिहारी को इनसे सर्वश्रेष्ठ समझा जा सकता है। हिंदी साहित्य के शृंगारपरक मुक्तकों की परंपरा में बिहारी को सर्वश्रेष्ठ समझा जा सकता है। वह भी इस आधार पर कि दोहे जैसे लघु मुक्तक में उन्होंने अपने भावों की जैसी अद्‌भुत अभिव्यक्ति की है, वह अन्यत्र प्राप्य नहीं है। रीतिकालीन मुक्तककारों में तो वे निर्विवाद रूप से सर्वश्रेष्ठ हैं।

बिहारी के पश्चात आधुनिक युग तक जितने भी मुक्तककार हुए हैं, उनमें से अधिकांश बिहारी से प्रभावित रहे हैं, शेष इनकी काव्य प्रतिभा के समक्ष कहीं नहीं ठहरते हैं। इस कारण इन्हें रीतिकाल एवं आधुनिक काल का सर्वश्रेष्ठ मुक्तककार भी कहा जा सकता है।

मुक्तक का सीधा सादा अर्थ है– ऐसा काव्य जो कि पूर्वापर संबंध से मुक्त हो। बिहारी के युग में मुक्तकों का बहुत अधिक प्रचलन था और इसका स्वाभाविक कारण यह था कि "उस समय लंबा–चौड़ा प्रबंध सुनने की न तो किसी को फर्सत ही थी और न कवि को ही इतर काव्यरूपों के माध्यम से अपनी काव्य प्रतिभा प्रदर्शित करने का अवकाश था।" 'बिहारी सतसई' उस युग की एक मुक्तक काव्य परंपरा की एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि समझी जा सकती है। मुक्तक काव्य के गुण–दोषों की कसौटी पर बिहारी सतसई का मूल्यांकन करने से पूर्व मुक्तक काव्य की विशेषताओं का विवेचन किया जाना आवश्यक है। विद्वानों के अनुसार, मुक्तक काव्य की विशेषताएं इस प्रकार हैं। पूर्वापर निरपेक्षता, मार्मिक प्रसंगों का चयन, रसात्मकता, चमत्कार विधान, अर्थगौरव, समाहार शक्ति तथा अलंकार विधान। इन विशेषताओं का संक्षिप्त विवेचन और इन विशेषताओं के संदर्भ में 'बिहारी सतसई' की स्थिति नियमानुसार है–

पूर्वापर निपरेक्षता– मुक्तक की पहली शर्त उसकी पूर्वापर निरपेक्षता होती है। मुक्तक में किसी भी प्रकार का पूर्वापर संबंध नहीं होता। मुक्तककार के पास प्रबंधकाव्य जैसी विस्तृत भूमि नहीं होती, उसे तो सीमित ही नहीं, अत्यंत सीमित आकार की रचनाओं में असीमित भाव संपदा सजोनी होती है। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में, "बोलने का परिमित अधिकार होने के कारण उसे गिने चुने शब्दों में अभीष्ट भावाभिव्यक्ति की जिम्मेदारी निबाहने के लिए अपनी भाषा को चुस्त, प्रवाहपूर्ण और सशक्त बनाना पड़ता है। दूर तक फैले हुए जीवन क्षेत्र से उसे ऐसे मार्मिक खंड का चयन करना पड़ता है जिसका जीता जागता चित्र वह अपेन छंद की छोटी सी चित्रपटी पर प्रस्तुत कर सके।" इस प्रकार मुक्तककार का प्रत्येक मुक्तक अपनी पृथक और स्वतंत्र अर्थवत्ता रखता है। इस दृष्टि से बिहारी को निश्चय सफलता प्राप्त हो सकी है। उनका प्रत्येक दोहा एक स्वतंत्र और सर्वथा

टिप्पणी

पूर्वापर निरपेक्ष अर्थ का द्योतक होता है। तथापि इस स्वतंत्र अर्थ का प्रतीति का भार पाठक पर भी होता है क्योंकि मुक्तक का अर्थ तभी स्पष्ट हो पाता है जबकि उसके प्रसंग की सही कल्पना की जा सके। मुक्तक के प्रसंग की कल्पना स्वयं पाठक को करनी होती है और मुक्तक का वास्तविक आनंद तभी प्राप्त हो सकता है जबकि प्रसंग की कल्पना सही–सही की जाए। उदाहरण के लिए बिहारी का निम्न दोहा देखिए–

रबि बंदौ कर जोरि, ए सुनत स्याम के बैन।
भए हंसौं हैं सबुन के, अति उनखैहैं नैन।।

प्रस्तुत दोहे का अभिधार्थ तो केवल यही है कि जब श्रीकृष्ण ने कहा कि "हाथ जोड़ कर सूर्य की वंदना करो तो सभी के रोष से परिपूर्ण नेत्र हीस से युक्त हो गए।" यह अर्थ तनिक भी विशिष्टता नहीं रखता। इस दोहे के मूल में निहित प्रसंग की कल्पना करने पर इसका यही अर्थ विशेष रसानुभूति प्रदान करेगा। प्रसंग की कल्पना इस प्रकार की जा सकती है– गोपिकाएं अपने वस्त्र उतार कर नदी में स्नान कर रही थीं। तभी कृष्ण वहां पहुंचे और चुपके से उनके वस्त्र उठाकर ले गए। गोपिकाओं ने असहाय हो कर अपने वस्त्र मांगे और इस याचना में उन्होंने अपने कुचों को अपने हाथों से आच्छादित कर लिया। श्रीकृष्ण तो उनके कुचों को देखने के लिए लालायित थे अतः उन्हें एक युक्ति सूझी और उन्होंने उन गोपिकाओं को कहा कि 'हाथ जोड़ कर सूर्य की वंदना करो।' श्रीकृष्ण को ज्ञात था कि हाथ जोड़ने पर गोपिकाओं के कुच स्पष्टतः दिखाई पड़ेंगे। दूसरी ओर जब गोपिकाओं को श्रीकृष्ण का मूल मंतव्य स्पष्ट हो गया तो उनकी आंखों में भी रोष के स्थान पर हंसी उतर आई। उपर्युक्त दोहे के इस अर्थ का प्रतीति किसी भी अन्य छंद अथवा मुक्तक की अपेक्षा नहीं रखती।

मार्मिक प्रसंगों का चयन– मुक्तकों के अर्थद्योतन में मार्मिक प्रसंगों के चयन क महत्व बहुत अधिक होता है। इस संबंध में एक विद्वान आलोचक कहते हैं कि "मुक्तकों में मर्मस्पर्शी वृत्तों का चुनाव इतना साफ होना चाहिए कि पाठक उस तक शीघ्र पहुंच सके और चुनाव भी सामान्य जीवन क्षेत्र से हो ही होना चाहिए, जिससे उसमें सबको अनुरंजित करने की क्षमता हो। जिन मुक्तकों में प्रसंग के आक्षेप में कठिनाई करनी पड़ती है और जिसके लिए नाना प्रकार के अवतरणों का आपेक्ष संभाव्य है। उन्हें मुक्कों की दृष्टि से उतना उत्तम नहीं कहा जा सकता।" जहां तक बिहारी सतसई का प्रश्न है, उसमें मार्मिक प्रसंगों का चयन और निर्वाह अत्यंत सफल रहा है। बिहारी सतसई का मूल स्वर शृंगार का है अतः स्वभावतः उसमें शृंगार प्रसंगों की ही बहुलता है। उदाहरण के लिए निम्न दोहा देखिए जिनमें नायिका राधा अपनी गायें नायक श्रीकृष्ण की गायों के साथ मिला देती है। कवि ने नायक–नायिका के मिलन के लिए उपयुक्त प्रसंग की कल्पना की है। दोहा इस प्रकार है–

उनकी हरकी हंसिकै, इतै इन सौंपी मुस्काई।
नैन मिलै मन मिलि गए दोऊ मिलावत गाई।।

कवि ने यह प्रसंग सामान्य जीवन से ग्रहण किया है। अतः उसके अर्थ की प्रतीति में किसी प्रकार की कठिनाई नहीं है। इसी प्रकार एक और दोहा देखिए जिनमें नायक और नायिका (गुरुजनों की उपस्थिति में) नयनों ही नयनों में पूरा प्रेमलाप कर लेते हैं–

कहत, नटत, रीझत, खिजत, मिलत, खिलत, लजियात।
भरै भौनं मैं करत हैं, नैननु हीं सब बात।।

टिप्पणी

बिहारी ने अपने मार्मिक प्रसंगों का चयन अधिकांशतः दैनिक और सामान्य जीवन से किया है। दूसरों के उपदेश देने वाले कथावाचकों की कलई खोलते हुए बिहारी एक स्थल पर कहते हैं कि–

परियत–दोष पुरान सुनि, लखी मुलकी सुखदानि।
कसु करि राखी मिश्र हूं मुंह–आई मुसुकानि।।

अर्थात जब नायिका ने कथावाचक मिश्र जी के मुख से परस्त्रीगमन की चारित्रिक दुर्बलता की बात सुनी तो वह मुस्करा पड़ी (क्योंकि उसे मिश्र जी की वास्तविकता का पता था। मिश्र जी और उस नायिका में प्रेमी और प्रेमिका के संबंध रहे होंगे)। नायिका को मुस्कराते देखकर नायक अर्थात मिश्र जी को भी हंसी आ गई किंतु (बैठे हुए श्रोताओं की उपस्थिति के कारण) उन्होंने अपनी मुस्कान पर नियंत्रण पा लिया। इस विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि "बिहारी ने यद्यपि जीवन और जगत के व्यापक क्षेत्र को अपनाक ाव्य विषय बनाया है, परंतु इनमें से चुना है उन्हीं प्रसंगों को जो अत्यंत मार्मिक और रसोद्रेक करने वाले हैं। मार्मिक प्रसंगों के चयन में ही मुक्तक की सफलता निहीत होती है और यह कहना अन्यथा न होगा कि बिहारी इस दृष्टि से सफल हो नहीं पूर्ण सफल मुक्तककार माने जा सकते हैं।"

रसात्मकता– मुक्तक काव्य का ही नहीं, संपूर्ण काव्य का प्राणतत्व उसकी रसात्मकता होती है। जिस काव्य में रसात्मकता नहीं है, वह काव्य की श्रेणी में परिगणित किये जाने योग्य नहीं होता। मुक्तक के सीमित आकार में भले ही कितनी ही रसात्मकता भर दी जाए फिर भी उसमें प्रबंधकाव्य जैसी रसमयता के लिए अवकास नहीं रहता। कदाचित इसी कारण मुक्तक की रसात्मकता का प्रभाव अपेक्षताया थोड़े समय तक रहता है। इस स्थिति को स्पष्ट करते हुए आचार्य शुक्ल कहते हैं कि "मुक्तक में प्रबंध के समान रस की धारा नहीं रहती जिसमें कथा–प्रसंग की परिस्थिति में अपने को भूला हुआ पाठक मग्न हो जाता है और हृदय में एक स्थायी प्रभाव ग्रहण करता है। इसमें तो रस के ऐसे छींटे पड़ते हैं जिनसे हृदय की कलिका थोड़ी देर के लिए खिल उठती है।" मुक्तक में जीवन के संघटित अथवा उसके आंशिक रूप का चित्रण नहीं होता बल्कि किसी एक रमणीय खंड दृश्य के बल पर रसात्मकता की सृष्टि की जाती है।

बिहारी सतसई में सीमित आकार वाले दोहों के भीतर रसात्मकता लबालब भरी गई है। उदाहरण के लिए बिहारी का यह दोहा देखिए जिसमें गुरुजनों की उपस्थिति में ही नायक और नायिका ने मिलने का समय और स्थान निर्धारित कर लिया है–

लखि गुरुजन–बिच कमल सौं, सीसु छुवायौ स्याम।
हरि–सनमुख करि आरसि, हियैं लगाई बाम।।

अर्थात जब नायक ने अपनी प्रेमिका राधिका को गुरुजनों के बीच बैठे हुए पाया तो उसने कमल को उठा कर अपने सिर से छुआ लिया और इस प्रकार यह व्यंजित किया कि तेरे कमल जैसे चरणों को मैं अपने सिर पर रखता हूं, तुम मिलने का कोई न कोई उपाय

टिप्पणी

अवश्य निकालो। नायिकाने नायक की बात समझने में कोई भूल नहीं की और उसने अपनी आरसी को नायक श्रीकृष्ण को सामने करके, उसका प्रतिबिंब लेकर अपने हृदय से छुआ लिया। उसकी इस क्रिया से यह व्यंजित होता है कि उसने नायक को अपने हृदय में बसा रखा है और वह मिलने की प्रार्थना स्वीकार करती है। इस दोहे में यदि 'हरि' का अर्थ सूर्य से लगाया जाए तो दोहे की दूसरी पंक्ति का अर्थ इस प्रकार होगा– "हे नायक जब आरसी में प्रतिबिंबित सूर्य पयोधरों की तरह ऊंचें पहाड़ों के पीछे चला जाएगा अर्थात जब तक संध्या हो जाएगी तब मैं तुमसे मिलूंगी।" बिहारी ने रस व्यंजना के लिए अनुभावों का आश्रय भी लिया है। बिहारी का अनुभाव विधान अत्यंत समृद्ध है और इसी कारण उनके दोहों में रसात्मकता का भी बाहुल्य है।

चमत्कार विधान– बिहारी का युग वैभव का और विलास का युग था अतः तत्कालीन काव्य में चमत्कार प्रदर्शन के प्रति प्रबल आग्रह व्यक्त हुआ है। काव्य शास्त्र में चमत्कार विधान के अंतर्गत मुख्यतः दस भेदों की चर्चा आती है। अविचारित रमणीय, विचार्यमाण रमणीय, संपूर्ण सूक्ति व्यापि, सूक्त्येकदेश व्यापि, शब्दगत, अर्थगत, अलंकारगत, रसगत तथा प्रख्यात वृत्तिगत। 'बिहारी सतसई' में चमत्कार विधान के इन सभी भेदों के उदाहरण मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए रसगत चमत्कार का नमूना देखिए–

छिनकु उघारति, छिनु छुवित, राखति छिनकु छिपाइ।
सबु दिनु पिय–खण्डित अधर, दरपन देखत जाई।।

प्रस्तुत दोहे में संयोग के क्षणों के कारण उत्पन्न हुए हर्ष का चमत्कार वर्णित हुआ है। नायिका का आलिंगन करते हुए नायक ने उसके को काट लिया जिससे कि उसके अधर पर क्षत हो गया है। नायिका कभी उस क्षत को उघाड़ती है कभी उसको स्पर्श करती है और कभी उसे छिपा लेती है। इसी प्रकार अपने इस क्षतयुक्त अधर को सारे दिन दर्पण में देखती रहती है। इसी प्रकार उक्ति वैचित्र्य का एक उदाहरण देखिए–

लाज गहौ बेकाज कत घेरि रहें, घर जांहि।
गोरसु चाहत फिरत हौं गोरसु चाहत नांहि।।

अर्थात गोपी (नायिका) श्रीकृष्ण (नायक) से कह रही है कि "हे नायक, तनिक लज्जा करो, बिना कारण मेरा मार्ग क्यों रोक रहे हो। मुझे घर क्यों नहीं जाने देते। मैं बहुत अच्छी तरह जानती हूं क गोरस अर्थात देही के इच्छुक नहीं हो, तुम्हें तो, गोरस अर्थात रतिजन्य रस की प्यास है।" गोपी का आशय यह भी है कि "हे नायक, मैं तुम्हारी इच्छा से अच्छी तरह परिचित हूं, घर जा रही हूं (अपनी इच्छापूर्ति के लिए) तुम वहीं आ जाओ।" विस्तारभय के कारण चमत्कार विधान के अन्य उदाहरण प्रस्तुत नहीं किए जा रहे हैं। दो शब्दों में कहा जा सकता है कि "बिहारी का काव्य चमत्कार से परिपूर्ण है। यदि खोजा जाए तो बिहारी के प्रत्येक छंद में ही किसी न किसी प्रकार का चमत्कार मिल ही जाएगा।"

अर्थगौरव– अर्थगौरव का आशय है थोड़े–थोड़े शब्दों के भीतर अधिक से अधिक भावों की व्यंजना। इस दृष्टि से बिहारी निश्चय ही बहुत सफल मुक्तककार हैं। रीतिकालीन काव्य–परंपरा में 'बिहारी सतसई' के दोहों जैसा अर्थ गौरव किसी भी अन्य कवि की

रचनाओं में नहीं मिलता है। बिहारी ने अर्थ गौरव की सृष्टि के लिए विभिन्न प्रकार के साधनों का प्रयोग किया है जैसे कि श्लेष, ध्वनि, वक्रोक्ति, मुद्रा आदि। उदाहरण के लिए बिहारी का निम्न दोहा देखिए जिसमें कवि ने वक्रता का प्रयोग करके अर्थगौरव की सृष्टि की है–

टिप्पणी

सोहतु संगु समान सौं, यहै कहै सबु लोगु।
पान–पींक ओठनु बनै, काजर नैननु जोगु।।

प्रस्तुत दोहे का अभिधार्थ इस प्रकार है– संसार में प्रत्येक वस्तु की शोभा समान गुणों वाली वस्तुओं के साथ ही होती है। यह बात सभी लोग स्वीकार करते हुए आए हैं। (कदाचित इसी कारण) पान की पीक होठों की शोभा बढ़ाती हैं और काजल नेत्रों की कांति में वृद्धि करता है। यदि वक्रता का प्रयोग किया जाए तो इस दोहे का अर्थ अत्यंत चमत्कारपूर्ण होगा। कोई नायक परस्त्री के साथ रतिक्रीड़ा करके आया है और उसी रतिक्रीड़ा के चिह्न उसके होठों और पलकों पर अंकित है। नायक के होठों पर स्त्री के नेत्रों का काजल लगा हुआ है और उसकी पलकों पर नायिका के पान के पीक की लाली लगी हुई है। जिसे देखकर नायिका तत्काल सारी स्थिति को समझ लेती है और नायक से कहती है कि "हे नायक, तुम्हारे होठों पर नायिका का काजल और पलकों पर नायिका के पान की लाली अंकित है। तुम यह क्यों भूल जाते हो कि प्रत्येक पदार्थ समान धर्म वाले पदार्थों में ही सुशोभित होता है। पान की पीक होठों पर और काजल नयनों में अच्छा लगता है। तुम्हारी स्थिति ठीक उल्टी है जो तुम्हारे कुकृत्य की कलई स्वयं खोल रही है।" इसी प्रकार एक अन्य दोहा देखिए जिसमें कतिपय शब्दों का श्लिष्ट प्रयोग से कवि ने अर्थगौरव की सृष्टि की है। दोहा इस प्रकार है–

मनमोहन सौं मोहु करि, तू घनस्यामु निहारी।
कुंजबिहारी सौं बिहरि, गिरधारी उर धारि।।

प्रस्तुत दोहे में मनमोहन, घनस्याम, कुंजबिहारी तथा गिरधारी– इन चार शब्दों का श्लिष्ट प्रयोग किया गया है जिसके फलस्वरूप इस दोहे के दो अर्थ निकलते हैं– भक्तिपरक और शृंगारपरक। शृंगारपरक अर्थ इस प्रकार होगा– नायिका की एक सखी उससे कह रही है कि 'हे नायिका तू बादलों (घनस्यामु) की ओर देख जो कि काम–भावना को जागृत करने वाले हैं। ऐसे समय में तू मान मत कर और मन को मोहने वाले (मनमोहन) के प्रति प्रेम का भाव प्रकट कर। कुंजों में बिहार करने वाले (कुंजबिहारी) के साथ विहार कर और अपने गिरिवत उन्नत कुचों (गिरधारी) से युक्त हृदय में अपने प्रियतम को धारण कर।'

इस दोहे में भक्तिपरक अर्थ इस प्रकार होगा, "हे मन, यदि तू किसी के प्रति मोह ही रखना चाहता है तो सभी के मन को मोहित करने वाले मनमोहन के प्रति प्रेम–भाव रख और यदि तू किसी के रूप को ही निहारना चाहता है तो बादलों की तरह श्यामवर्ण वाले घनश्याम को देख। हे मन, यदि तू किसी के साथ विहार करना चाहता है तो कुंजों में विहार करने वाले श्रीकृष्ण के साथ विहार कर और यदि तू किसी को अपने हृदय में धारण करना ही चाहता है तो गोवर्धन पर्वत धारण करने वाले श्रीकृष्ण को धारण कर।" उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि बिहारी के दोहे अर्थगौरव की दृष्टि से भी सवर्था सफल रहे हैं।

टिप्पणी

समाहार शक्ति– मुक्तककार की सफलता उसकी समाहार शक्ति पर भी निर्भर करती है। एक विद्वान आलोचक के शब्दों में, "यदि प्रबंध काव्य एक वनस्थली है तो मुक्तक काव्य एक चुना हुआ गुलदस्ता।" मुक्तक की यही संक्षिप्तता उसके क्षणिक प्रभाव के कारण होती ह। मुक्तककार को अत्यल्प आकार के मुक्तक अथवा छंद में अधिकतम भावसंपदा की प्रतिष्ठा करनी होती है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए कवि को समाहार शक्ति का आश्रय लेना होता है। मुक्तककार को कल्पना और भाषा– दोनों क्षेत्रों में समाहार शक्ति का परिचय देना होता है। इस दृष्टि से बिहारी सतसई निश्चय ही एक सफल रचना समझी जाती है। कल्पना की समाहार शक्ति के उदाहरण के रूप में बिहारी का निम्नलिखित दोहा देखिए–

जुरे दुहुन के दृग झमकि, रुके न झीनैं चीर।
हुलकी फौज हरौल ज्यौं, परे मोल परै भीर।।

नायिका और नायक दोनों अचानक मिल जाते हैं। नायिका को लज्जा आ जाती है और वह घूंघट कर लेती है किंतु घूंघट का वस्त्र महीन है। अतः नायक नायिका के नेत्र परस्पर एक दूसरे से मिल जाते हैं।

अलंकार विधान– अलंकार विधान के अंतर्गत केवल अलंकारों का प्रयोग ही नहीं आता अपितु सभी प्रकार के काव्य सौंदर्य इसी अलंकार विधान के अंतर्गत आता है। मुक्तक में प्रत्येक शब्द का प्रयोग साभिप्राय और सोद्देश्य होता है। अतः कवि को प्रत्येक शब्द का प्रयोग करना होता है। इस दृष्टि से भी बिहारी सतसई एक अत्यंत सफल कृति समझी जाती है। उदाहरण के लिए बिहारी का निम्न दोहा देखिए–

भूषन–भारु संभारिहै, क्यों इहिं तन सुकुमार।
सुधे पाइ न धरु परैं, सोभा ही कैं भार।।

प्रस्तुत दोहे में नायिका की सखी उसे अभिसार के लिए ले जा रही है किंतु नायिका आभूषण पहनने में समय नष्ट कर रही है। ऐसी स्थिति में नायिका उसे यही समझाती है कि "हे सखी, अब आभूषणों का चक्कर छोड़ो और अभिसार के लिए चलो। तुमने अधिक देर लगा दी तो संभव है कि प्रतीक्षारत नायक निराश होकर वापस चला जाए।" निश्चय ही कवि ने एक साधारण–सी बात में वक्रता के माध्यमा से नवीनता ला दी है।

कवि ने भाषा को सशक्त और प्रभावोत्पादक बनाने तथा भाव–सौंदर्य की सृष्टि करने के लिए अलंकारों का भी समुचित प्रयोग किया है। अलंकारों के प्रयोग में जो सहजता और स्वाभाविकता बिहारी में मिलती है, वह रीतिकाल के अन्य कवियों की रचनाओं में नहीं मिलती। अतः स्वभावतः उनके अलंकारों के प्रयोग से भावोत्कर्ष हुआ है, अर्थ में नवीनता और चमत्कार की उत्पत्ति हुई है। उदाहरण के लिए बिहारी का निम्न दोहा देखिए, जिसमें उन्होंने एक विरहिणी नायिका की विरह–व्यथा का वर्णन करने में विरोधाभास अलंकार का प्रयोग किया है– ,

जब जब वै सुधि कीजिए, तब तब सब सुधि जाहिं।
आंखिनु आंखि लगी रहैं, आंखैं लागत नाहिं।।

इसी प्रकार निम्न दोहा देखिए जिसमें कवि ने नायिका की दयनीय स्थिति का वर्णन किया है। कवि ने उपमा अलंकार का प्रयोग करके भावोत्कर्ष उत्पन्न किया है। दोहा इस प्रकार है–

टिप्पणी

नैक न जानी परति, यौं परयौ बिरह तनु छामु।
उठतु दियै लौं नाँदि, लियैं तिहारो नामु।।

इसी प्रकार श्लेष अलंकार का उदाहरण देखिए–

अजौं तर्‌यौन ही रह्यौ, श्रुति सेवन इक रंग।
नाक–बास–बेसरि लह्यौ बसि मुकुतनु कै संग।।

उपर्युक्त विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि एक मुक्तककार रूप में बिहारी सतसई एक अत्यंत सफल रचना है। सफल मुक्तक में जो भी गुण हो सकते हैं, कवि ने उन सभी गुणों का सम्यक निर्वाह किया है। बिहारी सतसई में कवि की मूल दृष्टि भावोत्कर्ष के प्रति रही है। अलंकारों का सहज और स्वाभाविक प्रयोग करके कवि ने साधारण–सी दीखने वाली घटनाओं को नवीनता प्रदान की है। इसके साथ ही कवि ने दोहे के अत्यलप आकार में अधिकतम भाव–संपदा को प्रतिष्ठित करने का सफल प्रयत्न किया है। कदाचित इसी कारण उनके प्रत्येक दोहे में गूढ़ार्थ छिपा रहता है जिसे डुबकियां लगा–लगाकर प्राप्त किया जाता है। बिहारी के दोहे में एक सफल मुक्तक की सभी विशेषताओं का सफल निर्वाह हुआ है और इसका समस्त श्रेय उनकी मौलिक प्रतिभा को दिया जाना चाहिए। यही कारण है कि बिहारी सतसई के दोहों को नावक के तीर कहा गया है जो देखने में छोटे लगने पर भी लक्ष्य साधन की दृष्टि से अत्यंत सफल सिद्ध होते हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

25. वह काव्य रचना जो छोटी, स्वतंत्र एवं अपने आप में पूर्ण होती है क्या कहलाती है?
26. मुक्तक काव्य परंपरा किस वेद से प्रारंभ हुई?
27. हिंदी में मुक्तक काव्य परंपरा किससे प्रारंभ हुई मानी जाती है?
28. रीतिकाल एवं आधुनिक काल का सर्वश्रेष्ठ मुक्तककार किसे कहा जाता है?
29. मुक्तक काव्य की पहली अनिवार्य शर्त क्या होती है?
30. 'अर्थगौरव' का आशय स्पष्ट कीजिए।

4.9 पाठांश

1.

मेरी भव–बाधा हरौ, राधा नागरि सोई।
जा तन की झांई परै स्यामु हरित–दुति होई।।1।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा बिहारी विरचित 'सतसई' से उद्धृत है। यह सतसई का प्रथम दोहा है जिसमें श्रीराधाजी से संसार के विभिन्न दुःखों को दूर करने की प्रार्थना की गई है। यह दोहा ग्रंथ के मंगलाचरण के रूप में प्रयुक्त हुआ है। सतसई में विभिन्न रसों के दोहे होते हुए भी प्रधान रूप से शृंगार रस दोहों की उपस्थिति है। अतः सतसई में शृंगार रस के मुख्य प्रवर्तक श्रीराधाकृष्ण के मंगलाचरण का प्रयोग उपयुक्त है। श्रीराधा तथा श्रीकृष्ण में भी शृंगार रस में प्रधानता श्री राधिका जी ही है। अतः कवि ने श्री राधिकाजी ही से अपनी 'भव–बाधा' हरने की प्रार्थना की है–

टिप्पणी

व्याख्या

जिसके तन की झांईं (परछाई) पड़ने से श्रीकृष्ण हरित–द्युति हो जाते हैं, ऐसी वही राधा नागरी मेरी भव–बाधा को दूर करें। अर्थात् राधा जी गौर वर्ण हैं और श्रीकृष्ण श्याम वर्ण हैं। गौर वर्ण सुनहले वर्ण के रूप में प्रयुक्त होता है। और पीले और नीले रंगों के मेल से हरे रंग का बनना लोक प्रसिद्ध है इसी भाव को ध्यान में रखकर कवि के द्वारा श्रीकृष्ण को राधा जी की परछाई के कारण हरित द्युति कहा गया है। इस प्रकार उनके रूप की प्रशंसा करके कवि द्वारा उनसे सांसारिक कष्टों से मुक्त होने की प्रार्थना की गई है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहा आशीर्वादात्मक मंगलाचरण है।
2. 'झांई' के तीन अर्थ हो सकते हैं (i) परछाईं (आभा) (ii) झांकी (झलक) (iii) ध्यान
3. प्रस्तुत दोहे में श्लेष अलंकार है।

2.

अपने अंग के जानि कै जोबन–नृपति प्रबीन।
स्तन, मन, नैन, नितंब की बड़ौ इजाफा कीन।।2।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा बिहारी विरचित 'सतसई' से अवतरित है।

नायक नव यौवना मुग्धा के शरीर तथा उत्साह में वृद्धि देखकर एवं उस पर आकर्षित होकर, उसकी प्रशंसा करता हुआ, मन ही मन कहता है कि–

व्याख्या

यौवन रूपी प्रवीण राजा ने उनको अपने अंग का अर्थात् पक्ष का समझकर स्तनों, मन, नेत्रों एवं नितंबों में बड़ी वृद्धि कर दी। अर्थात् नव यौवना के रूप को बढ़ाने वाले चार अंगों का विशेष रूप से सहयोग माना जाता है। किसी भी सुंदरी के ये चार अंग स्तन, मन, नेत्र एवं नितंब ही बडे हुए करते हैं जिनकी वृद्धि युवावस्था के कारण होती है।

विशेष

1. युवावस्था को राजा रूप में प्रस्तुत करने से मानवीकरण अलंकार का परिलक्षण होता है।
2. 'इजाफा' शब्द अरबी भाषा का शब्द है जिसका अर्थ होता है वृद्धि।
3. जब कोई बादशाह, अपने किसी सरदार अथवा कर्मचारी को अपना शुभचिंतक समझकर, अथवा उसके किसी अच्छे काम से प्रसनन होकर, उसकी जागीर अथवा वेतनादि में वृद्धि कर देता है। यह वृद्धि ही इज़ाफा कहलाती है। कवि ने योवन का भी इस अर्थ में प्रयोग किया है।

टिप्पणी

3.

अर तैं टरत न बर–परे, दई मरक मनु मैन।
होड़ा होड़ी बढ़ि चले चितु, चतुराई, नैन।।3।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा बिहारी विरचित 'सतसई' से उद्धृत है।

प्रस्तुत दोहे में नवयौवना नायिका की बढ़ती हुई सुंदरता की अपने ही मन में प्रशंसा करता हुआ कवि कहता है कि–

व्याख्या

युवावस्था के कारण उमंग से भरे हुए चित्त, चतुराई और नयन अपने अपने हठ से नहीं हटते, और परस्पर प्रतिस्पर्द्धा में निरंतर बढ़ चले हैं मानो मदन ने ही इनहें बढ़ावा दे रखा हो। अर्थात् नायक मन ही में नवयौवना के सौंदर्य की प्रशंसा करते हुए चित्त चतुराई एवं नयन के बढ़ते हुए सौंदर्य से अत्यधिक आकृष्ट हैं और उत्प्रेक्षा का प्रयोग करता हो।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में उत्प्रेक्षा अलंकार है। इसमें 'मनु' शब्द उत्प्रेक्षा वाचक है।
2. दोहे में अनुप्रास अलंकार का भी परिलक्षण होता है।

4.

औरै–ओप कनीनिकनु गनी धनी–सिरताज।
मनी धनी के नेह की बनीं छनीं पट लाज।।4।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा 'बिहारी सतसई' से अवतरित है। एक सखी अपनी नव यौवना सखी के हृदय में उत्साह का संचार बढ़ाने के लिए यह दोहा कह रही है। तब यौवना नायिका की आंखों की पुतलियों में यौवनागमन के कारण विलक्षण प्रभा तथा लज्जा का संचार हो गया है। सखी कहती हैं कि–

व्याख्या

अब तू और ही कान्तिमय कनी निकओं अर्थात् पुतलियों के कारण अनेक सपत्नीयों में शीर्षस्थ हो गई हो। क्योंकि ये तेरी कनी निकाएं लज्जा लयी कपड़े में लिपटी हई पति के स्नेह की मजियां बन गई हैं।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में काव्यलिंग अलंकार है।
2. 'सिरताज' फारसी समस्त शब्द 'सरताज' का रूपांतर है।

टिप्पणी

5.

सनि–कज्जल चख–झख–लगन उपज्यौ सुदिन सनेहु।
क्यौं न नृपति है भोगवै लहि सुदेसु सबु देहु।।5।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा बिहारी विरचित 'सतसई' से उद्धृत है।

किसी उपयुक्त समय पर नायिका के कज्जल कलित नेत्रों से देखने के पश्चात् नायक के ह्रदय में प्रेम उत्पन्न हुआ; जो उसके सम्पूर्ण शरीर में व्याप्त हो गया। नायक की प्रेमान्वित अवस्था का वर्णन सखी बड़ी चतुराई से नायिका के प्रति करके नायिका को नायक से मिलाने की अभिलाषा करती हुई कहती है कि–

व्याख्या

जिसमें कज्जल रूपी शनि स्थित हैं, ऐसी चख रूपी मीन लग्न अर्थात् अत्यन्त शुभ मुहूर्त्त में उत्पन्न स्नेह रूपी बालक सब देह–रूपी क्षेत्र को पाकर राजा बनकर क्यों उसका भोग नहीं करे। अर्थात् यह तो विधि ने ही निश्चित कर रखा है। जो जात मीन लग्न में उत्पन्न होकर शनि की स्थिति को प्राप्त किए हुए हो वह निश्चित रूप से राजा होगा, ठीक वैसी स्नेह रूपी बालक की स्थिति है जो नायक संपूर्ण शरीर का राजा बन गया है।

विशेष

1. रूपक अलंकार है।
2. दोहे मे काकु व्यंजना का भी प्रयोग हुआ है।
3. 'चख महत्व लगन' में श्लेष अलंकार हैं।
   (i) एक अर्थ है पृथ्वी तथा सूर्य की विशेष स्थिति के समय
   (ii) और दूसरा आँखों के आँखों से मिलने के समय

6.

सालति है नटसाल सी, क्यौं हूं निकसति नांहि।
मनमथ–नेजा–नोक सी खुभी खुभी जिय मांहि।।6।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा बिहारी विरचित 'सतसई' से उद्धृत हुआ है।

प्रस्तुत दोहे में कर्णाभूषण पर आकर्षित नायक की, नायिका की किसी सखी अथवा दूती से मिलने की उत्सुकता की अभिव्यंजना बताई गई है। यहाँ नायक नायिका की सखी से कहता है कि–

व्याख्या

हे दूती। उसकी (नायिका की) कामदेव के भाले की नोक सी खुमी (कर्णाभूषण) मेरे जी अर्थात् ह्रदय में धँसी हुई नटसाल अर्थात् वाण इत्यादि की नोंक सी सालती अर्थात् खटकती है, ओर किसी प्रकार निकलती नहीं।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में उपमा अलंकार है।
2. 'खुमी खुमी' में यमक अलंकार है।
3. प्रस्तुत दोहे में समरण अलंकार है।

7.

जुवति जोनह मैं मिलि गई, नैंक न होति लखाइ।
सौंधे–कैं डोरैं लगी अली चली संग जाइ।।7।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा बिहारी विरचित 'सतसई' से लिया गया है। शुक्ला भिसारिका नायिका की अंतरंगिनी सखियाँ उसके शरीर के सौन्दर्य तथा सुगन्ध का वर्णन कर रही है–

व्याख्या

देखो यह युवती अपनी गौर कान्ति के कारण चाँदनी में कैसी मिल गई है कि कुछ भी लक्षित नहीं होती। अतः उसको दृष्टि द्वारा लक्षित करके उसके संग चलना असंभव है पर पल पली अर्थात् भ्रमर सी सखी उसके शरीर की सुगंध के डोरे से लगी हुई उसके संग चली जा रही है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में उपमा प्रयोग हुआ है।
2. अली–सखी। यदि यह शब्द यहाँ श्लिष्ट माना जाय, तो चमत्कार बढ़ जाता है। एक अर्थ सखी और दूसरा अर्थ भ्रमर करने से इसका अर्थ भ्रमर सी सखी हो जाता है।

8.

हौं रीझी, लखि रीझि हौं छबिहिं छबीले लाल।
सोनजुही सी होति दुति–मिलत मालती माल।।8।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा बिहारी विरचित 'सतसई' से उद्‌धृत है। प्रस्तुत दोहे में नायिका सखी अथवा दूती नायक के ह्रदय में नायिका दर्शन की उत्कंठा को उत्पन्न करना चाहती है।

व्याख्या

स्वयं छबीले समझने वाले लाल। मेरी सखी (नायिका) इतनी सुंदर है कि मैं तो उस पर टीके ही जा रही हूं। अगर तुम भी मेरी सखी को देखोगे तो रीझ पड़ोगे। उसका सुनहला रूप सौंदर्य ऐसा है कि उसकी कांति से मिलते ही माला में श्वेत मालती सुनहली हो जाती है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में लुप्तोपमा अलंकार है।

2. उसमें तद्गुण भी हैं क्योंकि दो भिन्न–भिन्न गुण मिलकर समान हो गए।

3. 'छ' एवं 'म' वर्णों की आकृति से अनुप्रास अलंकार है।

टिप्पणी

9.

पिय–बिछुरन कौ दुसहु दुखु, हरषु जात प्यौसार।
दुरजोधन लौं होति दुति–मिलत मालती माल ।।15।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा बिहारी विरचित 'सतसई' से उद्धृत है। पहले तो नायिका मुग्ध थी तो उसे पीहर जाते समय पति वियोग का कष्ट नहीं होता था पर अब वह मध्यावस्था में पहुंच चुकी है। अतएत उसमें पीहर जाने से हर्ष के साथ नायक के बिछोह का भी कष्ट हो रहा है। अर्थात सुख एवं दुख दोनों की अनुभूति एक साथ है जिससे वह अत्यंत परेशान है। उसकी इसी दशा का वर्णन नायिका सखी से कर रही है।

व्याख्या

पीहर जाते समय इस मेरी सखी को एक तो पीहर वालों के देखने की संभावना का हर्ष है और दूसरे प्रियतम से दूर होने का असहनीय दुख है। इस कारण इस बार यह दुर्योधन की भांति प्राण तजते समय की दशा में देखी जाती है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में उपमा अलंकार है।
2. दुरजोधन = दुर्योधन
3. देखियती = देखी जाती है

10.

डारे ठोड़ी–गाड़, गहि नैन–बटोही, मारि।
चिलक–चौंध मैं रूप–ठग, हांसी–फांसी डारि।।17।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा बिहारी विरचित 'सतसई' से उद्धृत है। प्रस्तुत दोहे में नायक अपने मन ही में नायिका की शोभा का वर्णन कर रहा है। नायक के नेत्र नायिका के रूप सौंदर्य को देखकर अत्यंत आकर्षित होकर उसकी हतु (ठोड़ी) में पड़े गड्ढे पर जा टिके हैं और अब अत्यधिक शोभा बढ़ने से दूर नहीं हो पा रहे हैं। इसी बात को नायक अपने मन कहता है कि–

व्याख्या

उसके (नायिका) सौंदर्य ने चमचमाती कांति में मेरे नयनों रूपी पथिकों को छेरकर हंसी रूपी फांसी डाल, मारकर ठोड़ी के गड्ढे में डाल दिया एवं वे अब दीन पड़े हुए हैं।

टिप्पणी

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में रूपक अलंकार का प्रयोग हुआ है।
2. यह कवि काव्यत्व प्रतिभा को दर्शाता हुआ दोहा है।

11.

अजौ तरयौना हीं रह्यौ श्रुति सेवत इक–रंग।
नाक–बास बेसारि लह्यौ बसि मुकुतनु कैं संग।।20।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा बिहारी विरचित 'सतसई' से उद्धृत है।

प्रस्तुत दोहे में कवि के द्वारा सत्संगति की प्रशंसा की गई है। इसके कवि ने बेसार के उदाहरण का सहारा लिया है। कवि कहता है कि

व्याख्या

आज तक तरयौना (कर्णाभूषण) एक ढंग से ज्यों का त्यों कानों का सेवन करता हुआ अंधोवर्ती तर्यौना ही रहा किंतु बेसर मोतियों का साथ पाकर नासिका का बास बन गया अर्थात बेसर जो अंधोर्ती है वह मोतियों जैसे अच्छे की संगति से श्रेष्ठ बन गया।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में श्लेष अलंकार है।
2. श्रुति के दो अर्थ हैं (क) वेद (ख) कान
3. तुलनीय "सत्संगति कथम! किं न करोति पुंसाम्"

12.

जम–करि–मुंह–तरहरि पर्यौ, इहिं धरहरि चित लाउ।
विषय–तृषा परिहरि अजौं नरहरि के गुन गाउ।।21।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा बिहारी विरचित 'सतसई' से उद्धृत है।

प्रस्तुत दोहे में कवि स्वयं अपने मन को समझा रहा है। यहां कवि अपने मन से कह रहा है कि

व्याख्या

हे मन! तू यम रूपी हाथी के मुंह के नीचे पड़ा हुआ है। यह सब निश्चय कर चित्त लगा और संपूर्ण विषयों को एवं तृष्णाओं को त्यागकर हे मन तू हरि के गुणों का गान कर।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में **जम–करि** पद में रूपक अलंकार है।
2. नरहरि = नरसिंह अर्थात विष्णु के चौथे अवतार।

टिप्पणी

13.

पाइ महावर दैंन कौं नाइनि बैठी आइ।
फिरि–फिरि, जानि महावरी, एड़ी मीड़ति जाई।।35।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा बिहारी विरचित 'सतसई' से लिया है।

प्रस्तुत दोहे में नायिका की सखियां आपस में और नायक से नायिका की एड़ी की सुंदरता का वर्णन करती हैं–

व्याख्या

जब नाइन उस नायिका के पैर में महावर लगाने के लिए आ बैठी तो उसकी एड़ी के लाल रंग को देखकर वह उसकी एड़ी और महावर में कोई अंतर न कर सकी तथा एड़ी को ही बार–बार महावर समझकर मसलती जाती है।

विशेष

1. फिरि–फिरि में वीप्सा अलंकार है।
2. प्रस्तुत दोहे में भ्रांतिमान अलंकार है।

14.

जगतु जनायौ जिहिं सकलु, सो हरि जान्यौ नांहि।
ज्यौं आंखिनु सबु देखियै, आंखि न देखी जांहि।।41।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा बिहारी विरचित 'सतसई' से उद्धृत है। प्रस्तुत दोहे में परमात्मा के विषय में किसी गुरु का शिष्य के प्रति कथन किया गया है।

व्याख्या

जिसके द्वारा यह संपूर्ण जगत तेरे ह्रदय में बैठकर बताया गया उस हरि को तूने नहीं जाना। ठीक वैसे ही जैसे आंखों के द्वारा संपूर्ण जगत देखा जाता है पर आंखें नहीं देखी जाती।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में उदाहरण अलंकार है।
2. प्रस्तुत दोहे में कवि की भक्तिदृष्टि का अवबोध होता है।

15.

मंगलु बिंदु सुरंगु, मुखु ससि, केसरि आड़ गुरु।
इक नारि लहि संगु, रसमय किय लोचन–जगत।।42।।

टिप्पणी

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा बिहारी विरचित 'सतसई' से उद्धृत है। प्रस्तुत दोहे में नायक नायिका के मुख पर लाल बिंदु तथा केसर की पीली आड़ देखकर नायिका पर अनुरक्त होता हुआ नायिका क अंतरंगिनी सखी से कह रहा है कि–

व्याख्या

माथे पर लाल बिंदु रूपी मंगल, मुख–रूपी चंद्र एवं केसर की पीली परिधि रूपी बृहस्पति को एक ही नारी ने एक ही साथ प्राप्त करके मेरे लोचन रूपी जगत को इससे भर दिया है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में रूपक अलंकार है।
2. मंगल ग्रह का रंग लाल तथा बृहस्पति का पीला माना जाता है, और मुख का उपमान चंद्र प्रसिद्ध ही है।

16.

कागद पर लिखत न बनत, कहत संदेसु लजात।
कहिहै सबु तेरौ हियौ मेरे हिय की बात।।60।।

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा बिहारी विरचित 'सतसई' से उद्धृत है। इस दोहे में नायिका की विरह व्यथा का वर्णन किया गया है। नायिका पत्र लिखकर अपने मन की बात कहना चाहती है किंतु लिख नहीं पा रही है।

व्याख्या

अनेक प्रकार के भावों और अनुभावों के कारण मेरा विरह दुख कागज पर नहीं लिखा जा सकता है अर्थात बहुत प्रयत्न करने पर भी मैं कुछ नहीं लिख पा रही हूं। मौलिक रूप से किसी के द्वारा अपना संदेश तुम्हारे पास तक पहुंचाने में मुझे लज्जा आती है। अतः मैं इस समय केवल इतना ही लिख सकती हूं कि तुम्हारा हृदय ही मेरे हृदय की सारी बातें बता देगा। अर्थात मेरे विरह में जो स्थिति तुम्हारे हृदय की है, तुम्हारे विरह में वही स्थिति मेरे हृदय की भी है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में विरोधाभास अलंकार है।
2. दोहे व्यंजना की अद्भूत अभिव्यक्ति है।

17.

जपमाला छापैं, तिलक सरै न एकौ कामु।
मन–कांचै नाचै वृथा, सांचै रांचै रामु।।141।।

टिप्पणी

प्रसंग

प्रस्तुत दोहा बिहारी विरचित 'सतसई' से लिया गया है। इस दोहे में आडंबरपूर्ण भक्ति पर कटाक्ष किया गया है।

व्याख्या

आडंबरपूर्ण भक्ति की भर्त्सना करते हुए कवि कहता है कि माला के मनकों से ईश्वर का नाम जपने, माथे पर तिलक आदि लगाने से एक भी काम नहीं सधता। कच्चे मन का भक्त अर्थात जिस व्यक्ति के मन में ईश्वर के प्रति पूर्ण विश्वास नहीं है, यदि वह ईश्वर की स्तुति करते समय भजन, कीर्तन तथा नर्तन करता है, तो वह सब वृथा है। भगवान तो उसी भक्त से प्रसन्न होते हैं जो सच्चे मन वाला होता है। कहने का अभिप्राय यह है कि ईश्वर की वास्तविक भक्ति सच्चे मन से होती है और माला जपने, तिलक लगाने आदि से ईश्वर प्रसन्न नहीं होता है।

विशेष

1. प्रस्तुत दोहे में संतों की विचारधारा का सुस्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है।
2. प्रस्तुत दोहे में कवि ने निष्काम भक्ति का प्रतिपादन किया है।
3. संपूर्ण दोहे में अनुप्रास अलंकार है।

गतिविधि

बिहारी के एक दोहे "नहिं परगु, नहीं मधुर मधु.........आगै कौन हवाल" ने राजा जयसिंह को अंतर से झकझोर दिया तथा उन्हें अपने वास्तविक कर्म के प्रति (समाज सुधार) उजागर किया। आज के आधुनिक युग में समाज सुधारक कवियों का अध्ययन कर उनकी कृतियों की एक सूची तैयार कीजिए।

क्या आप जानते हैं?

बिहारी के प्रत्येक दोहे पर इन्हें राजा जयसिंह से एक–एक मोहर पुरस्कार में मिली थी।

4.10 सारांश

रीतिकाल के कवियों की कविता का प्राण शृंगारिकता है। रीति–निरूपण की यह प्रवृत्ति अन्य प्रवृत्तियों में विद्यमान नहीं थी। रीतिकालीन कवियों का एकमात्र उद्देश्य अपने आश्रयदाताओं का मनोरंजन करना होता था, इसलिए इस काल के काव्य में कवि की व्यापक उद्दाम दृष्टि या भावनाओं का अभाव मिलता है। उनके काव्य की अनुभूति स्थूल सौंदर्य चित्र एवं भौतिक स्तर के प्रणय के लिए निरूपण तक ही सीमित रही है।

टिप्पणी

बिहारी के एक ही मुक्तक काव्य ग्रंथ ने उनकी काव्य प्रतिभा का वह प्रकाश फैलाया जिसने उन्हें लोकप्रियता के शिखर पर पहुंचा दिया। इनके हिंदी दोहे काव्य जगत के सभी मुक्तकों से अधिक लोकप्रिय हैं और अपनी रचना के कई शताब्दियों के बाद भी जन–सामान्य में प्रसिद्ध हैं। बिहारी के रीति काव्य के सर्वोच्च कवि के रूप में परिगणना किए जाने के मूल में उनकी उत्कृष्ट कला का ही पर्याप्त हाथ है। बिहारी की ख्याति का एक कारण उनकी सूक्ष्माभिवेशी अंतर्दृष्टि रही है जिससे उन्होंने बड़े ही सूक्ष्म–कोमल और मधुर चित्र प्रस्तुत किए हैं। बिहारी सतसई में संयोग और वियोग की एक अनूठी व्यंजना हुई है किंतु वे शृंगार के संयोग पक्ष में जितने अधिक रमें हैं, उतने वियोग पक्ष में नहीं। बिहारी काव्य–कला के चतुर शिल्पी थे, अतः उनके काव्य में अनेक शिल्पगत सूक्ष्मताएं विद्यमान हैं। बिहारी मुक्तककार होने के नाते छोटे से दोहा छंद में कथ्य को बड़े कौशल के साथ ही भर सकते थे जबकि 'रीति' में विश्वास रखने के कारण भी वे 'पद संघटना' पर बल देते थे। बिहारी के काव्यतत्व का यह प्राण तत्व है कि वे कितने कौशल से शृंगार रसोचित माधुर्य व्यंजक पदों की नियोजना करके विलक्षण रमणीयता उत्पन्न करने में सफल हुए हैं।

बिहारी की भाषा सभी दृष्टियों से श्रेष्ठ है। व्याकरण और सौंदर्य की विरोधी कसौटियों पर भी वह खरी उतरती है। बिहारी का भाषा पर पूर्ण अधिकार था। उन्हें भाषा का पंडित कहना चाहिए। भाषा की दृष्टि से बिहारी की समता करने वाला, भाषा पर वैसा ही अधिकार रखने वाला कोई मुक्तककार नहीं दिखाई पड़ता। शब्दों की आत्मा, उनका ध्वनन, उनका गठन, अर्थ वैविध्य, संकेतात्मकता एवं अलंकारिता सभी दृष्टियों से बिहारी की काव्य भाषा सच्चे अर्थों में संप्रेषणीयता की अद्भुत शक्ति रखती है।

कविवर बिहारी के सांसारिक ज्ञान का क्षितिज अत्यंत विस्तृत है। उन्होंने गांव की फटेहाली भी देखी, खुशहाली भी। उन्होंने राज दरबारों में दरबारीपन भी किया और एक जागरूक सृष्टा की भांति राजाओं के साथ व्यवहार भी किया। उन्होंने केवल प्रशंसा ही नहीं की आलोचनात्मक व्यंग्य भी किए। उन्हें मानव समाज के सज्जन से सज्जन और दुर्जन से दुर्जन व्यक्ति की पहचान है। बिहारी का युग वैभव का और विलास का युग था। अतः चमत्कार विधान के अंतर्गत मुख्यतः दस भेदों की चर्चा आती है। रीतिकालीन काव्य परंपरा में 'बिहारी सतसई' के दोहों जैसा अर्थ गौरव किसी भी अन्य कवि की रचनाओं में नहीं मिलता है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि बिहारी के दोहों में एक सफल मुक्तक की सभी विशेषताओं का सफल निर्वाह हुआ और इसका समस्त श्रेय उनकी मौलिक प्रतिभा को दिया जाना चाहिए। इनके दोहों को नावक के तीर कहा गया है जो देखने में छोटे लगने पर भी लक्ष्य साधन की दृष्टि से अत्यंत सफल सिद्ध होते हैं।

4.11 मुख्य शब्दावली

- **सतसई** : सात सौ पद्यों वाला ग्रंथ।
- **उपास्य** : पूजा, आराधना करने या किए जाने योग्य।

टिप्पणी

- उन्माद : पागलपन, सनक, एक संचारी भाव।
- अनुभाव : मनोगत भाव की सूचक बाह्य क्रियाएं, स्तंभ, स्वेद, रोमांच।
- वैदग्ध्य : दक्षता, चतुरता, पांडित्य, धूर्तता, सौंदर्य।

4.12 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. श्रृंगारिकता
2. श्रृंगार शतक
3. उनका सौंदर्य बोध
4. 719 दोहे
5. श्रृंगार रस को
6. भक्तिकाल को
7. बिहारी सतसई
8. सामंतों और राजाओं के प्रश्रय में
9. रति
10. मुक्तक
11. भावों की
12. वचन भंगिमा में
13. सूक्ष्माभिवेशी अंतर्दृष्टि
14. चित्रांकन और नाद सौंदर्य की दृष्टि से
15. समास शैली का
16. 1. सादृश्य मूलक अलंकार 2. विरोध मूलक अलंकार
17. दो प्रकार से
18. बुंदेली
19. पांच अलंकार
20. रस की पिचकारी
21. शास्त्रीय ज्ञान के अंतर्गत
22. दुर्योधन
23. हरौल
24. वस्त्र

25. मुक्तक काव्य रचना
26. ऋग्वेद से
27. जयदेव से
28. बिहारी को
29. उसकी पूर्वापर निरपेक्षता
30. 'अर्थ गौरव' का आशय है–थोड़े–थोड़े शब्दों के भीतर अधिक से अधिक भावों की व्यंजना

टिप्पणी

4.13 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. बिहारी के काव्य में 'आश्रयदाता के मनोरंजन' का वर्णन कीजिए।
2. 'सतसैया के दोहरे ज्यों नावक के तीर' की कसौटी पर बिहारी के काव्य को मूल्यांकित कीजिए।
3. 'बिहारी सतसई' में कवि ने भक्ति और नीति की सुंदर अभिव्यक्ति प्रस्तुत की है–स्पष्ट कीजिए।
4. बिहारी के ज्योतिषशास्त्र और आयुर्वेदशास्त्र के ज्ञान का वर्णन कीजिए।
5. मुक्तक काव्य की समाहार शक्ति को विवेचित कीजिए।

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. शृंगार परंपरा को स्पष्ट करते हुए शृंगार परंपरा में 'बिहारी सतसई' के स्थान का मूल्यांकन कीजिए।
2. बिहारी के काव्य–वैभव का विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।
3. बिहारी की काव्य भाषा की विवेचना कीजिए।
4. 'बिहारी सतसई' के आधार पर बिहारी की बहुज्ञता का वर्णन कीजिए।
5. मुक्तक काव्य परंपरा में बिहारी के काव्य का मूल्यांकन कीजिए।
6. सप्रसंग व्याख्या कीजिए–
   (क) मेरी भव–बाधा हरौ,...............................स्याम हरित–दुति होई।।
   (ख) अजौ तरयौना हीं रह्यौ,...................बसि मुकुतनु कैं संग।।
   (ग) ज़पमाला छापैं,..............सांचै रांचै रामु।।

टिप्पणी

4.14 आप ये भी पढ़ सकते हैं

1. आचार्य रामचन्द्र शुक्ल *हिंदी साहित्य का इतिहास*
2. डॉ. नगेन्द्र *हिंदी साहित्य का इतिहास*
3. बाबू गुलाब राय *हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास*
4. डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना *हिंदी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि*
5. परमानन्द शर्मा *कविवर बिहारी*
6. डॉ. रामानन्द शर्मा *भारतीय काव्य–शास्त्र*
7. डॉ. विजय कुमार वेदालंकार *भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य–शास्त्र*
8. डॉ. प्रणव शर्मा केशव के *काव्य का शैली वैज्ञानिक अध्ययन*

इकाई 5 घनानंद

टिप्पणी

इकाई की रूपरेखा

5.0 परिचय
5.1 इकाई के उद्देश्य
5.2 'अति सूधो सनेह को मारग है' की कसौटी पर घनानंद का काव्य
5.3 स्वच्छंदतावादी काव्य का स्वरूप और घनानंद का काव्य
5.4 घनानंद की सौंदर्य चेतना
5.5 घनानंद की काव्य–भाषा
5.6 घनानंद के काव्य में प्रकृति
5.7 घनानंद की सुजान
5.8 पाठांश
5.9 सारांश
5.10 मुख्य शब्दावली
5.11 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर
5.12 अभ्यास हेतु प्रश्न
5.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

5.0 परिचय

हिंदी साहित्य के 'रीतिकाल' को शृंगार विषय की प्रधानता के कारण 'शृंगारकाल' के नाम से भी जाना जाता है, लेकिन जहां रीतिबद्ध कवियों ने शृंगार की कविता का सृजन किया वही रीतिमुक्त अर्थात स्वच्छंदतावादी कवियों ने प्रेम का आधार बनाकर अपनी निजी पीड़ा को अभिव्यक्ति दी। इन्हीं कवियों में 'प्रेम के पीर' घनानंद का नाम लिया जाता है।

घनानंद के जन्म एवं मृत्यु संवत् को लेकर ही नहीं उनके वास्तविक नाम के विषय में भी विवाद है। वस्तुतः हिंदी साहित्य में इस नाम के अनेक कवि मिलते हैं। एक नाम के अनेक कवियों के होने के कारण स्वच्छंद काव्यधारा के कवि घनानंद की प्रामाणिकता का प्रश्न सर्वप्रथम हमारे सम्मुख उपस्थित होता है। इसका मुख्य कारण यह है कि कवि ने अपनी कविता में विविध नामों का उल्लेख किया है। हिंदी साहित्य में घनानंद, आनंदघन और आनंद नाम के व्यक्तियों में वास्तविक स्वच्छंद कवि कौन है, यह एक विचारणीय प्रश्न है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल द्वारा दिया गया तर्क ज्यादा संगत प्रतीत होता है। उनके अनुसार घनानंद वृंदावन के आनंदघन हैं।

घनानंद की मृत्यु अहमदशाह अब्दाली के दूसरे आक्रमण में संवत् 1817 में हुई।

घनानंद की रचनाओं का पूर्ण और प्रमाणित ब्यौरा नहीं मिल पाता है। मिश्रबंधुओं के द्वारा दी गई घनानंद की कृतियों की सूची के आधार पर परवर्ती विद्वानों ने घनानंद की रचनाओं का विस्तृत उल्लेख किया है। उनके द्वारा (मिश्र बंधु) 'घनानंद ग्रंथावली' में प्रकाशित की रचनाएं हैं– सुजान हित, कृपाकंद, प्रीतिप्रवास, प्रेम पत्रिका, प्रेम सरोवर, ब्रज

विलास, सरल वसंत, अनुभव चंद्रिका, रंग बधाई, प्रेम पद्धति, वृषभानुपुर सुषमा वर्णन, विचार सभा, दान घटा, भावना प्रकाश, वृंदावन मूड़ा, ब्रज प्रसाद, गोकुल चरित्र, प्रेम पहली, रसना यश, गोकुल विनोद, मुरलिकामोद, मनोरथ मंजरी, ब्रज व्यवहार, गिरिगाथा, पदावली, छंदाष्टक आदि। प्रस्तुत इकाई में हम घनानंद के काव्य तथा उनकी 'सुजान' का विस्तृत अध्ययन करेंगे।

टिप्पणी

5.1 इकाई के उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप–

- 'अति सूधो सनेह को मारग है' की कसौटी पर घनानंद के काव्य का अध्ययन कर पाएंगे;
- स्वच्छंदतावादी काव्य के अंतर्गत घनानंद के काव्य का वर्णन कर पाएंगे;
- घनानंद की सौंदर्य चेतना के स्वरूप का विवेचन कर पाएंगे;
- घनानंद के काव्य की भाषा तथा उनके काव्य में प्रकृति चित्रण का विश्लेषण कर पाएंगे;
- घनानंद की 'सुजान' के चरित्र से परिचित हो पाएंगे।

5.2 'अति सूधो सनेह को मारग है' की कसौटी पर घनानंद का काव्य

रीति मुक्त कवियों में कविवर घनानंद प्रेमाभिव्यक्ति में अग्रगण्य एवं अप्रतिम हैं। उनका काव्य हृदय की सहज तरल अनुभूतियों का काव्य है, प्रेम की सच्ची वेदना की निश्छल अभिव्यक्ति है। इस काव्य का भावक भी केवल वही हो सकता है जिसने प्रेम की पीर को जाना हो। कवि ब्रजनाथ ने अपनी कविता में घनानंद के काव्य की इसी प्राण तत्व की ओर संकेत किया है–

"जग की कविताई के धोखे रहैं ह्यां प्रवीनन की मति जाति जकी।
समझै कविता घन आनन्द की हित आंखिन नेह की पीर तकी।।"

प्रेम की पीर के उन्मत्त गायक घनानंद ने अपने कुछ पदों में प्रेमतत्व का सैद्धांतिक निरूपण भी किया है। उनके अनुसार प्रेम का पंथ अनोखा है–सब कुछ भूलकर, प्रिय के लिए सर्वस्व भाव से समर्पण कर, जो लोग प्रेम पंथ की ओर आते हैं, वे भूले हुए भी, इस पर चल लेते हैं, परंतु जो सतर्क होकर सोच–विचार कर तर्क–वितर्क कर इस पर चलना चाहते हैं, वे नहीं चल सकते। प्रेमपंथ उनके लिए बना ही नहीं। यह तो सरलता का मार्ग है, सयानपन और बांकपन का यहां लेशमात्र भी नहीं। सच्चा, अहंभावरहित संस्मणशील पथिक इस मार्ग पर बेखटके चल सकता है पर जिनके मन में छल–कपट है कि इस पर चले हुए झिझकते हैं। घनानंद ने अपने इस प्रेमादर्श की बड़ी सच्ची–सीधी अभिव्यक्ति इन पंक्तियों में की है–

टिप्पणी

(क) *जान घनआनंद अनोखे यह प्रेम–पंथ।*
भूले तो चल, रहैं सुधि के थकित है।।

(ख) *अति सूधो सनेह को मारग है जहां नैकु सयानप बांक नहीं।*
तहा सांचे चलैं तजि आपुनपौ झझकैं कपटी जे निसांक नहीं।।

घनानंद के प्रेमतत्व की सर्वप्रमुख और प्रथम विशेषता उसकी स्वच्छंदता है। स्वच्छंदता का अर्थ है। बाह्य बंधन अर्थात रीति के बंधन से मुक्त। इस धारा के कवि मनोगत वेग के प्रवाह में काव्य रचते थे। इसलिए उनकी रचनाओं में प्रेम के जिस रूप की स्वीकृति थी वह जीवनगत बंधनों के त्याग का भी संकेत देने वाला था। रीतिबद्ध रचयिता नायक–नायिका के प्रेम की जो चर्चा करते थे, उसमें कहीं–कहीं कथन शैली की विशेषता के दर्शन होते थे, परंतु उसमें न तो प्रेम के जीवनगत स्वच्छंद रूप के दर्शन नहीं होते हैं और न काव्य–पद्धति अर्थात रीतिकालीन स्वच्छंदता के ही।" (विश्वनाथ प्रसाद मिश्र)। घनानंद का काव्य काव्य–पद्धति अर्थात रीतिकालीन रूढ़ काव्य–परिपाटी से स्वच्छंद तो है ही, उनमें व्यक्त प्रेम का स्वरूप भी शास्त्रीय या रीतिबद्ध न होकर स्वच्छंद व मुक्त है। उसमें न लोकमय या लोकलाज है, न ही दूती, सखी आदि की सहायता से खेले जाने वाले खेलों का आडम्बर। घनानंद का प्रेम–तत्व सर्वथा उन्मुक्त है। इसमें पारिवारिक बंधनों का कोई स्थान नहीं, निंदा करने वालों का कोई डर नहीं। घनानंद का निम्नलिखित पद्य द्रष्टव्य है–

जान के रूप लुभाय कै नैननि बेंचि करी अध बीच ही लौंडी।
फैलि गई घर–बाहिर बात सु नीकै भई इन काज कनोंडी।।
क्यों करि थाह लहै घनानंद चाह–नदी–तट ही अति औंड़ी।
हाय दई! न बिसासी सुनै कछु, है जग बाजति नेह की डौंडी।।

घनानंद के काव्य में जिस प्रेम की व्यंजना हुई है, वह एक ओर तो अनेक उपरिवर्णित आदर्श के अनुरूप सर्वथा सरल–सहज और निश्छल है, दूसरी वह रीतिबद्ध काव्य में व्यक्त प्रेम में सर्वथा भिन्न स्वछन्द अथवा उन्मुक्त प्रेम है। रीतिबद्ध काव्य की शृंगारिकता, विलासमय रसिकता और स्थूल शारीरिकता का यहां नितांत अभाव है, संयोग काल की शृंगार–चेष्टाओं और हावों के वर्णन भी घनानंद के काव्य में नहीं हुए हैं। घनानंद के काव्य में व्यक्त प्रेम–तत्व न गार्हस्थिक है, न रूढ़, न कृत्रिम, न उहात्मक। वह प्रेम वासना, और उपभोग की वस्तु भी नहीं।

रीतिमुक्त कवियों का मूल वक्तव्य है– प्रेम। घनानंद की प्रेम विषयक विशेषताएं निम्न प्रकार वर्णित की गई हैं–

प्रेम की मार्मिक व्यंजना

इन्होंने काव्य को प्रेम की मूलवर्ती संवेदना से स्पंदित किया है चाहे वह मुक्तकों के रूप में लिखा गया हो, चाहे आख्यान के रूप में। इस प्रेम वर्णन का वैशिष्ट्य इस बात में है कि वह स्वानुभूति प्रेरित है। इनकी प्रेमाभिव्यंजना इनकी निजी प्रेम भावना की अभिव्यक्ति है। प्रेम की गूढ़ अंतर्दशाओं का चित्रण जेसा इन कवियों में प्राप्त होता है वैसा रीतिबद्ध तथा

टिप्पणी

अन्य शृंगारी कवियों में नहीं। रीतिबद्ध कवियों के समान इनका प्रेम बैठे ठाले का प्रेम नहीं है। वह केवल बाहरी उछल कूद में नहीं चुकता, अंतर को भिगोता है, उसमें किसी बिचौलिए की अपेक्षा भी नहीं है अर्थात प्रेमी प्रेमिका के बीच कोई दूती या सखी नहीं आती। इनका प्रेम सरल व निष्कपट है।

अति सूधो सनेह को मारग है, जहां नैकु सयानप बांक नहीं।
तहं सांचे चले तजि आपनुपो, झिझकै कपटी जे निसांक नहीं।।
घनानंद प्यारे सुजान सुनौ, इत एक ते दूसरा अंक नहीं।
तुक कौन घौं पाटी पढ़े हो लला, मन लेहु पै देहु छटांक नहीं।।

प्रेम जीवन साधना

इन कवियों ने प्रेम को जीवन की साधना माना है तभी इसमें प्रवष्टि होने के लिए बुद्धि को छोड़ना पड़ता है। सिर्फ निश्च्छल भावना ही प्रधान होनी चाहिए इसलिए इन्होंने बुद्धि को हेय कहा है–

रीझि सुजान सची पटरानी, बची बुद्धि बापुरी है कर दासी।

इनका प्रेम विलास का एक अंगमात्र नहीं है। यह सबके बस की बात नहीं है। इसका मार्ग बहुत कठिन है।

यह प्रेम को पंथ कराल, महा तलवार की धार पै धावनो है।

किंतु प्रेम की अडिग आभा और सहनशीलता के सरल भी हो जाता है–

अति सूधो स्नेह को मारग है, जहां नैकु सयानप बांक नहीं।

रीतिबद्ध प्रेम वासनाजन्य है जो अनेक से प्रेम करने का ढोंग करता है पर रीतिमुक्त एक के प्रति एकनिष्ठ है।

प्रेम की विषमता का निरूपण

इनके काव्य में निजी अनुभूतियों का सहज प्रकाशन है। इनके प्रेम में विषमता है। यह इसलिए है कि प्रेमी प्रिय को जितना चाहता है, उसके लिए जितना तड़पता है, प्रिय प्रेमी से उतना नहीं इसका उद्देश्य प्रिय को क्रूर और दुष्कर्मों को दिखाना नहीं अपितु निठुर, उपेक्षापूर्ण, पीड़ा से अनभिज्ञ, सहानुभूमि शून्य, कहा और दिखाया है–

क्यों हंसि हेरि हरया यौ हियरा
अरू क्यों हित कै चित चाह बढ़ाई।

प्रिय की अपेक्षा पर प्रेमी कवि ने प्रिय को उलाहना दिया है। प्रेमियों ने प्रिय को दुष्ट और दुराचारी कह कर अपने प्रेम को उपहास्यास्पद नहीं बनने दिया है। प्रिय के इस आचरण में अपना दोष देखता है। भाग्य को काव्य ठहराता है–

चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै आनन्दघन
प्रीति रीति विषम सु रोम–रोम रमी है।

प्रिय व प्रेमी की विषमता को निम्न पक्षों से देख सकते हैं–

प्रिय पक्ष		प्रेम पक्ष
छल और धोखा	–	संपूर्ण समर्पण
विस्मरण	–	स्मरण
इठलाहट	–	तड़प
सकाम	–	निष्काम
सचिंत	–	निश्चिंत
सविषाद	–	सहर्ष
चैन चंद्रिका का अमृतपात्र	–	विषाद आतप से तप्त

भावानुभूति से संपृक्त प्रेम

इनका प्रेम भावानुभूति से संपृकत है तभी तो प्रिय का प्रथम दर्शन ही प्रेम की इंद्रियों पर रीझकर

आसक्ति– आसक्ति का अर्थ है मन प्रवृत्ति का एक स्थल पर बंध जाना। घनानंद का सुजान नहीं वरन सुजान के प्रेम के प्रति आसक्ति भाव है। चाहे सुजान ने उसकी उपेक्षा की है। इस आसक्ति में मन की व्याकुलता स्थल–स्थल पर व्यक्त होती है। उदाहरणार्थ–

भौर ते सांझ लो कानन और निहारित बावरी नैकु न हारति।

× × ×

मोहन सोहन जोहन की लागियै रहै आंखि के उर आरति।।

स्वच्छंद प्रेम– घनानंद के प्रेम वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता है– वैषम्य। रीतिकालीन कवियों ने प्रिय की उपेक्षा, तिरस्कार का बढ़ा–चढ़ा कर वर्णन किया है किंतु प्रेम की विषमता का जितना साफ–सुथरा वर्णन जिस गंभीरता से घनानंद ने किया है किसी अन्य ने नहीं किया। उदाहरणार्थ–

चाहौ अनचाहौ जान प्यारे पै आनंदघन,
प्रीति रीति विषम सु रोम रोम रमी है।

प्रेम की दृढ़ता– घनानंद कों चाहे सुजान से उपेक्षा तिरस्कार मिला किंतु उनके प्रेम में कहीं अस्थिरता नहीं दिखाई देती है। उनके प्रेम में प्रेम के प्रति अगाध, आशा, आस्था, विश्वास, दृढ़ता है–

मोही तुम एक तुम मो सम अनेक,
काह कछु चंदहि चकोरन की कमी है।

उनकी दृढ़ता पाषाण ह्रदया नायिका को भी पिघलाने की क्षमता रखती है–

ऐरे निर्दयी तेरे दया उपजाय हों।

प्रेम की रीति– घनानंद ने मुक्त भोगी के रूप में प्रेम की रीति को समझा इसलिए वे प्रेमी–प्रेमिका के आदर्श मछली और जल के उपमानों को भी हेय बताया है। उदाहरणार्थ

टिप्पणी

हीन भये जलमीन अधीन, कहा कछु मो अकुलाने सामने।
नीर सनेहो को लाय कलंक, निरास ह्वै कायर त्यागत प्रानै।।

अर्थात मछली जल से अलग होकर मर जाती है जो कायरपन है। इस क्रिया से तो प्रेमी को कलंक लगता है। अपितु प्रेम के अभाव में चाहे तड़प के साथ जीन हो वहीं प्रेम की रीति है।

अभिलाषा– घनानंद ने प्रियतम का दर्शन सर्वप्रथम आंखों से किया था। अतः यही सदैव दर्शन की अभिलाषी रहती है, उसके सौंदर्य का पान करना चाहती है।

रावरे रूप की नीति अनूप, न्यो न्यो लागत ज्यों ज्यों निहारिये।
त्यों इन आंखिन बानी अनोखी, अघानी कहूं नहीं आनि तिहारिये।।

इसी गुण के कारण बिहारी की कविता यदि 'वाह' है तो घनानंद की 'आह' है।

भावसूक्ष्मता– प्रेम को स्वच्छंद कवियों ने सामान्यतः भाव व्यापार स्वीकारा है। उन्होंने स्थूल पक्ष का निषेध किया है। घनानंद में शारीरिक अनुभूति का वर्णन बहुत कम है, अधिकतर भावधारा का ही चित्रण है। ये कवि शृंगार को अश्लील चेष्टाओं से बच गए हैं। भाव सूक्ष्मता का एक रूप देखिए–

लाजनि लपटेनि चितवनि भेद भाव भरी,
लसित ललित लोल चख तिरछनि मैं।

प्रथम दर्शन का प्रेम– मनोविज्ञान के अनुसार वास्तविक प्रेम प्रथम दर्शन होता है। परिचय के आधार पर बढ़ा हुआ प्रेम प्रेम की दूरी की स्थिति में विलुप्त हो जाए संभव है किंतु प्रथम दर्शन के प्रेम से एक खिंचाव बना रहता है। घनानंद का प्रेम ऐसा ही है तभी वे सुजान के अभाव में भी अनुरक्त है।

जब ते निहारे घनआनंद सुजान प्यारे,
तब ते अनोखी आगि लगि रही चाह की।

घनानंद के प्रेम में इनमें काम की ग्रंथि नहीं है। इनके प्रेम की पदवी ज्ञान साधना से भी ऊंची है। ये प्रेम की भावना में संसार से विलग हो जाते हैं। घनानंद की आंखें तो पलक झपकना ही भूल जाती है। ये प्रेम को समर्पण मानते हैं–

हित के हंकारौ तो हुलासनि सहित धावै,
जो कघु कहौ तो अनिख बिडारे है।

भावानुभूति की परकाष्ठा के कारण ही वे कहते हैं–

मोहि तुम एक तुम मौं सम अनेक,
कहा कछु चंदहि चकोरन की कमी है।

वियोग की प्रधानता– विरह इनके काव्य की अमूल्य निधि है। प्रेम की विषमता फारसी साहित्य की विशेषता है। 'मन लेहू पै देहू छटांक नहीं' भारतीय परंपरा में प्रेमी का मन फगुवा देकर गारी के लिए नहीं तरसता यहां सम प्रेम के दर्शन होते हैं। इनके काव्य

का प्रेरणा केंद्र इनकी वे प्रेमिका है जिन्हें वे प्राप्त न कर सके, इनकी अप्राप्ति की दशा में उनको आत्मपीड़ा ने आत्मनिवेदन की पीड़ा दी, यही पीड़ा अपने को गलाने का दर्द चिंता, व्याधि, मरण, अभिलाषा आदि का ऐसा रूप सूफी कवियों की ही देन है। ये प्रेम की रीति में मरना सबसे जघन्य, हीन कर्म समझते हैं।

हीन भए जलमीन अधीन कहा कछु मो अकुलाने समाने।
नीर सनेही को लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्राने।

इन कवियों में सर्वाधिक वेदना घनानंद में सिमटी हुई है। डॉ. रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में– "विरह तो घनानंद की पूंजी ठहरा।"

संयोग से वियोग की अनुभूति– इनका वियोग इतना सघन और व्यापक है कि इसके कवि संयोग में भी वियोगानुभूति करते रहते हैं। वियोग व्यथा विरह में सताती ही है संयोग भी सताने में पीछा नहीं छोड़ता है–

भोर ते सांझ लौ कानन और निहारती बावरी नेकु न हारति।
सांझ ते भोर लौं तारन ताकिबो तारनि सौ इकतार न टारती है।

संयोग में भी इन्हें खटका लगा रहता है। कहीं वियोग न हो जाए–

नेहा सब कोउ करै कहा करै मैं जात।
करिबौ और निबाहिबो बड़ी कठिन यह बात।।

इनका वियोग रहते सहते विरह इतना अभ्यस्त हो चला था कि संयोग की सुखद स्थिति में भी चैन नहीं था–

बिछुरै मिलै प्रीमत शांति न मानै

इनका एकांगी, एकनिष्ठ, एक तरफा प्रेम में लोक की लज्जा का परित्याग, परलोक की चिंता के प्रति उपेक्षा भाव आदि तत्वों का जो प्रभाव है वह कृष्ण भक्ति से प्राप्त हुआ है।

इस प्रकार दरबारी संस्कृति शास्त्रीय बंधनों और रीतिप्रवृत्ति से पूर्णतः स्वच्छंद कवियों का यह रीतिमुक्त काव्य अपने में अनूठा है जिसमें प्रेम की उच्चता, उदात्तता, गहनता, व्यापकता, वासनाहीनता, सूक्ष्मता, भावात्मकता आदि का गुण विद्यमान है (बोधा इसके अपवाद है)। इन कवियों ने प्रेम की अनन्यता, लोकलाज का परित्याग, कष्ट सहिष्णुता, अहंकार, स्वाभिमान, अभिमान, मगरूरी का त्याग आदि गुण है जिससे इन्होंने प्रेम के ऊंचे आदर्श को प्राप्त किया है। इसलिए इनके काव्य को समझने के लिए हृदय की आंख की कल्पना मात्रा कल्पना नहीं अनिवार्यता है–

समुझै कविता घनआनंद की,
हिंय आंखिन नेह की पीर तकी।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने कहा है– "प्रेममार्ग का ऐसा प्रवीण व धीर पथिक ब्रज भाषा का दूसरा कवि नहीं हुआ।"

टिप्पणी

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि सुजान के प्रति घनानंद ने जो प्रणय निवेदन किया है वह हिंदी काव्य की स्थायी संपदा है। वैसा आत्मनिवेदन, वैसी पीड़ा, वैसी विरहानुभूति, वेसी आत्माभिव्यंजना वाला काव्य मध्ययुग में नहीं लिया गया। घनानंद ने आलम, ठाकुर, बोधा, द्विजदेव आदि सभी की विशेषताओं का मनोयोग से समावेश हो जाता है। अपनी विशेषताओं के कारण घनानंद स्वच्छंद गायकों में पृथक और श्रेष्ठ है। समूचे हिंदी काव्य में ऐसी प्रेम छाया का चितेरा दूसरा नहीं है। आत्मपीड़ा का दूसरा नाम ही घनानंद है।

5.3 स्वच्छंदतावादी काव्य का स्वरूप और घनानंद का काव्य

प्रत्येक भाषा के साहित्य में निरंतर सृजन होते रहने के कारण रूढ़ियां और परंपराएं बनती हैं और समय आता है जब वे टूटती हैं। उन्हें तोड़ने वाले कवि स्वच्छंद और उनकी कविता स्वच्छंदतावादी होती है।

रीतिमुक्त कविता नायक नायिका भेद, भाषा चमत्कार, अलंकार और कृत्रिम जीवन स्थितियों के वर्णन से अलग तथा परंपरागत रीति पद्धति से अलग हटकर लिखी गयी सहज निश्छल काव्यधारा थी। रीतिमुक्त कवि रीति के पाश से निर्मुक्त थे और स्वच्छंद भावों के गायक थे।

रीतिमुक्त काव्यधारा जिसे स्वच्छंद काव्यधारा कहना अधिक समीचीन होगा। यह उस काल की परंपरित काव्य रचना के प्रति एक विद्रोह था। काव्यशास्त्र के निश्चित नियमों के भीतर बंधकर पिटी पिटायी उपमाओं, अलंकार योजनाओं तथा भावभंगियों की अभिव्यक्ति करना इस धारा के कवियों को पसंद नहीं था। वे स्वच्छंद भाव से वैयक्तिक अनुभूतियों को मुखरित करना चाहते थे, जिस पर न तो ये शास्त्र का बंधन स्वीकार करना चाहते थे और न आश्रयदाताओं की रुचियों का ही दबाव मानने को तैयार थे। ये काव्य को साध्य रूप में न स्वीकार कर प्रेम को साध्य के रूप में स्वीकार करते थे, जिसकी अभिव्यक्ति के लिए काव्य साधन मात्र था। मनोवेग तथा प्रेम की स्वच्छंदता को महत्व प्रदान करने के कारण श्रमपूर्वक ये 'कविता का निर्माण' नहीं करते थे बल्कि अपने कवित्व से ये स्वयं निर्मित थे अर्थात रीतिबद्ध कवियों की भांति इनका व्यक्तित्व इनकी कविता से अलग–अलग नहीं रहता था। घनानंद कहते हैं–

लोग लागि हैं कवित्त बनावत
मोहि को मेरे कवित्त बनावत।

रीतिबद्ध काव्य के कवियों ने अपने काव्य में परंपरागत तत्वों, सिद्धांतों को अपनाया है। रस, अलंकार, रीति, ध्वनि, वक्रोक्ति और पिंगल की सीमा रेखा में बांधकर कविता लिखते थे। इसके विपरीत रीतिमुक्त कवियों ने बुद्धि की, तर्क की अपेक्षा भाव को महत्व दिया। यही कारण है कि एक ओर रीतिवादी केशव ने कविता के लिए अलंकारों को महत्ता दी है– 'भूषण बिनु न विराजही कविता वनिता मित्त' तो दूसरी ओर घनानंद ने कहा– 'लोग लागि हैं कवित्त बनावत, मोहि को मेरे कवित्त बनावत'। ठाकुर कवि ने ऐसे कवियों पर तो करारा व्यंग्य कसा है–

'अपनी प्रगति जांचिए'

1. रीतिमुक्त कवियों का मूल वक्तव्य क्या है?
2. आसक्ति का क्या अर्थ है?
3. घनानंद ने प्रिय का दर्शन सर्वप्रथम कैसे किया?
4. घनानंद के काव्य की अमूल्य निधि क्या है?
5. आत्मपीड़ा का दूसरा नाम क्या है?

सीख लीन्हों मीन मृग खंजन कमल नैन,
सीख लीन्हों यश और प्रताप को कहानो है।

× × ×

डेल सो बनाय आय मेलत सभा के बीच,
लोगन कवित्त कीबो खेल करि जानी है।

टिप्पणी

रीतिबद्ध कवियों ने अपने काव्य को ही नहीं अपनी प्रेम भावना को भी शास्त्री परिपाटी से जोड़े रखा है। यही कारण है कि इन्होंने प्रेम मार्ग में सखी, सखा और इसी के माध्यम से प्रेम निवेदन प्रस्तुत किया है। इनके प्रेम में बनावटीपन, दुराव, छिपाव है तभी भिखारीदास ने कहा है–

आगे के कवि रीझिहैं तो कविताई,
न तो राधा कन्हाई सुमिरन को बहानो है।

इसके विपरीत रीतिमुक्त कवियों ने किसी माध्यम की आवश्यकता ही नहीं समझी। इनका प्रेम सीधा, सरल व वैयक्तिक है। इन कवियों ने बाह्य सौंदर्य के अलावा आंतरिक सौंदर्य और मानसिक सौंदर्य का चित्रण भी किया है तभी ये कहते हैं–

अति सूधो सनेह को मारग है, जहां नैकु सयानप बांक नहीं।
तहं सांचे चले तजि आपनुपो, झिझके कपटी जे निसांक नहीं।

रीतिमुक्त कवियों ने किसी भी राजा का आश्रय कभी स्वीकार नहीं किया। मस्त–मौला, फक्कड़ और प्रेम के दीवाने बोधा ने तो यहां तक कह दिया–

कोय मगरूर तासों इतनी मगरूरी कीजै,
लघुता हुवै चलै वासों लघुता नियाइये।
दाता कहां सूर कहां सुंदर प्रवीण कहा,
आप को न चाहे ताके बाप को न चाहिये।

शिल्प के धरातल पर भी रीतिबद्ध कवि जहां अलंकार व चमत्कार प्रदर्शन को अधिक महत्व देते हैं वहीं रीतियुक्त कवि इस चमत्कार प्रदर्शन के प्रति उदासीनता बरती है।

कुछ आलोचकों ने इनकी (काव्य व कवियों) विशेषताओं से परिचित कराया है–

हजारी प्रसाद द्विवेदी– "सहज प्रवाहमय प्रेमधारा का विकसित रूप स्वच्छंदतावादी काव्य है।"

विश्वनाथ प्रसाद मिश्र– "स्वच्छंदतावादी काव्य भाव भावित होता है, बुद्धि बोधित नहीं इसलिए आंतरिकता इसका सर्वोपरि गुण है।"

डॉ. नगेंद्र– "कवित्व इनका साध्य नहीं अंतःकरण की भावराशि की उन्मुक्त भाव से भावाभिव्यक्ति इनका लक्ष्य है, इसमें इन्हें तृप्ति और संतोष है।"

मनोहर लाल गौड़– "उमंग के आदेश पर थिरकने वाले कवि थे, ये हृदय की दौड़ के लिए राजमार्ग चाहते थे, रीति की संकरी गली नहीं इसलिए इनका काव्य स्वतः उद्भावित है।"

टिप्पणी

रामचंद्र शुक्ल– "ये कवि प्रेमोन्मत्त हैं। ये काव्यशास्त्रीय लक्षणें के अनुसार काव्य रचना नहीं करते इसलिए इनके पदों में मार्मिकता व मनोहरता है।"

डॉ. उपाध्याय– "स्वच्छंदतावादी कवि प्रेम में मत होकर अपने आंतरिक अनुराग से ही काव्य रचना करते थे इसलिए उनके प्रेममय उल्लास से भरा हुआ काव्य सहृदय को मुक्त कर देता है।"

इन कवियों के काव्य संबंधी दृष्टिकोण को भिन्न रूप में देखा जा सकता है–

1. ये रीति के संकीर्ण मार्ग पर नहीं चलना चाहते थे।
2. इनके काव्य में मार्मिकता, शृंगारिकता अधिक है क्योंकि ये कवि अपनी उमंग पर थिरकने वाले प्रेम के पपीहे थे।
3. इनकी काव्य पयस्विनी ने काव्य रूढ़ियों के बंधनों को तोड़ा।
4. अनुभूति की अभिव्यक्ति इनके काव्य का धर्म है। अन्य शब्दों में इनके यहां अनुभूति का दूसरा नाम ही काव्य है।
5. ये प्रेम के चातक थे इसलिए ये मिलन एवं भोग में विश्वास नहीं करते थे। विरह एवं पीड़ा को अपने काव्य का उद्देश्य मानते थे।
6. इनका काव्य भाव बोधित है बुद्धि बोधित नहीं।
7. ये आश्रयदाता के संकेत पर नृत्य करने वाले नहीं प्रेम पर मर मिटने वाले थे।
8. इन्होंने परंपरागत उपमानों, काव्य शास्त्रीय नियमों और पिटी पिटाई कवि समय ख्याति पद्धति का विरोध किया।
9. अनुभूति को इन्होंने सर्वोपरि प्राथमिकता दी है। घनानंद ने स्पष्ट लिखा है कि उनके काव्य में हृदय रानी की तरह उच्च पद पर आसीन है और बुद्धि हृदय की दासी है–

   रीतिमुक्त सुजान सची पटरानी,
   बची बुद्धि बापुरी ह्वै करि चासी।

10. इनके अनुसार भावावेग ही सब कुछ है। इस आवेग के सामने काव्य रीति, कुल मर्यादा और लोकलाज के समस्त बंधन शिथिल होकर टूट जाते हैं। बोधा ने तभी कहा है जो इस बंधन के चक्कर में नहीं फंसना चाहते वे इस कठिन मार्ग पर कदम न रखें।

    यह प्रेम को पंथ कराल, महा तरवार की धार पै धावनो है।

    यहां सच्चे जवां मर्द ही चल सकते हैं। घनानंद, ठाकुर, बोधा, आलम, आदि ऐसे ही कवि हैं जिन्होंने कुल और धर्म को तिलांजलि दी है।
11. इन कवियों के काव्य को समझने को वही पीड़ा, दर्द, अंतःचक्षु चाहिए जो इन कवियों के पास थे। तभी ब्रजनाथ ने कहा है–

जंग की कठिताई को धोके रहैं,
ह्यां प्रवीनन की मति जाति जकी।
समुझै कविता घनआनन्द की,
हिय आंखिन प्रेम की पीर तकी।

टिप्पणी

12. रीतिमुक्त कवि हृदय की मुक्तावस्था प्राप्त कर, रस दशा को पहुंचे हुए कवि थे। इन्होंने अपनी अंतशः चेतना की अभिव्यक्ति के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया है वह सहज वक्रता और अकृत्रिमता लिए हुए है।
13. ये वासना में पंकिल राजाओं के मानस का रंजन करने वाले चाटुकार नहीं थे, ये अपनी उमंग पर थिरकने वाले बुद्धि के टेढ़े–मेढ़े मार्ग पर चलकर सीधे–सीधे मार्ग पर चलने वाले भावुक कवि थे।
14. दरबार की घुटन से ऊबकर और स्वाभिमान को बनाए रखने के लिए इन्होंने दरबार को ठोकर मार दी, यही इनकी स्वच्छंदता का परिचय दिया।

संक्षेप में रीतिबद्ध कवियों से रीतिमुक्त/स्वच्छंदतावादी कवियों का अंतर समझा जा सकता है–

5.4 घनानंद की सौंदर्य चेतना

मानवीय जीवन को सरस और सृजनशील बनाने के लिए प्रेम की बहुत अधिक आवश्यकता होती है। प्रेम के अनेकानेक रूपों में नर–नारी का प्रेम सर्वाधिक पूर्ण तथा तादात्म्य मूलक होता है। इन प्रेम के स्तरों के संबंध में विचार करने पर स्थूल रूप से इसके तीन स्तर माने जा सकते हैं– भौतिक, आत्मिक और आध्यात्मिक। किंतु इन स्तरों को अलग–अलग कठघरों में बांट देना मनोवैज्ञानिक नहीं माना जा सकता। अपने आदिम रूप में भी प्रेम मात्र भौतिक नहीं हो सकता। शारीरिक मिलन के पूर्व भी जिस प्रकार के उल्लास, पुलक, आनंद या पीड़ा का अनुभव प्रेमी को होता है उस प्रकार का अनुभव किसी अन्य भौतिक उपलब्धि द्वारा नहीं हो पाता। प्रेमिका के आत्मिक सौंदर्य का संवेगात्मक तथा बौद्धिक सौंदर्य कम मूल्य नहीं आंका जा सकता। फिर भी प्रेमोत्पादन में भौतिक आकर्षण शारीरिक आकर्षण के महत्व को झुठलाया नहीं जा सकता। सौंदर्य के वस्तुपरक पक्ष का वग्रन साहित्यकारों का बहुत ही प्रिय विषय रहा है।

घनानंद रूप और सौंदर्य के अप्रतिम चित्रकार थे। उनके रूप सौंदर्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रत्येक छवि या चित्र के पीछे कवि की स्वानुभूति और अंतर–दृष्टि छिपी हुई है। इसी आत्मतत्व के अभाव में रीति कवियों के रूप वर्णन प्रायः समान अतः निष्प्राण हो गए हैं। जबकि घनानंद के रूप और छवि चित्रण परंपरा की लीक से हटकर है। इसी कारण घनानंद के सौंदर्य वर्णन में स्वच्छंदता, सूक्ष्मता तथा मौलिकता का योग है। वस्तुतः घनानंद सौंदर्यवादी थे। भाव सौंदर्य उनका प्रिय विषय रहा है। उनके पास जो था उसे उन्होंने सच्चाई से प्रस्तुत किया है। यही कारण है कि विभिन्न प्रकार की अनुभूतियों में श्रोता

'अपनी प्रगति जांचिए'

6. रीतिकाल की किस काव्यधारा को स्वच्छंद काव्यधारा कहा जाता है?
7. रीतिबद्ध कवियों ने अपने काव्य के अतिरिक्त किस भावना को शास्त्रीय परिपाटी से जोड़े रखा?
8. रीतिमुक्त कवि और कविता में किस तत्व की प्रधानता है?

टिप्पणी

या पाठक आत्मविभोर हुए बिना नहीं रहता। सुधियों को विसरा कर न जाने कहां पहुंचता है। घनानंद भावों के आरोह–अवरोह में पाठक को इस प्रकार बहा ले जाते हैं जैसे कोई नौका सरिता की तरल तरंगों पर फिसलती जा रही है। अतः प्रेम के अनन्य पुजारी को सौंदर्यवादी कहा जा सकता है।

घनानंद मूलतः प्रेम की पीर के कवि हैं, जिसका आत्मबुन सुजान नामक नर्तकी रही है, जबकि गौण रूप से राधा आदि गोपियां तथा श्रीकृष्ण भी उनके प्रेमभाव के आलंबन रहे हैं। फलतः उसका सौंदर्य–चित्रण भी उन्हीं पात्रों से संबंधित रहा है। इस पर आगे प्रकाश डाला जा रहा है।

सुजान का रूप एवं सौंदर्य चित्रण– घनानंद के रूपसौंदर्य की प्रेरक है–सुजान। सुजान के सौंदर्य को शब्दों के जाल में न तो बांधा ही जाना संभव है और न ही लेखनी द्वारा उसे अंकित कर पाना। अपनी इस विवशता का चित्रण करते हुए कवि ने लिखा है–

"पानिप अपार घन आनन्द उकति औछी,
जगत जगति जो कौन पै नपति है।"

अंगों का सामूहिक सौंदर्य वर्णन– घनानंद की लेखनी रीतिकालीन रीतिकवियों की तरह मात्र अंग–विशेष पर ही अटक कर नहीं रह गई है, अपितु वह तो अंगों के सामूहिक सौंदर्य का चित्रण करने में सिद्धहस्त है। उदाहरणार्थ– लजीले, सजीले तथा रसीले सौंदर्य का कितना ललित तथा मनोहर चित्रांकन कवि की कला कर गई है–

"जाजनि लपेटी चितवनि भेद–भाय–भरी,
लसति ललित लोल–चख–तिरछानि मैं।
छवि को सदन गोरो बदन, रुचिर भाल,
रस निचुरत मीठी मृदु सुखक्यानि मैं।"

नायिका का एक–एक अंग कवि को प्रिय एवं मधुर लगता है, उसकी एक–एक चाल और एक–एक बात में उसे अपूर्व माधुर्य लक्षित होता है। सुजान का रूप घनानंद ने इसी भाव से अंकित किया है।

घनानंद ने सुजान रूप का क्रमबद्ध रीति स नख–शिख वर्णन नहीं किया है। सुजान के जिस अंग का आकर्षण जब जितना तीव्र हुआ है उतने ही उन्मेष के साथ उनके छंद लिखे गए हैं। क्रमबद्ध रूप से एक साथ शिख से नख तक का वर्णन कर कवि परिपाटी का अनुसरण उन्होंने नहीं किया है। सुजान का सौंदर्य वण्रन का प्रत्येक छंद उसकी एक नई छवि लेकर हमारे समक्ष उपस्थित होता है। छवि में नवीनता तीन कारणों से आई है–

(क) दृष्टिकोण बदल जाने के कारण, (ख) शोभा की अतिशयता के कारण और (ग) ह्रदयगत प्रेम के आधिक्य के कारण। भिन्न–भिन्न अवयवों की नई–नई दृष्टियों से संश्लिष्टता के कारण वर्णित छवियां नानाबिध हो गई है। साथ ही सुजान के रूप और अंग–प्रत्यंग का सौंदर्य 'क्षण–क्षण नवीनता' वाले सिद्धांत के अनुसार जितनी बार वर्णित हुआ है, उतनी ही बार नई शोभा और प्रभाव के साथ कहा गया है। "सुजान की रूप

सौंदर्य वर्णन की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उन्होंने साक्षातकृत एवं स्वानुभूतिपूरक सौंदर्य का आसक्तभाव से वर्णन किया है। प्रत्येक छवि वर्णन के पीछे कवि की अपनी अनुभूति और अपनी दृष्टि छिपी हुई है। इसी आत्मतत्व के अभाव में रीति कवियों के रूप वर्णन एक से और निर्विशिष्ट हो गए हैं जबकि घनानंद जी के रूप और छवि चित्र स्वकीय और अपरंपरागत कहे जाएंगे। घनानंद जी के काव्य के सौंदर्य चित्रण में जो नवीनता है, ताजगी है, सूक्ष्मता है, स्वच्छंदता और नवीन भावनाओं और कल्पनाओं का योग है वह सौंदर्य चित्रण की इसी आत्म–परक दृष्टि के कारण ह। बाह्य रूप सौंदर्य और रंग–लावण्य के भी तह में जाकर कवि ने जगह–जगह सुजान के आंतरिक सौंदर्य की जो झलक दी है वह भी बड़ी मार्मिक और ह्रदयस्पर्शी है।

कतिपय चित्र या वर्णन रीति शैली पर भी उपलब्ध होते हैं, जिसमें अलंकारों की योजना के सहारे रूप का साक्षात्कार कराया गया है, किंतु वहां भी आलंकारिता में नयापन और ताजगी मिलती है। मात्र पिष्टपेषण अन्य कवियों में एक बार मिल भी सकता है पर घनानंद में नहीं।

नायिका के विभिन्न अंगों का सौंदर्य वर्णन– घनानंद के काव्य में भिन्न–भिन्न अंगों का बिरल रूप चित्रण मिलता है। कुछ अंगों का वर्णन अवलोकनीय है–

केश – *चीकन चिहुर नीके आनन बिथुरि रहे,*
कहा कहौं सोभा भाग भरे भाल सीस की।
मनौ घनानंद सिंगार रस सों संवारी,
चिक मैं बिलोकति बहुनि रजनीस की।

नेत्र – *बंक विसाल रंगीले रसाल छबले कटाछ कलानि में मंडित।*

नासिका – *नीकी नसापुट ही की उचनि अचम्भे भरी,*
मुरि कै इचनि सों न क्यों हूं मन तें मुरै।

कपोल – *गोरे कोपलनि लाली गुलाब की मोय रही कछु पोंछेऊ पाछैं।*
दर्पन देखि हियें हुलसै सुलसें छवि छवै मुसक्यों ही कटाछै।

दसन – *दसन–वसन ओली भरियै रहै गुलाल,*
हंसनि लसनि त्यौं कपूर सरस्यौ भरै।

उरोज – *आंगनि पानिप–ओप खरी निखरी नव जोवन की सुघराई।*
नैनति बोरति रूप के भैंर अचम्भे–भरी छतिया–उघराई।।

कटि – *है किंधौ नाहि लगी लगी सी लखी न परै कवि क्यौं है प्रमानै।*
तो कटि–भेदहि किंकनि जानति तेरी सौं तेरी सुजानहौं जानै।।

अंग–सौंदर्य वर्णन की विशेषताएं– उपर्युक्त वर्णनों में कवि दृष्टि नेत्रों के रूपाकार तथा उनकी विशालता पर तो रही ही है, साथ ही उनकी चंचलता, स्निग्धता, तीक्ष्णता पर भी रही है। नेत्रों की श्यामलता, उज्ज्वलता, सुंदरता, काम–मद–मत्तता, आनंनद के आसव से छका होना, ओजस्विता, अंजन–अंजित होना, रसिकता, अरबीलापन

टिप्पणी

(अड़ने की प्रवृत्ति), तीक्ष्णता, प्रसिद्ध उपमानों का दर्प करने की शक्ति, सलज्जता, शीलयुक्तता, हंसीलापन, स्नेह समन्वित होना, तृप्ति आदि बातों का वर्णन नाना छंदों में किया गया है। घनानंद ने अपनी प्रेमिका के ऐसी गुणशील नेत्रों का वर्णन बार–बार किया है–

"बंक विसाल रंगीले रसाल छबीले काछ कलानि में पंडित।
सांवल सेत निकाई–निकेत हियौ हरि लेत हैं आरस–मंडित।।
देधि के प्रान करैं फिरि दान सुजान खरे भरे नेह अखंडित।
आनन्द–आसव–घूमरे नैन मनोज के चोजनि ओज प्रचंडित।।"

निम्नांकित छंद में नेत्रों के रूप–सौंदर्य की प्रत्येक गतिविधि का सहज ही चित्रण हो गया है। ये नेत्र मीन, कमल, खंजन, हिरण आदि सब उपमानों को हीन कर देते हैं। ये पैने हैं, अड़ीले हैं, घातक हैं–

"मीन–कंज–खंजन–कुरंग मान भंग करैं
सीचे घनानद खुले संकोच सों मढ़े।
पैने नैन तरे से न हेरे मैं और कहूं
घाती बड़े काती लिए छाती पै रहैं चढ़े।।"

नेत्रों या उनसे उत्पन्न कटाक्षों तथा उने प्रभाव को घनानंद ने विस्तार से वर्णन किया है। वह सूरदास की मुक्त स्वच्छंद भावमयी वर्णन शैली का स्मरण दिलाता है, जहां वे कहते हैं–'उपमा एक न नैन गही।' प्रेम मार्ग के इस धीर वीर पथिक का हृदय इन नेत्र–बाणों से बिंधा हुआ था क्योंकि उसकी दृष्टि बराबर नायिका के रूप–सौंदर्य पर ही टिकी रहती थी।

नायिका का वर्णन कवि ने बिल्कुल ही नये ढंग से किया है, परंपरा की जिसमें कोई भी झलक नहीं है। सुजान की नाक जरा चढ़ी रहती है। नाक चढ़ी रहना मुहावरा है जिसका आशय है सदा ईषत् रोष में रहना। निष्ठुर सुजान की प्रकृति ऐसी ही थी।

दर्शनों के वर्णन में उनकी शुभ्रता और चमक ही विशेष वर्णित हुई है। उनकी कांति को मौक्तिकदामक्त ठहराया गया है तथा होठों के वर्णन में अरुणता की चर्चा की गई है। सुजान के रूप वर्णन के साथ–साथ अपने हृदय और मनोभावों का स्पर्श देकर घनानंद ने इन रूप चित्रों को अधिक जीवंत बन दिया है और कवि ग्रीवा के वर्णन में कंबु–कपोत आदि की मिसालें बैठाते पर घनानंद उसी चित्र को प्रस्तुत करने वाले कवि हैं जिसका संबंध परिपाटी विहित रसज्ञता से नहीं वरन आत्मगत अनुभूति से होता था।

संपूर्ण मुख का वर्णन करते हुए कभी घनानंद ने सुजान को रूप की राशि ठहरा दिया है, कभी उसके सौंदर्य–सुधा की अनुभूति कर चकोरों को उसके पीछे दौड़ा दिया है और कभी उसके सहस मुखमंडल को सिंधोरिया फल के समान कहा है।

उरोज, उदर, पीठ और कटि– घनानंद द्वारा सुजान के उन्नत उरोजों का विषद वण्रन न करते हुए केवल एक या दो स्थलों पर ही उनका किंचित वर्णन किया गया है, जिनमें विस्तार के साथ उपमानों की झड़ी नहीं लगाई गई है, न दुंदुभियों के औंधा किया

टिप्पणी

गया है तथा न पर्णकुटी के बीच शिवजी को बिठाया गया है वरन् केवल उस प्रभाव को व्यंजित किया गया है तो सुषमायुक्त एवं यौवन सूचक उरोजों द्वारा कवि के मन पर पड़ता है–

"अंगनि पानिंप–ओप खरी, निखरी नवजोवन की सुघराई।
नैननि बोरति रूप के भौंर अचम्भे–भरी छतिया उघराई।।"

उदर या पेट का वर्णन मध्यकालीन हिंदी काव्य में बहुत कम हुआ है और इतनी नव्य रीति और भावोन्मेष के साथ तो बिल्कुल ही नहीं। कमनीय कामिनी के उदर सौंदर्य के प्रभाव की भी ऐसी सप्राण प्रतीति कहीं नहीं कराई गई है। उपमानों को ओछा ठहराकर उदर–सौंदर्य का उत्कर्ष दिखलाया गया है–

"ताकैं तो उदर घनानंद सुजान प्यारी,
औछी उपमान की गरूर ओरे लौं गरै।"

इसी प्रकार सुजान की प्यारी पीठ की सुंदरता का भी भाव–संपृक्त वर्णन भी लक्षित किया जा सकता है–'जान की पीठि लखें घनानंद आन तें होति उचाटी।'

कटि की सूक्ष्मता और संदिग्ध अस्तित्व के वर्णन में घनानंद में इस रस लिया है और कटि–वण्रन संबंधिनी जो हास्योत्तेजक उक्तियां कवियों ने लिखी है घनानंद ने इनमें वृद्धि कर दी है। उसके वर्णन में कवि ने उक्ति–विधान अवश्य अपने ढंग से किया है किंतु काव्य में कोई नवीनता नहीं है–

"रूप धरे धुनि लौं घनानंद सूझति बूझ फी दीठसु तानौ।
लोयन लेत लगाय कै संग अनंग अचम्भे की मूरति मानौ।।
है किधौं नाहिं लगी अलगी सो लखी न परै कवि क्यौं हूं प्रमानौ।
तौ कटि–भेदहिं किंकनि जानति तेरी सौं एरी सुजान हौं जानौ।।

पिंडली–मुखा, एड़ी और तलवा (महावर और मेंहदी)– घनानंद जी ने सुजान की पिंछली और मुख (एड़ी के ऊपर चारों ओर का घेरा) के संबंध में कहा है कि साक्षात रति–सी सुजान की सुंदर पिंडलियों की गोराई को देखकर मन उन्हीं में अनुरक्त हो जाता है, पिंडलियों की छवि पर ही पागल मन कुछ देर मुख की शोभा देखकर ठिठक रहता है और इसी प्रकार क्रमशः एड़ी, तलवे और महावर में लीन होता होता हुआ उसके पैरों पर ही लुब्ध होकर बेसुध हो जाता है–

"रति सांचे ढरी अछ्वाई भरी पिंडुरीन गुराइयै पेखि पगै।
छवि धूमि धूरै न मुरै मृखान सों लोभी खरो रस झूमि उगै।
घनआनन्द ऐंड़िनि आनि भिड़ें तरवानि तरे तें भरै न डगै।
मन मेरी महाउर चायनि च्वै तुव पायनि लागि न हाथ लगै।।"

समस्त शरीर तथा आभूषण वर्णन– नायिका के समस्त शरीर का वर्णन करते हुए कवि ने उसमें सर्वत्र विकास तथा उल्लास दिखाने के लिए उसमें बसंत के अधिवास की कल्पना की है और भूषण–भूषित तन की चर्चा करते हुए कवि ने उने प्रभावों का विशेष

टिप्पणी

विवरण दिया है। ये वर्णन भी सुजान की अंग–अंग की उत्फुल्लता और आभरण–सज्जा उपस्थिति कर उसके रूप की भावना को उत्कर्ष प्रदान करते हैं–

"गोरे डंड पहुंचानि बिलोकत रीझि रंग्यौं लपटाय गयौ है।
पन्नन की पहुंची न लखें पुनि आभा तरंगनि संग रयौ है।
नीलमनीन नियैलैं बनी रुचि–रूप–सनी सु धनीन छयौ है।
चारू चुरीन चितै घनानंद चित्त सुजान के पानि भयौ है।"

घनानंद के इन चित्रों में एक प्रकार की स्वच्छंदता है जो परंपरागत सौंदर्य चित्रों से उन्हें पृथक करती है। इन चित्रों को ताजगी और सुष्ठुता के सामने काव्य परंपरा के क्रमागत सौंदर्य चित्र थोथे और फीके प्रतीत होते हैं। वह स्थूल अवयवों के सौंदर्य का उद्‌घाटन करते हुए उनकी सूक्ष्म विशेषताओं तक भी गया है। और अंगों की कांति, उज्ज्वला, अरुणाई, सौंदर्य की सहजता, सुकुमारता, मधुरमा, उनमें निहित तृप्ति तीक्ष्णता, उनमद, शैथिल्य, गरूर, तारुण्य, नवीनता आदि बातों तथा अंगों की मनोहर चेष्टाओं और प्रभावी एवं मर्मस्पर्शी क्रिया–कलापों के चित्रण द्वारा घनानंद ने अपने प्रणय–भाव के आलंबन सुजान को राशि–भूत, रस और गंध की एक वास्तविक विभूति के रूप में प्रस्तुत किया है।

इसी प्रकार घनानंद ने रूप सौंदर्य का जो चित्रण संयोग के परिप्रेक्ष्य में किया है यह संयमित है। घनानंद का मन रति, चुंबन, आलिंगन, सुरति आदि प्रसंगों में नहीं रमा है। इन प्रसंगों के वर्णन में स्थूल मांसलता आ जाती है और जहां मांसलता आई कि शालनीता का क्षय हो जाता है। घनानंद ने जहां कहीं भी इस प्रकार के संभोगजन्य रूपांकन किये हैं वहां कवि–मर्यादा तथा शालीनता की प्राचीन को फांदने का साहस नहीं कर सका है। यही कारण है कि ऐसे अल्प प्रसंगों में भी कवि रूप–सौंदर्य की भावात्मकता से दूर नहीं हट सका है। उदाहरणार्थ निम्नांकित द्रष्टव्य है जिसमें प्रेमी तथा प्रेमिका सहबास कर रहे हैं। नायिका आत्म–समर्पण कर चुकी है। उसने आभूषण उतार दिए हैं। युगल आलिंगनबद्ध है। इतना होने पर भी नायक की अतृप्त मनोवृत्तियां डूब–उतरा रही हैं। वह अपलक उस दिव्य नग्न सौंदर्य को निहारता रहता है–

"पौढ़े घनानंद सुजान प्यारी परजंक,
धरे धन अंक तऊ मन रंक–गति है।
भूषण उतारि अंग अंगहि सम्हारि,
नाना रुचि के विचार सों समोय सीझी मति है
ठौर ठौर लै लै राखै और और अभिलाखैं,
बनत न भाखैं तेई जान दसा अति है।
मोह–मद–छाके घूमें रीझि भीजि रस
झूमैं गहैं चाहि रहैं अहा कहा रति है।"

इस चित्रण में यद्यपि ऐन्द्रियता प्रधान हो गई है तथापि इसकी प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें मानसिक तथा शारीरिक आकर्षणों का सहज सामंजस्य हो गया है। यही कारण है कि यहां रूप–सौंदर्य अधिक प्रभावशाली हो गया है। इस रूप–सौंदर्य का

टिप्पणी

मूलाधार प्रेम और यौवन है। घनानंद ने ऐसे ही लावण्य में सौंदर्य–छवि का पान किया है। डॉ. बच्चन सिंह के शब्दों में– "अपने प्रिय का रूप चित्र खींचने में घनानंद ने रीतिबद्ध कवियों की भांति स्थूल अप्रधान यौन अंगों के आकार और व्यापार का वर्णन नहीं प्रस्तुत किया है। ये मुख्यतः प्रिय के तरल सौंदर्य पर रीझे हैं। प्रिय की पात्रता प्रायः दो वस्तुओं में निहित दिखाई देती है– रूप में और गुण में। घनानंद की प्रेमिका में इन दोनों का मणिकांचन योग है।"

5.5 घनानंद की काव्य–भाषा

किसी भी भाव की उदात्तता, उसकी गहनता, प्रबलता, एवं उसकी मार्मिकता आदि की उचित अभिव्यक्ति भाषा के माध्यम से ही होती है। यदि भाषा में शक्ति नहीं है तो वह किसी के भावों को उसके वास्तविक रूप में अभिव्यक्ति देने में असमर्थ हो जाती है और तब उच्च भाव–अनुभूतियों से युक्त किसी संवेग को भी उचित प्रस्तुति नहीं मिल पाती। फलस्वरूप उसके भाव स्पष्ट नहीं हो पाते। काव्य में तो भाषा की सामर्थ्य का महत्व सर्वोपरि होता है, क्योंकि काव्य–रचना भावना–प्रधान होती है, तथ्य प्रधान नहीं। महाकवि घनानंद की प्रेमानुभूतियों एवं भक्तिभाव की गहनता को उसके वास्तविक स्वरूप में अभिव्यक्त करने का श्रेय उनकी भाषा को ही है।

साधारण जन की अपेक्षा कवि अनुभूतियों का धनी है, कल्पनाओं का स्रष्टा है, रस भोक्ता है, परंतु उनका सुंदर भाव जगत अनुराग रोदन के समान निष्प्राय एवं निष्प्रयोजन है। यदि उसका आकार साकार नहीं होता, यदि वह मानव मात्र के लिए इंद्रिय गोचर नहीं है, यदि उसे कानों से सुना नहीं जा सकता, नेत्रों से देखा नहीं जा सकता। इस गुण से विभूषित होने के लिए कवि अनुभूति, कल्पनाओं, भावों एवं रसों को अभिव्यक्ति की अपेक्षा है। अभिव्यक्ति व वर्णन शैली है जिसमें कवि अपनी हृदय जनित की पूंजी अर्थात अनुभूति को अनेक उपकरणों के कलात्मक प्रयोग द्वारा वाणी प्रदान करता है, अनुभूति को शब्द रूप देता है। अतः कवि का कलात्मक पक्ष भी विषयवस्तु पक्ष या अनुभूति की भांति प्रभावी होना अनिवार्य होता है। दूसरे शब्दों में कहें तो कथा को पाठक तक सही ढंग से सुगमतापूर्वक पहुंचाने का एकमात्र साधन काव्य कला ही है। इसलिए काव्य में इसके महत्व को निर्विवाद रूप से स्वीकार किया गया है। रीतिकाल जिसमें घनानंद का कवि पल्लवित पुष्पित हुआ था, शिल्प प्रधान युग था। फलस्वरूप उसे 'कला काल', 'अलंकृत काल' आदि नामों से भी अभिहित किया गया। कविता बिना अलंकार के कविता नहीं कहलाती थी–

'भूषण बिनु न बिराजई कविता बनिता मित'

घनानंद जैसे रीतिमुक्त कवियों के लिए तो यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कवि को उनकी जीवनगत आवश्यकता थी। अतः उन्होंने इसे खिलवाड़ रूप में नहीं लिया, एक जीवन सारांश के रूप में ग्रहण किया है। मार्मिक भाव विधान की भांति ही व्यंजना कौशल की दृष्टि से घनानंद की कुछ निजी विशेषताएं हैं।

'अपनी प्रगति जांचिए'

9. प्रेम के कितने स्तर माने गए हैं?
10. घनानंद का प्रिय विषय क्या रहा है?
11. घनानंद के रूप–सौंदर्य की प्रेरक कौन थी?
12. अपने प्रेम–काव्य के संदर्भ तथा भाव के आलंबन रूप का वर्णन घनानंद ने किसके द्वारा किया है?

टिप्पणी

भावाभिव्यक्ति– ब्रजनाथ इनकी भावाभिव्यक्ति को समझने के लिए कहते हैं–

जग की कविताई को धोके रहै,
हयां, प्रवीनन की मति, जाती चकी।
समुझै कविता घनआनंद की,
हियें आंखिन नेह की पीर तगी।

इनकी भावाभिव्यक्ति में कल्पना के विधान पर अनुभूति की समतलता है। बिहारी आदि रीति–कवियों की कविता जहां 'वाह' है वहीं घनानंद की कविता 'आह' है।

भाषा– भाषा को भावभिव्यक्ति का साधन माना जाता है। ब्रज भाषा जो रीतिकाल तक आकर पूर्णतः परिष्कृत व साहित्यिक हो गई थी। इस काल में ब्रज भाषा में जहां छंद, अलंकार, कवि वर्णन परिपाटी आदि पर इतने विसतार से विचार किया गया पर एक भी जगह ठीक नहीं प्रयुक्त हुई। भाषा प्रयोग में अराजकता दिखाई देती है। घनानंद ने इस अराजकता से अपने को बचाया है। इनकी 'सुजान हित' विशुद्ध ब्रजभाषा में लिखी गई रचना है।

घनानंद के प्रशस्तिकार ब्रजनाथ ने इन्हें 'ब्रजभाषा प्रवीन' ओर 'भाषा प्रवीन' दोनों बताया है। कहीं–कहीं भक्ति विषय रचनाओं में अरबी–फारसी, पंजाबी व अवधी आदि भाषाओं का प्रचुर प्रयोग मिलता है पर उनका प्रयोग स्वाभाविक ही है। ब्रजभाषा में उनकी आवश्यक घुसपैठ नहीं की है।

आधुनिक युग में बाबू जगन्नाथ दास रत्नाकर ने जब साहित्यिक ब्रजभाषा का व्याकरण लिखने का निश्चय किया तो रीतिकाल के केवल दो ही कवि मिले, जिन्हें प्रामाणिक आधार बनाया जा सकता था। इनमें एक घनानंद और दूसरे बिहारी थे। अतः इन्हें 'ब्रजाभाषा प्रवीन' कहना सर्वथा संगत ही है।

शब्दावली– घनानंद की रचना में तद्भव शब्दों का सर्वाधिक है। तत्सम् का प्रयोग भक्तिकाल में ही नहीं रीतिकाल के आचार्यों ने भी किया किंतु तत्सम् हिंदी की बोली विशेष ब्रजभाषा के अधिक उपयुक्त नहीं है। अतः उन्हें तद्भव में परिवर्तित किया गया। उदाहरणार्थ कुछ शब्दावली देखिए–

तद्भव– अथिर (अस्थिर), निहकाम (निषकाम), सुतंत्र (स्वतंत्र), वेदनि (वेदना), विथा (व्यथा)।

देशज– रीझबी, देखबी, बेड़ी, पैछर आदि।

विदेशी– दाम, निशानी, दिलजानी, हुस्यार आदि।

शब्द शक्ति– भाषा की शक्ति संपन्नता पर विचार करते हुए भारतीय साहित्यशास्त्र शब्द की तीन शक्तियां– अभिधा, लक्षणा और व्यंजना मानी है। वाच्यार्थ का बोध कराने वाली अभिधा, लक्ष्यार्थ का बोध कराने वाली लक्षण होती है। जहां इन दोनों से काम नहीं बनता तब कवि व्यंजना शक्ति का सहारा लेते हैं।

घनानंद उस युग में अकेले कवि हैं जिन्होंने इन शक्तियों का पूरा उपयोग किया है। इनकी इस प्रवृत्ति को लक्ष्य करते हुए शुक्ल जी ने लिखा है– "भाषा के लक्षक और व्यंजक

रूप की सीमा कहां तक है, इसकी पूरी परख इन्हीं को थी। लक्षणा का विस्तृत मैदान खुला रहने पर भी हिंदी कवियों ने उसके भीतर बहुत ही कम पैर बढ़ाया। एक घनानंद ही ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने इस क्षेत्र में अच्छी दौड़ लगाई।"

टिप्पणी

तुम कौन धौं पढै हो लला, मन लेहु पै देहु छटांक नहीं।

आदि में सभी जगह उनकी पहचान होती है। उदाहरणार्थ–

भोर ते सांझ लौं कानन और निहारित बावरी नैकु न हारति।

× × ×

मोहन सोहजन जोहन के लागियै इन आंखिन के उर आरति।।

उक्ति वैचित्र्य– काव्य में उक्ति वक्रता के कई संकेत हैं पर मुख्यतः वक्रता दो ही रूप में होती है– वाग्वैदग्ध्य तथा उक्ति वैचित्र्य।

वाणी अपनी सहजता की परिधि से बाहर उठकर कुलांचे भरने लगती है तब विदग्धता का जन्म होता है। विदग्ध उक्ति ऐसे बाण के समान है जो पाठक के हृदय पर चोट किए बिना मानती ही नहीं। जैसे कवि ने अपने उपालंभ कथन की भूमिका का निर्माण किया है और अंतिम पंक्ति में पूर्ण आदेश एवं वैचित्र्य से संयम करने कथन को कस दिया है।

अति सूधे स्नेह को मारग है। जहां नैकु सयानयप बांक नहीं।
तुम कौन धौं पाटी पढ़ै हो लला मन लेहु पै देहु घटाकं नहीं।

मुहावरे व लोकोक्तियां– मुहावरे व लोकोक्तियां जनजीवन में चिरकाल से चलते आ रहे भावपूर्ण एवं चमत्कारपूर्ण प्रयोग होते हैं। इनमें जीवनगत अनुभूतों को अत्यंत संक्षेप में व्यक्त करने की अदभुत क्षमता होती है। काव्य में स्थान प्राप्त कर ये भाषा की अभिव्यक्ति क्षमता में अपूर्ण वृद्धि करते हैं। यद्यपि घनानंद का झुकाव लोकोक्तियों की अपेक्षा मुहावरों की ओर अधिक है फिर भी इन्होंने कुछ लोकोक्तियों का अत्यंत सार्थक प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ–

जक लगना, घाव पर नमक होना, तृण तोड़ना, नामक चढ़ाना, दृष्टि छिपाना, पाले पड़ना, बि जाना, रंग उड़ना, रस लेना, आंखों में आना, आडे होना, उघड़ कर नाचना, उघड़ पड़ना, गैल रहना आदि का प्रयोग देखने को मिलता है।

रस– घनांनद रीतिकाल कवि है, अतः उनके काव्य में शृंगार रस की प्रधानता होना स्वाभाविक है। घनानंद के काव्य में शृंगार के संयोग व वियोग दोनों पक्ष देखने को मिलते हैं जिसमें वियोग को ही प्रधानता दी है।

लाजनि लपेटि चितवन भेद भाय भरी।
लसित ललित लोल चख तिरछनि मैं।

× × ×

भौर ते सांझ लौं कानन ओर निहारति बावरी नैकु न हारित

× × ×

मोहन सोहन जोहन के लगियै इन आंखियन के उर आरति।

टिप्पणी

छंद– हिंदी काव्य में आदिकाल से छंदों का विफल प्रयोग हुआ है। दोहा, छप्पय, सवैया और कवित्त का प्रयोग आदिकाल में प्रचुर रूप में हुआ। भक्तिकाल में पद व कवित्त की प्रधानता थी। रीतिकाल में कवित्त व सवैया का बड़ा व्यापक प्रयोग हुआ। कवित्त के मुख्यतया दो भेद हैं–मनहर व घनाक्षरी।

घनानंद का दूसरा मुख्य छंद सवैया है जो कई प्रकार का है–

किरीट – *भोर ते सांझ लौं कानन ओर*
निहारति बावरी नेकु न हारति।

अरसात – *रावरे रूप की रीति अनूप*
नयो नयो लागत ज्यों ज्यों निहारियै।

मत्तगयंद – *हीन भये जल मीन अधीन*
कहा कछु मो अकुलाने समाने।

अलंकार– रीतिकाल से पहले अलंकारों का स्वाभाविक प्रयोग ही अधिकांशतः देखने को मिलता है। रीति कवियों ने तो इस काल में काव्य में अलंकार नहीं अपितु अलंकारों में काव्य ठूंसने की कोशिश की है। कई विद्वानों ने इसे काव्य की आत्मा माना तो कुछ ने इस आधार पर काल का नामकरण करने का मत रखा। इस काल में रखते हुए भी घनानंद जैसे कवि स्वच्छंद प्रवृत्ति के कहलाए, जो सभी प्रकार की बनावट से दूर थे। घनानंद स्वयं कहते हैं–

लोग लागि है कवित्त बनावत,
मोहि को मेरे कवित्त बनावत।

फिर भी इनके काव्य में आए कुछ अलंकार देखे जा सकते हैं–

विरोधाभास– *बदरा बरसै रितु में घिरि कैं*
नित ही अंखिया उघरी बरसैं।

रूपक – *कंठ–कांच घटी तें वचन चोखे आसव लै,*
अधर पियालै पूरि राखति सहेत है।

अनुप्रास – *कारी कूर कोकिला कहां कौ बैर काढ़ति री,*
कूकि कूकि अबही करैजो किन कौरि लै।

यमक – *मानस को बन है जग पै*
बिन मानस के बन सौ दरसै सौ

उपमा – *लाली अधरान की रूचिर मुसक्यान सभै,*
सब सुख भोर हो सिंदूरा की सी फल है।

विभावना – *विरह समीर की झकोरन अधीर नेह,*
नीर भीज्यौ जीव तऊ गुडी लौं उडयौ रहे।

प्रतीप – *नीठि दीठि परै खरकत सो किर किरी लौं,*
तेरे आगे चन्द्रमा कलंकी सो लगत है।

टिप्पणी

काव्य गुण– काव्य गुण रस के धर्म हैं और जिनकी स्थिति रस के साथ अंचल है। जिस प्रकार मनुष्य में विभिन्न गुण विद्यमान हैं उसी प्रकार काव्य के मूल तीन गुण हैं– माधुर्य, ओज एवं प्रसाद। माधुर्य मूलतः अंतःकरण को आनंद से द्रवीभूत करता है। इसका रूप शृंगार रस में मिलता है। ओजगुण मन को दीप्त करता है। उसमें स्फूर्ति पैदा करता है। इसका रूप वीर, रौद्र आदि रसों में मिलता है। प्रसाद गुण काव्य अर्थ का बोध कराता है जो प्रायः सभी रसों में रहता है। काव्य गुण की दृष्टि से घनानंद के काव्य में माधुर्य गुण का ही सर्वाधिक प्रयोग हुआ है क्योंकि घनानंद मूलतः विप्रलंभ शृंगार के कवि हैं।

शब्द न्यास– घनानंद ने काव्य पंक्तियों में शब्द इस प्रकार बिठाये हैं कि उन्हें अपने स्थान से विस्थापित नहीं किया जा सकता है। केवल भावहत्या करके ही शब्दों का स्थान परिवर्तन या हरण किया जा सकता है। वर्ण साम्य, ध्वनि साम्य एवं रूप साम्य में कवि ने अपना अपूर्व कौशल दिखाया है। उदाहरणार्थ

1. *गति ढीली लजीली रसीली लसीलसल, सुजान मनोरथ बेलि फली।*

2. अति दीनन की गति हीनन की, पति लीनन की रति के मन है।।

समास पद्धति– 'गागर में सागर' भरने की लालसा से विरत होते हुए भी अभिव्यक्ति संक्षिप्तता कवि को अभिप्रेत हो रही है। परिणामस्वरूप घनानंद को भाषा में सामासिक पद्धति को स्वीकार करना पड़ा है। उदाहरणार्थ–

रूप–गुन–मद–उनमद नेह–तेह–भरे,
दक–बल आतुरी चटक–चातुरी पढ़े।
मीन–कंज–खंजन–कुरंग–मान–भंग करै,
सीचें घनआनंद खुल संकोच सौ मढे।।

अर्थ शिलष्टता– कवि का मन अनेक ऐसे स्थानों पर रमा है जहां एकाधिक अर्थशिलष्ट है। यह द्वयअर्थकता शब्द, पद, पदवाक्य एवं पूरे कवित्त तक की सीमा में समाहित हैं। इस शिलष्ट प्रयोग ने अभिव्यक्ति को विलक्षण बनाया है। उदाहरणार्थ 'सुजान' शब्द का अर्थ श्रीकृष्ण भी है और घनानंद की प्रेमिका वेश्या सुजान भी। इसी प्रकार 'घनानंद' का अर्थ एक और आनंद के बादल से है तो दूसरी ओर कवि के नाम से है।

अर्थ दुरूहता– घनानंद की भाषा नये अगम पंथों से जाने के कारण अर्थ भेद की दृष्टि से दुरूह हो गई है। भावों की नवीन अभिव्यक्ति पद्धति ने छंदों में क्लिष्टता समाहित कर दी है। घनानंद के इस अति वैयक्तिक भाषाभिव्यक्ति प्रयोग ने उनके काव्य को जहां अर्थ गांभीर्य प्रदान किया है वहीं दुरूहता, दुर्बोधता जैसे दूषण भी दिए हैं। उदाहरणार्थ–

उर मौन में मौन को घूंघ कै दुरी बैठी बिराजति बात बनी।
मृदु मंजु पदारथ भूषन सो सुलसै हुलसै रस रूप मनी।
रसना अली कान गली मधि ह्वै पधरावति लै चित सेज ठनी।
घनआनंद बूझनि अंक बसै बिलसै रिझवार सुजान धनी।

उपुर्यक्त पद से स्पष्ट है कि केवल 'रिझवार' काव्य मर्मज्ञ ही घनानंद की बात (अभिव्यक्ति) रूपी बनी (दुलहिन) को समझने में समर्थ जो मौन का घूंघट ओढ़े एक भवन में विराजमान है।

'अपनी प्रगति जांचिए'

13. भारतीय साहित्य शास्त्र के अनुसार शब्द की कितनी शक्तियां मानी गयी हैं?
14. काव्य में वक्रता कितने प्रकार की होती है?
15. काव्य के तीन मूल गुण कौन–से हैं?

5.6 घनानंद के काव्य में प्रकृति

टिप्पणी

प्रकृति मानव की चित्त वृत्तियों को सर्वदा पोषक तत्व देती रही है। मानव सभ्यता के विकास में प्रकृति का महत्वपूर्ण योगदान है। मानव ने प्रकृति को सहचरी के रूप में निष्प्राण अथवा अचेतनावस्था में नहीं देखा वरन वह भी उसी के समान सुख–दुख का अनुभव करती रही है। प्रकृति वैदिक–युग में काव्यश्री की शोभा वृद्धि करने में सहायक होती आयी है। वैदिक ऋषि ने उषा, सूर्य, चंद्र, वायु आदि के रूप में प्रकृति के वैभव को निहारा है। कालिदास, भवभूति, भारवि और माघ आदि इसके ज्वलंत प्रमाण हैं। वीरगाथा–काल के कवियों में अनेक रूपों में प्रकृति चित्रण दृष्टिगोचर होता है। भक्तिकाल में सूर, तुलसी, जायसी आदि ने प्रकृति वर्णन किया है। कृष्ण भक्त कवियों ने तो उसी को आधार बनाकर प्रकृति वर्णन किया– कालिन्दी काली है तो कृष्ण के वियोग के कारण विरह–व्यथिता गोपियां काली रात्री को भी सांपनि के समान समझती हैं–

"पिया बिन संपिन काली रात,
कबहुं जामिनी होत जुन्हैया डसि उल्टी है जात।"

इससे यह स्पष्ट है कि भक्तिकाल में भी प्रकृति उद्दीपन रूप में चित्रित की गई है। रीतिकालीन कवियों ने तो विशेष रूपों में इसी विधा का प्रयोग किया है।

काव्य में प्रकृति का समावेश प्रमुखतः सुख–दुख में सहानुभूति प्रदर्शन करने के रूप में रहता है या पात्रगत भावनाओं की उसांसों के रूप में। यह कभी नहीं होता कि संसृति में अपनी भावनाओं के विरुद्ध कुछ अन्याय दृष्टिगोचर हो। काव्य में वर्णित विषय इस प्रकार का हो जिससे वह सर्वसाधारण को उपभोग या अध्ययन अथवा रसास्वादन की वस्तु बन सके। केशव ने तो प्रकृति के विभिन्न उपकरणों को गिनाकर ही विश्राम कर लिया। घनानंद के काव्य में भी प्रकृति साधन रही साध्य नहीं। प्रकृति वर्णन को सुविधा की दृष्टि से विभिन्न शीर्षकों में विभाजित किया जा सकता है–

1. **उद्दीपन रूप में प्रकृति चित्रण–** प्रकृति मर्त्य के सुख–दुख की सहचरी है। प्रकृति नायक–नायिका के भावानुकूल ही हमारे सामने आती है। नायक या नायिका सुख में है तो यह उनके इस सुख में वृद्धि करेगी और दुख में है तो दुख का अतिरेक। काव्य–शास्त्री इस प्रकार के प्रकृति चित्रण को उद्दीपन विभाव में स्थान देते हैं। यह सुख एवं दुख भावों को उद्दीप्त करने में सहायक है, अतः इसके दो रूप कर दिए हैं–

   (क) **संयोग में प्रकृति का उद्दीप्तकारी चित्रण :** प्रायः सभी कवियों ने प्रकृति के इस भव्य रूप को अपने काव्य में स्थान दिया है। घनानंद ने भी प्रकृति के इस रूप को महत्व दिया है। वह प्रकृति को सूक्ष्म दृष्टि से देख सके हैं। जहां तक कार्य का संबंध है वह बड़ा ही सुंदर बन पड़ा है। संयोग में भी प्रकृति को सूक्ष्म रूप से तथा सुंदर ढंग से प्रस्तुत करना कवि की विशेषता मानी जाएगी।

टिप्पणी

घनानंद ने संयोग–काल में प्रकृति के द्वारा कितना रमणीक पर्यावरण तैयार कर दिया है। शरद की निशीथ, यमुना का परिमल जो पुष्पों से शोभायमान है और उस पर्यावरण में बहती परिमलयुक्त समीर और वह भी ज्योत्सनोज्ज्वल वितान के साथ कल्पना भी इस आनंद से भींज उठती है–

देखि सुहाई सरद की जामिनी रस भीनी,
पूरन ससि प्राची उदै बिरहनि रुचि कीनी।
मोहन मदन गेपाल को वृन्दावन मोहे,
जमुना तरु कुसुमित महा अवनि मनि सोहे।
जेति जगमगै द्रुमलता अति सघन सुहाए,
त्रिविध पवन सुख बहे कहिए सु कहाए।

घनानंद का मन राधा–कृष्ण में खूब रमा है। वह सदैव उनकी रूप छवि से छके रहते हैं। उनका मन उसी में सरोबोर रहता। पावस ऋतु के अनुसार लताएं पुष्पित है, सुमन उत्फुल्ल हैं, कदंबों की पंक्तियां हैं, भ्रमरों का गुंजन हो रहा है– वहां राधा–कृष्ण विहार कर रहे हैं।

जहां भी कृष्ण–राधा की लीलाओं का वर्णन महाकवि घनानंद ने किया है वहां प्रकृति को पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। पंत के चांदनी रात में 'नौका विहार' की तरह प्रकृति सामने तो नहीं आई है, परंतु वह कार्य वही कर रही है जो पंत की प्रकृति वहां कर रही है। ब्रजभूमि का नाम लेने भर से ही मानव के मस्तिष्क में वहां की मनोहारिणी सौंदर्याभा सजीव हो उठती है। उस भूमि पर राधा–कृष्ण ने विभिन्न क्रीड़ाएं की हैं। यमुना का तट, तट के पास कुंजों की बहार क्यों न मन को मोहे।

महाकवि घनानंद वास्तव में विरही कवि हैं। उनका काव्य वास्तविक अनुभूति है। सुजान के अटूट प्रेम ने कवि के अंतर को अभिभूत कर दिया है– यही प्रेम वियोग के रूप में हृदय से फूट चला है।

(ख) **वियोग में प्रकृति का उद्दीप्तकारी चित्रण :** घनानंद के काव्य में संयोग वर्णन की अपेक्षा वियोग वर्णन प्रभावशाली है। जहां महादेवी वर्मा 'नीर भरी दुख की बदली' हैं, वहां घनानंद भी सुजान के वियोग में दुख की प्रतिमा बने हुए हैं। इसी रूप में प्रकृति घनानंद के काव्य में बहुत निखार पा सकी है। यहां सर्वप्रथम प्रकृति के उस रूप के दर्शन होते हैं जो सुखकारी है परंतु प्रियतम के उदासीन हो जाने से यह कष्टदायक हो गई है। अमृत से विषय टपकता है। पुष्पों से कांटों का उद्रेक हो रहा है। शशि तम उगल रहा है, जल शरीर को जला रहा है, राग स्वरों को विकृत करता है; जो संपति मुसीबत को दूर करने वाली थी, वह विपरीत गुण दे रही है। महान गुण दोष हो गए हैं, जो औषधि रोगमुक्त करती है वह रोग को प्रकट कर रही है, इसी प्रकार सुजान की रस में विरसता की अनीति है। यह सब कुछ दिनों का फेर है।

यथा–

सुधा रचवत विष, फूल मैं जमत सूल,
तम उगिलत चन्द्र, भई नई रीति है।
जल जारै अंग और राग करै सुरभंग,
सम्पत्ति विपत्ति पारै, बड़ी विपरीति है।

संयोगावस्था में जो पपीहा नायिका के प्रेम को उद्दीप्त करने वाला रहा वहां वियोगावस्था में प्रखर वेदना पहुंचा रहा है। उसके पिऊ–पिऊ शब्द से नायिका व्याकुल हो उठती है। वह कहती है–

बैरि वियोग की हूकनि जारत, कूकि उठै अचका अधरातक।

वियोगावस्था में सूर ने रात्रि को नागिन बतलाया है। घनानंद ने रात्रि को नागिन से भी भयावह बतलाया है। नागिन के डस लेने से जो प्रभाव शरीर पर पड़ता है, उससे भी कहीं अधिक इस रात्रि का मन पर पड़ता है। नागिन से डस लेने पर कड़ी वस्तु मीठी लगने लगती है परंतु रात्रि को देखने भर से सरस वस्तु भी कड़वी हो जाती है। विभिन्न प्रकार की नागिन से रात की तुलना करके यह प्रमाणित करती है कि रात नागिन से कहीं अधिक भयावह है। यथा–

करुवा मधुर लागै बाकी विष अंग भएं,
याहि देखें रस हूं मैं कटुत बसति है।
वाके एक मुख ही से बाढ़त बिकार तन,
यह सरवंग आनि प्राननि गसति हैं।

इस प्रकार आदि कविता से लेकर रीतिकाल तक प्रकृति का उद्दीपन रूप प्रधान रहा है। उसका विस्तार से वर्णन हुआ है। कहने को तो कहा जा सकता है कि घनानंद ने इसमें क्या नवीनता ला दी? वह परंपरा से चला आ रहा प्रकृति वर्णन हुआ है, भाव सबमें मिल ही जाता है। परंतु घनानंद ने किस प्रकार प्रकृति का अवलंबन लिया है, उसे कितना स्वच्छंद रहने दिया है, यह देखा जाए तो घनानंद पर यह आक्षेप नहीं किया जा सकता। यद्यपि प्रकृति के इस रूप के चित्रण करने की दृष्टि से यह रीतियुगीन कवियों से आगे नहीं बढ़ पाए, प्रकृति को केवल साधन मात्र ही नहीं लिया। जहां आवश्यकता पड़ी वहां अन्य रूप से भी उसका चित्रण प्रस्तुत किया है। इस बात की पुष्टि ऊपर के अनेक उदाहरण करते हैं।

2. **आलंकारिक रूप में प्रकृति चित्रण–** जब प्रकृति के विभिन्न उपकरणों के साथ नायक–नायिका के अंग–प्रत्यंगों की समानता दरसाई जाए अथवा कभी प्रकृति के उपकरणों को नायक–नायिका के अंग–प्रत्यंगों से हेय बतलाया जाए तब प्रकृति का आलंकारिक रूप देखने को मिलता है। प्रायः सभी कवियों ने इस रूप में प्रकृति को अपनाया है। प्रभात का समय है। दही बिनोले की धई–धई ध्वनि मेघ ध्वनि का अनुकरण करती हुई समस्त ब्रज में घर–घर फैल जाती है–

धूमि रहे जित तित दधि मथना सुनत मेघ–ध्वनि लाजै री।

यहां मेघ–ध्वनि को को दही बिलौने की धई–धई से हेय बताया गया है। महाकवि महानानंद ने प्रकृति के इस रूप को राधा–कृष्ण या नायक–नायिका के रूप में प्रस्तुत किया है। वर्षा ऋतु के विभिन्न प्राकृतिक व्यापारों को विरहिणी पर घटाया गया है। विरह–रूपी सूर्य से शरीर–रूपी आकाश तप गया है, तथा छाती बिजली के समान दमकती है। हृदय–रूपी सागर से नेत्र–रूपी मेघ जल भरकर निशि–दिन बरसा करते हैं। ऐसी विलक्षण दशा हुई है कि पत्र भी नहीं लिख पाती है वहां नित सावन लगा है। दृष्टि–रूपी बैठक ने बरोनियां सदा ही औलाती की तरह टपका करती हैं।

टिप्पणी

विरहा रबि सों घट–व्योम तच्यौ, बिजुरी सी खिवे इकली छतियां।
हिय सागर तें दृग मेघ भरे, उधरे बरसें दिन औ रतियां।
घनानंद जान अनौखी दसा, न लखें दई कैसें लिखों पतियां।
तित सावन दीठि सु बैठक में–टपकैं बरुनी तिह औलतियां।

प्रिय की ज्योति के सामने प्रकृति के उपादान तुच्छ प्रतीत होते हैं। प्रायः रीतिकालीन कवियों ने चंद्रमा को नायिका के मुख की परछाई कहा है। घनानंद भी उसी तरह कहते हैं–

नित ही अपूरब सुधाकर बदन आशे,
मित्र एक आए जीति जालिन जगत है।
अमित कलानि ऐन रैन छमोस एक रस,
केस लय संग–रंग राचनि पगत है।
सुनि जान प्यारी घनानंद तैं दूनों दिये,
लोचन चकोरिन सों चोपति खगत है।
नीठि–दीठि परै खरकत सो किरकिरी लौ,
तेरे आगे चन्द्रमा कलंकी सो लगत है।।

घनानंद के काव्य में प्रकृति के आलंकारिक रूप के बहुत से उद्धरण सहज ही प्राप्त हो जाते हैं।

3. **उपदेश रूप में प्रकृति चित्रण–** आज प्रकृति को उपदेश रूप में प्रस्तुत करना उसके सौंदर्य मलीन करना है, परंतु रीतिकल तक प्रकृति के इस रूप को प्रायः सभी कवियों ने स्थान दिया। इस संबंध में बिहारी का यह दोहा बड़े महत्व का है–

नहिं पराग नहिं मधुर मधु, नहिं विकास यही काल।
अली कली ही सों बांध्यों, आगे कौन हवाल।।

महाकवि घनानंद ने कालिदास की भांति मेघ को दूत बनाया है। पवन ने भी दूत का कार्य किया है। प्रस्तुत कवित्त में वियोगिनी पवन को दूत बनाकर प्रियतम के पास भेजना चाहती है। वह प्रियतम की चरण–रज को आंखों में आंच कर वियोग–पीड़ा से छुटकारा पाना चाहती है, वह पवन को 'भाई' से संबोधित करती हुई कहती है–

एरे बीर पौन, तेरी सब ओर गोन बीरी,
तो सो और कौन, मनैं बुरकौंही बानि दै।
जगत के प्रान, ओछे बड़े तो समान घन–आनन्द,
निधान सुख दान आंखियान दै।
जान उजियारे गुन भारे अति मोहि प्यारे,
अब हैं अमोही बैठे, पीठि पहिचान दै।
विरह–बिथाहि मूरि आंखिन मैं राखौं पूरि,
धूरि तिन पायन की हा हा! नेकु आनि दै।

इसी प्रकार पं. अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध' ने 'प्रिय प्रवास' में पवन को दूत बनाया है और कहा है–

जो ला देगी चरण–रज तो तू बड़ा पुण्य लेगी।
धन्या हूंगी भगिनी उसको अंग में मैं लगा के।
पोऊंगी जो हृदय–तल में वेदना दूर होगी।
डालूंगी फिर शिर पर उसे आंख में मैं मलूंगी।

जहां घनानंद ने 'पवन' को 'भाई' कहा है वहां 'हरिऔध' उसे 'भगिनी' नाम से संबोधित किया है। विरहाकुल हृदय की भावना में साम्य है।

4. **आलंबन रूप में प्रकृति चित्रण**– प्रकृति जहां स्वयं वर्ण्य–विषय हो वहां पर प्रकृति का आलंबन रूप में चित्रण माना जाता है। उस पर कोई अन्य भावारोप नहीं। आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने 'कविता क्या है' निबंध में इस पर प्रकाश डाला है। बिंब ग्रहण वहीं होता है जहां कवि अपने सूक्ष्म निरीक्षण द्वारा वस्तुओं के अंग प्रत्यंग, वर्ण, आकृति तथा उसके आस–पास की परिस्थिति का परस्पर संश्लिष्ट विवरण देता है। बिना अनुराग के ऐसे सूक्ष्म भावों पर न दृष्टि ही की जा सकती है और न मन ही रम सकता है। अतः जहां ऐसा ही पूर्ण संश्लिष्ट चित्रण मिले वहां समझना चाहिए कि कवि ने प्रकृति को आलंबन रूप में ग्रहण किया है। बिहारी और सेनापति को छोड़ प्रायः सभी ने प्रकृति को उद्दीपन रूप में प्रमुखता प्रदान की है।

घनानंद ने 'बसंत' का वर्णन इसी प्रकार किया है–

वृन्दावन आनन्द घन राजत यमुना कूल।
सदा सुखद सुन्दर सरस, सब ऋतु रुचि अनुकूल।।
रितु और मौरै नवल वृन्दावन तरु बेलि।
सहज सुहाये देखिये आनन्द घन रस केलि।।

इसी को प्रकृति का स्वतंत्र वर्णन भी कहा जा सकता है।

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि घनानंद ने प्रकृति का वर्णन अपनी पूर्व–परंपरा को ध्यान में रखकर ही किया है। वह उसे आगे बढ़ाने का प्रयास करते हुए नहीं दिखलाई पड़ते हैं। प्रकृति वर्णन में सर्वप्रथम प्रकृति के उद्दीपन रूप को उन्होंने अपने काव्य में स्थान दिया है, तदुपरांत अलंकार रूप में प्रकृति चित्रण को। इन दोनों रूपों में उनको आशातीत सफलता मिली है। उद्दीपन में भी वियोग–पक्ष की ओर कवि का विशेष

ध्यान रहा है। आलंबन रूप में तो प्रकृति का वर्णन उनके काव्य में ढूंढ़ना पड़ता है। जैसे पूर्व कहा जा चुका है कि इस प्रकार के वर्णन को हम कवि के काव्य की विशेषता नहीं मान सकते। उपदेशात्मक रूप में प्रकृति चित्रण इनके काव्य में सुलभता से मिलता है। एक आलोचक के शब्दों में 'रीतिकालीन कवियों' की भांति उनका ध्यान प्रकृति के बाह्य स्वरूप पर ही टिककर नहीं रह गया वरन उनके ह्रदय पर पड़ने वाले प्रभाव की ओर विशेषतः गया है।" श्री राम वशिष्ठ के विचार से "घनानंद ने जिस प्रकार काव्य में अंतर्वृत्तियों के चित्रण को अपनाया और एक स्वतंत्र कवि के रूप में अपने व्यक्तित्व का प्रदर्शन किया उसी प्रकार प्रकृति वर्णन में उन्होंने रीतिबद्ध कवियों का अनुकरण नहीं किया। उनका प्रकृति चित्रण अपने काल के कवियों से अधिक व्यापक था।" अधिकांश विद्वान घनानंद के प्रकृति वर्णन को उसके युग का आदर्श प्रकृति वर्णन मानते हैं।

टिप्पणी

5.7 घनानंद की सुजान

घनानंद के काव्य में 'सुजान' का वर्णन मिलता है जो मुहम्मदशाह 'रंगीले' के दरबार में नृत्य–गायन–विद्या में प्रवीण वेश्या थी। इसी सुजान से घनानंद को प्रेम हो गया था। दरबार के अन्य दरबारी घनानंद से ईर्ष्या करते थे। दरबारियों ने इसी ईर्ष्यावश एक चाल चली। उन्होंने रंगीले से कहा कि घनानंद बहुत मीठा गाते हैं। उनकी बात में आकार रंगीले ने घनानंद को गाने का आदेश दिया लेकिन स्वाभिमानी घनानंद ने गाने से मना कर दिया। दरबारियों ने रंगीले को भड़का दिया कि ये आपके कहने पर नहीं सुजान के कहने पर गाएगा। यह सुनकर दरबार में सुजान को बुलाया गया और तब घनानंद ने गाना गाया, जिसे सुनकर बादशाह और दरबारी मंत्र मुग्ध हो गए। गाना समाप्त होने पर बादशाह के आग्रह को ठुकराने की धृष्टता के परिणामस्वरूप उन्हें दरबार एवं राज्य छोड़ने का आदेश मिला। आदेश स्वीकारते हुए जब घनानंद जाने लगे तब वे सुजान से भी चलने को कहने लगे लेकिन घन की लोभी सुजान ने उनके प्रेम भरे अनुरोध को ठुकरा दिया। अतः जान और जहान दोनों लुटा कर घनानंद वृंदावन की ओर अभिमुख हुए। जीवन से उन्हें पूर्ण विरक्ति हो गई थी। वृंदावन में उन्होंने निम्बार्क संप्रदाय में दीक्षा ग्रहण की। अतः उन्होंने राधा–कृष्ण की उपासना आरंभ की लेकिन वे सुजान को नहीं भूले। अतः उनके पदों में सर्वत्र सुजान ही आलंबन है। इसी कारण इनके काव्य पर आरोप लगाया जाता है कि इनका काव्य इनकी निजी पीड़ा का कोश है या इनकी ईश्वरीय भक्ति का रूप है।

इस संबंध में श्री शंभुप्रसाद बहुगुणा ने लिखा है– "जीवन की विरक्ति उनके लिए प्रेमपूर्ण राधा–कृष्ण के चरणों की अनुरक्ति बन गई। मरते दम तक वे सुजान को नहीं भूल पाए। राधा–कृष्ण को उन्होंने सुजान की स्मृति बना दिया और निरंतर सुजान के प्रेम में आंसुओं के वरों में ये गीत, कवित्त–सवैये लिखते रहे।" डॉ. श्रीराम अवध द्विवेदी ने लिखा है कि किसी साधारण बात से अप्रसन्न होकर उन्हें देश–निकाला दे दिया गया था और इस अपमानजन्य 'भावना' के वशीभूत होकर वे वृंदावन चले गए और मृत्युपर्यंत वहीं रहे। लाला भगवानदीन ने सुजान नामक वैश्या के प्रति घनानंद की अनुरक्ति का खंडन करते हुए लिखा

'अपनी प्रगति जांचिए'

16. मर्त्य के सुख–दुख की सहचरी कौन है?
17. वियोगावस्था में सूर ने रात्रि को क्या कहकर पुकारा है?
18. महाकवि घनानंद ने किसकी भांति मेघ को दूत बनाया?

टिप्पणी

है– "सुजान की इनके प्रति विरक्ति इनके भक्त होने के कारण नहीं थी, अपितु ये स्वयं 'भगवान कृष्ण' के प्रति अनुरक्त होकर वृंदावन में जाकर कृष्ण उपासना में लग गए थे और अपने परिवार का मोह भी इन्होंने उस भक्ति के कारण त्याग दिया था।" परंतु अधिकांश विद्वानों ने घनानंद का सुजान से प्रेम, बादशाह रंगीले द्वारा देश–निकाला और सुजान के तिरस्कार को सत्य माना है। इतना अवश्य कहा जा सकता है कि घनानंद के जीवन का अंतिम समय वृंदावन में बीता।

6.8 पाठांश

कवित्त

लाजनि लपेटि चितवनि भेद–भाय भरी
लसति ललित लोच चख तिरछानि मैं।
छबि को सदन गोरो भाल बदन, रूचिर,
रस निचुरत मीठी मृदु मुसक्यानी मैं।
दसन दमक फैलि हमें मोती माल होति,
पिय सो लड़कि प्रेम पगी बतरानि मैं।
आनंद की निधि जगमगति छबीली बाल,
अगनि अनंरग–रंग ढुरि मुरि जानि मैं।।1।।

प्रसंग

प्रस्तुत पद्यांश रीतिकाल की रीतिमुक्त धारा के कवि घनानंद के द्वारा रचित 'घनानंद कवित्त' से उद्धृत हैं। 'घनानंद कवित्त' शीर्षक ग्रंथ का यह प्रथम कवित्त है। यहां नायिका स्वयं ही अपने रूप एवं नेत्र, मुखादि विभिन्न अंगों की मुद्राओं का वर्णन कर रही है।

व्याख्या

नायिका जब अपने चंचल नेत्रों को तिरछा कर दृष्टि डालती है तो वह अत्यंत सुंदर प्रतीत होती है। उसकी यह तिर्यक् दृष्टि लाज से संश्लिष्ट है और विविध प्रकार के रहस्यों से पूर्ण है। चंचल नेत्रों की वह रहस्मयी, सलज्ज, तिर्यक् दृष्टि उसके ह्रदय के भेद को उजाकर कर देती है और उसके रूप–सौंदर्य को एक अनोखा लावण्य प्रदान करती है। उसका सुंदर गौर ललाट रूप–राशि का कोश है, सौंदर्य मानों वहीं निवास करता है। नायिका की मुस्कान इतनी कोमल और इतनी मीठी है कि उसके मुस्काने पर लगता है जैसे रसाधिक्य के कारण माधुर्य स्वतः ही निचुड़ रहा हो। प्रेम में उतावतली होकर जब वह अपने प्रेमी से लालसापूर्ण शब्दों में हंस–हंसकर प्यारी–प्यारी बातें करती है तो उसकी दंत–कांति उसके गोरे वक्षःस्थल पर प्रतिबिंबित होकर मोतियों की माला–सी जान पड़ती है। अभिप्राय यह है कि नायिका के दांतों की चमक इतनी अधिक है कि उसके वक्ष पर धारण की गई मोतियों की माला उसके दांतों के प्रतिबिंब की तरह जान पड़ती है। अपूर्व सौंदर्य की स्वामिनी नायिका आनंद रूपनी रत्न के भंडार की भांति जगमगा रही है, उसके आस–पास आनंद का प्रकाश

'अपनी प्रगति जांचिए'

19. 'सुजान' किसके दरबार में नृत्य–गायन–विद्या में प्रवीण वेश्या थी?
20. वृंदावन जाने के उपरांत घनानंद ने किस संप्रदाय में दीक्षा ग्रहण की?

फैल रहा है। वह जब मुड़ती है तो उसके प्रत्येक हाव–भाव से काम की चेष्टा ही प्रकट होती है।

विशेष

1. रीतिबद्ध परंपरा के विपरीत रीतिमुक्त कवि घनानंद ने नायिका के मुख से ही उसके रूप–सौंदर्य का वर्णन कराया है। रीतिबद्ध रचनाओं में यह कार्य नायिका की सखी का होता है।
2. युवावस्था में नेत्रों की चंचलता स्वाभाविक है और चपल, लोल नेत्रों का वर्णन काव्य–परंपरा में सम्मिलित भी है।
3. दंतपंक्ति की कांति के प्रतिबिंब और मुक्तामाला के साम्य का सुंदर प्रयोग हुआ है।
4. 'अंशनि अनंग' में विरोध है।
5. छंद–मनहरण कवित्त छंद है, इसे धनाक्षरी भी कहा जाता है। इस छंद के प्रत्येक चरण में इकतीस वर्ण होते हैं। सोलहवें तथा पंद्रहवें वर्ण पर यति होती है एवं अंतिम वर्ण हमेशा गुरु होता है।

सवैया

झलकै अतिसुंदर आनन गौर, छके दृग राजत काननि छ्वै।
हंसि बोलन में छबि फूलन की बरषा, उर ऊपर जाति ह्वै।
लट लाल कपोल कलोल करै, कल कंठ बनी जलजावलि द्वै।
अंग–अंग तरंग उठै दुति की, परिहे मनौ रूप अबै धर च्वै।।2।।

प्रसंग

घनानंद कृत 'घनानंद कवित्त' के इस सवैया छंद में नायिका की अंग–कांति का अत्यंत रुचिकर वर्णन हुआ है। यहां प्रेमिका के मुख, नेत्र, वाणी, लट, मुक्तामाला आदि का चित्रण तो है, किंतु वह प्रधान नहीं है। प्रधान है प्रेमी हृदय पर पड़नेवाला इन सबका सम्मिलित प्रभाव। अर्थात बाह्य पक्ष प्रधान न होकर आम्यन्ता पक्ष की ही प्रधानता है।

व्याख्या

नायिका को गौर मुख–मंडल सौंदर्य की अतिशयता से दीपित हो रहा है। नेत्रों ने यौवन–मद का छककर पान कर लिया, अतः वे कानों तक विस्तृत हो चले हैं। जब वह हंसकर बातें करती है तो उसकी वाणी से वक्ष पर सौंदर्य–पुष्पों की वृष्टि होने लगती है। बोलने से उसके संपूर्ण शरीर में कंपन होता है, विशेषकर मुख–प्रांत में; जिससे उसके रक्त कपोलों पर खेलती हुई लटें अधिक चंचल हो जाती हैं और सुंदर गले की शोभा बढ़ाती मोतियों की दो लड़ी की माला भी हिल उठती है। इस प्रकार, उसके प्रत्येक अंग में दीप्ति की लहरें इस तरह तरंगायित होती हैं मानो सौंदर्य की रसधार शरीर–घट से छलक कर धरती पर आ गिरेगी।

यौवन के मद ने नायिका की स्थिरता का हरण कर उसे चंचल बना दिया है। गोरे मुख–मंडल से उठी दीप्ति की लहर उसक अंग–प्रत्यंग में तरंगित हो रही है। मदमाती

टिप्पणी

आंखें फैलाकर कानों को छू लेना चाहती हैं। सौंदर्य की अतिशयता इतनी है कि हंसकर बोलने में जो सामान्य–सा आघात होता है, उसे भी सहन नहीं कर पाती और जिस तरह मंद पवन के हलके झोंके से लताओं से पूर्ण प्रस्फुटित पुष्प गिरने लगते हैं, उसी तरह हंसकर बोलने के हल्के आघात से सौंदर्य के पुष्प झरने लगते हैं। लटें तो स्वाभाविक रूप से चंचल होती हैं, और नायिका के चिकने कपोल पर उनके अधिक चंचल हो जाने का वर्णन कवि की सूक्ष्मेक्षिका दृष्टि को उजागर करती है। गले से लटकी माला का बोलने के प्रभाव से हिलना भी स्वाभाविक है और दो लड़ी की माला में एक लड़ी भी यदि हिलने लगे तो दूसरी लड़ी का हिलना भी सहज ही है।

विशेष

1. मोती के लिए जलज शब्द का सुंदर प्रयोग हुआ है। जल शब्द मोती की आब को, उसकी आभा को व्यक्त करता है। जल से पूर्ण वस्तु और यदि वह लटकती हुई हो तो आघात से उसका हिलना अत्यंत स्वाभाविक है।
2. कंपन और तरंग उत्पन्न होने की अनेक स्थितियों का एकत्र वर्णन है।
3. भावानुकूल पदावली 'अंग–अंग–तरंग' भी लहरों की सृष्टि करती प्रतीत होती है।
4. अलंकार

   उत्प्रेक्षा अलंकार का सुंदर चमत्कार है।

   उत्प्रेक्षा का लक्षण

   संशय में जो सांच सों, तेहि विधि को उपमान।
   अधिक होय उममेयतें, सो उत्प्रेक्षा जान।।
5. छंद

   समुखी सवैया छंद है, जिसके प्रत्येक चरण में चौबीस वर्ण एवं आठ सगण (।।S) होते हैं।

कवित्त

छबि को सदन मोद मंडित बदन चंद
तृषित चखनि लाल, कब धौ दिखाय हौ।
चटकीलों भेख करें मटकीली भांति सों ही
मुरली अधर धरे लटकल आय हौ।
लोचन दुराय कछू मृदु मुसक्याय, नेह
भीनी बतियानी कड़काय बतराय हौ।
बिरह जरत जिय जानि, आनि प्रानप्यारे,
कृपानिधि, आनंद को धन बरसाय हौ।।3।।

प्रसंग

घनानंद रचित 'घनानंद कवित्त' की इन पंक्तियों में श्रीकृष्ण के प्रेम में अनुरक्त गोपी की मनोदशा की अभिव्यक्ति हुई है। पूर्वराग की अभिलाषा दशा में गोपी मुरलीधर। श्रीकृष्ण के दर्शन, उनसे संभाषण एवं प्रीति–वर्षा की अपेक्षा करती है।

व्याख्या

श्रीकृष्ण के सौंदर्य का वर्णन करते हुए गोपी कहती है कि आपका मुख–चन्द्र तो सौंदर्य का धाम है जहां प्रसन्नता सदैव विराजमान रहती है। हे प्राणप्यारे! दर्शन की प्यासी इन आंखों को वह रूप कब दिखाओगे? दर्शन की उत्कट अभिलाषा में अब तनिक–सा वियोग भी सहन नहीं होता। चटकीले वेष में, अधरों पर मुरली धारण किए हुए मस्त मतवाली चाल से झूमते हुए आप शीघ्र आ जाओ। आंखें मटकाकर, कोमलता से मुस्कुराकर और प्रेम–पगी बातों से संभाषण की ललक तो जगा दी, बातें करने कब आओगो? हे कृपानिधि! मेरे प्राणप्यारे! आपके वियोग में जलते इस जीवन में आप आनंद की वर्षा कब करोगे? यहां पूर्वराग की अभिलाषा दशा में गोपी श्रीकृष्ण से सर्वतोभावेन तृप्ति की अभिलाषा करती है। उनके सुंदर एवं प्रसन्न मुख–चंद्र के दर्शन से वह अपने नेत्रों को तृप्त करना चाहती है। श्रीकृष्ण के वेणु–वादन से उसके कर्ण तृप्त होंगे। उनके साथ संभाषण से मानस–तृप्ति होगी तथा श्रीकृष्ण की कृपा प्राप्त होने से उसका जीवन धन्य हो जाएगा।

विशेष

1. कवि ने 'कृपा' शब्द को सुंदर प्रयोग किया है। जो अनुकूलता स्वयं ही किसी के प्रति दिखाई जाए, वह कृपा है। गोपी के मन में श्रीकृष्ण के लिए जैसा प्रेम है, वह उनसे वैसा ही प्रेम चाहती है और यह भी चाहती है कि यह प्रेम उनके मन में स्वतः ही प्रकट हो।
2. ढुराय, मुसक्याय, लड़काय, बतराय में अनुप्रास अलंकार है।

   अनुप्रास का लक्षण–समता जो आखरन की अनुप्रास सो जानि।
3. यह सवैया विप्रलंभ शृंगार रस के पूर्वराग नामक भेद का सुंदर उदाहरण है।

   पूर्वराग का लक्षण

   जो प्रथमहिं देखे सुने बढ़ै प्रेम की लाग।
   बिन मिलाप जो बिकलता से पूरब अनुराग।।
4. इस सवैया में गोपी की अभिलाषा की दशा का वर्णन है।

   अभिलाषा का लक्षण

   ताहि कहत अभिलाष हैं जो मिलाप की चाह।
   प्रेम कथन तैं जानिये बरनत सब कबिनाह।।

कवित्त

वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै
लड़कीली बानि आनि उर में अरति है।
वहै गति लैन औ बजावनि ललित बैन,
वहै हंसि देन, हियरातें न टरति है।
वहै चतुराई सों चिताई चाहिब की छबि,
वहै छैलताई न छिन बिसरति है।

आनंदनिधान प्रानप्रीतम सुजानजू की,
सुधि सब भांतिन सों बेसुधि करति है।।4।।

प्रसंग

घनानंद कृत 'घनानंद कवित्त' काव्य के इस कवित्त में गोपी की विरहावस्था का वर्णन है। संयोगवस्था में प्रेमिका ने अपने प्रिय की जिन–जिन मुद्राओं को देखा है, विरह में वही–वही उसके स्मरण का विषय है।

व्याख्या

स्मृति दशा में गोपी को श्रीकृष्ण की वह समस्त भाव–भंगिमाएं याद आती हैं जो मिलन की अवस्था में भी उसके चित्त को हर लेती थीं और आज भी हृदय में गहरे पैठकर उसे बेसुध कर देती हैं। श्रीकृष्ण की वह मोहक मुस्कान, वह कोमल बातें, हृदय में ललक उत्पन्न कर देने वाली उनकी बांकी अदा मन में जम–सी गई हैं। उनकी मतवाली चाल, उनका बांसुरी बजाना और फिर हंस देना, यह सब तो जैसे हृदय से निकाले नहीं लिकलता। उनकी वह चातुर्य भरी चितवन से देखने की अदा और वह उनका बांकपन क्षणभर को भी ध्यान से हटता नहीं। आनंद निधान, प्राणप्यारे श्रीकृष्ण की स्मृति सर्वतोभावेन स्वयं को विस्मृत कर देती है। 'सब भांति सों बेसुधि' का तात्पर्य है–मन, बुद्धि, चित्त एवं अहंकार–चतुर्विध अंतः करण को विस्मृत कर देना। इस कवित्त में 'उर' शब्द चित्त के लिए, 'हियरा' मन के लिए, 'न छिनक बिसरति है' से तात्पर्य बुद्धि है। अब चित्त तो श्रीकृष्ण की प्रेमभरी चेष्टाओं में उलझा है, मन में भी उनकी ही मतवाली चाल, वंशी की धुन और मोहक मुस्कान बसी है, बुद्धि श्रीकृष्ण की बांकी चितवन के स्मरण में मग्न है तो फिर अहंकार का तो ज्ञान ही नहीं हो पाता। इस प्रकार, श्रीकृष्ण की स्मृति से तन्मयता की स्थिति हो गई है, अपनी सुध तो कभी आती नहीं है।

विशेष

1. 'सुनाजू' शब्द श्रीकृष्ण के लिए प्रयुक्त हुआ है। कवि की प्रेयसी का नाम भी सुजान था। अपनी प्रेयसी से वियुक्त होने के बाद कवि ने अपने प्रायः सभी पदों में किसी–न–किसी ब्याज से सुजान, जान, जानराय आदि नामों से उसे याद किया है।
2. 'अरति', 'टरति', 'बिसरति', 'करति' में अत्यानुप्रास की छटा है।
3. 'सुधि' 'बेसुधि' में विरोध अलंकार है।

   विरोध का लक्षण

   जहं विरोध सौं लगत है, होत न सांच विरोध।
   कहत विरोधाभास तहं, बुधजन बुद्धि बिबोध।।

कवित्त

जासों प्रीति ताहि निठुराई सों निपट नेह,
कैसे करि जिय की जरनि सो जताइये।

महा निरदई दई कैसे कैं निवाऊं जीव,
बेदन की बढ़वारि कहां लौ दुराइयै।
दुख को बखान करिबै कौं रसना कै होति,
ऐपै कहूं वाको मुख देखन न पाइयै।
रैन दिन चैन को न लेस कहूं पैये भाग,
आपने ही ऐसे दोष काहि धौ लगाइयै।।5।।

टिप्पणी

प्रसंग

'घनानंद कवित्त' के इस कवित्त में विषम प्रेम का वर्णन है। एक ओर तो प्रेमिका का प्रेम एकनिष्ठ है और दूसरी और प्रिय की उदासीनता भी चरम पर है। ऐसे में प्रेमिका का जीना भी कठिन हो गया है।

व्याख्या

नायिका ने जिस प्रिय को प्रेम किया। वह उससे प्रेम करना तो दूर, निष्ठुरता से प्रेम कर बैठा। निष्ठुरता नायिका की सपत्नी हो गई और प्रिय का उसपर अत्यंत स्नेह है जो नायिका के हृदय को दग्ध किए जा रहा है। यह जलन इतनी अधिक है कि उसे शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। वह निष्ठुर प्रिय निर्दय ही नहीं, महानिर्दय है। उसे नायिका की तनिक भी परवाह नहीं है। नायिका के लिए अपने जीवन की रक्षा करना भी कठिन हो गया। वेदना बढ़ती ही जा रही और इस बढ़ती हुई वेदना को कहां तक छिपाया जा सकता है। दुख इतना अधिक है कि उसे कहने में एक जिह्वा समर्थ नहीं है, कई जिह्वायें हों तो कुछ कहते बने। यहां 'कै' का अर्थ 'कई' लगाया गया है। दूसरा अर्थ यह भी हो सकता है कि रसाना तो रसवाली है, वह भला वेदनामयी नीरस दशा में क्या कहे और सर्वोपरि बात यह है कि वेदना के आधिक्य से मन के अत्यधिक प्रभावित हो जाने से इंद्रियां शिथिलप्राय हो गई हैं, ऐसे में जिह्वा मन की व्यथा–कथा कैसे कहे। इतना सब होने पर भी प्रिय के मुख के दर्शन नहीं होते। न दिन में चैन है और न रात में। यदि अपने ही भाग्य को दोष है, किसी और को क्या दोष दिया जाए।

विशेष

1. 'निठुराई' शब्द की सपत्नी रूप में सुंदर कल्पना की गई है।
2. प्रेम–साधना की परंपरा रही है कि सच्चा प्रेमी स्वयं को ही दोष देता है।
3. 'कैसे करि' से तात्पर्य है कि अलोक सामान्य वृत्ति है। तुलसीदास जी का वचन 'जाकर जापर सत्य सनेहू। मिलिहि सो तेहि नहि कछु संदेहु।' यहां घटित नहीं होता।

सवैया

भोर ते सांझ लौं कानन ओर निहारति बावरी नेकुन हारति।
सांझ ते भोर लौं तारनि ताकिबो तारनि सों इकतार न टारति।

जौं कहूं भावतो दीठि परै घनआनंद आंसुनि औसर गारति।
मोहन–सोहन जोहन की लगियै रहै आंखिन के उर आरति।।6।।

टिप्पणी

प्रसंग

यह नायिका की सखी की उक्ति है। प्रिय के विरह में अनुरागवती नायिका को न दिन का पता चलता है और न रात का। वह सबेरे से सांझ और सांझ से सबेरे तक प्रिय की प्रतीक्षा की करती रह जाती है।

व्याख्या

श्रीकृष्ण के प्रेम दीवानी नायिका सुबह से शाम तक वन की ओर निहारती है क्योंकि श्रीकृष्ण उधर ही गए हैं। ऐसा करते हुए वह थकती भी नहीं क्योंकि नेत्रों को कानन (कानों को) देखते रहने का अभ्यास है और फिर शाम से सुबह तक नेत्रों के तारों से आकाश के तारों को एकटक निहारती रहती है। कब रात बीते और सुबेरा हो, इस प्रतीक्षा में वह आंखों में ही रात गुजार देती है। इतनी प्रतीक्षा के बाद यदि मनभावन श्रीकृष्ण दृष्टि के सम्मुख प्रकट भी होते हैं तो आनन्दातिरेक में आंखों में आंसू आ जाते हैं। आंसुओं की बरसात में प्रिय का मुख–मंडल ओझल हो जाता है और प्रिय–दर्शन का उपस्थित अवसर भी जाता रहता है। इसलिए मोहन को अपने सम्मुख देखने की आंखों की लालसा उसके हृदय में ही रह जाती है।

विशेष

1. 'निहारना', 'ताकना' आदि शब्दों का स्वास्थ्य ध्यातव्य है। निहारने में अनुसंधान वृत्ति कार्य करती है। वन की ओर निहारते हुए नायिका श्रीकृष्ण का संधान करना चाहती है। ताकने में संधान की वृत्ति नहीं होती अपितु लीन हो जाने की वृत्ति होती है। तारों की ओर एकटक ताकने में रात्रि की समाप्ति की प्रतीक्षा की वृत्ति है।
2. 'धनआनंद' के तीन अर्थ हो सकते हैं और तीनों ही अर्थ संगत हैं। प्रथम अर्थ है आनंद के बादल जो मनभावन श्रीकृष्ण के विशेषण रूप में है। दूसरा अर्थ है घने आनंद वाले यह नायिका के आंसुओं का विशेषण है और तृतीय अर्थ कवि घनानंद।
3. अनुप्रास की छटा चमत्कारजनक है।
4. 'तारनि' 'तारनि' में यमक है।

   यमक अलंकार का लक्षण

   अर्थ होय भिन्नै जहां, शब्द का अनुहार।

   जमक कहत तासों सबै, भेद अनंत बिचार।।
5. अरसात सवैया छंद है, जिसके प्रत्येक चरण में आठ भगण (511) होते हैं।

टिप्पणी

कवित्त

भए अति निठुर, मिटाय पहचानि डारी,
याही दुख हमैं जक लागी हाय हाय है।
तुम तौ निपट निरदई, गई भूलि सुधि,
हमैं सूल सेलनि सो क्योंहूंन भुलाय है।
मीठे–मीठे बोल बोलि ठगी पहिलें तौ तब,
अब जिय जारत कहौं धौ कौन न्याय है।
सुनी है के नाहीं यह प्रगट कहावति जू,
काहू कलपाय है सु कैसे कल पाय है।।7।।

प्रसंग

प्रेमिका ने प्रिय को संदेश भेजा है। संदेश में प्रिय की उदासीनता का उलाहना भी है और लोक–कथन का स्मरण भी कराया गया है।

व्याख्या

विरहिणी नायिका कहती है कि हे प्रियतम। तुम तो बहुत कठोर हो गए और तुमने तो अपने साथ मेरी पहचान भी मिटा डाली है। इसी दुख के कारण मुझे हाय–हाय की रटना लगी हुई है। फिर तुम तो अत्यंत निर्मम हो और हमारी याद भूल गए किंतु हमें तुम्हारी याद बरछे की चुभन के समान वेदना दे रही है, किसी प्रकार नहीं भूल पाती।

संयोग काल में तो तुमने मुझे अपनी मधुर वाणी से भुलावे में डालकर अपनी ओर आकृष्ट कर लिया और अब दूर रहकर हृदय जला रहे हो, यह कौन सा न्याय है अर्थात यह तो अन्यायपूर्ण आचरण है। हे प्रियतम तुमने यह प्रसिद्ध कहावत तो सुनी है अथवा नहीं कि जो दूसरों को तड़पाता है वह स्वयं भी चैन नहीं पाता अर्थात तुम भी सुख नहीं पा सकते। अतः तुम मुझसे आन मिलो।

विशेष

1. 'निठुर' और 'निरदई' में अनुभूतिशून्यता का उत्तरोत्तर उत्कर्ष है। यही स्वास्थ्य 'अति' और 'निपट' के प्रयोग में है। किसी सीमा का लंघन करना अति है और इस श्रेणी में अनेक व्यक्ति हो सकते हैं किंतु निपट अपनी विशिष्टता में अकेला ही होता है।
2. 'कलपाय है' 'कल पाय है' में अर्थ–भेद के साथ वर्णों की उसी क्रम में आवृत्ति में यमक का चमत्कार है।
3. लोक–कथन का साभिप्राय प्रयोग में छेकोक्ति है।

   छेकोक्ति अलंकार का लक्षण

   लोक उक्ति कछु अर्थ सों सो छेकोक्ति प्रमानि।

हीन भएं जल मीन अधीन कहा कछु मो अकुलानि समाने।
नीर सनेही को लाय कलंक निरास ह्वै कायर त्यागत प्रमानै।।
प्रीत की रीति सु क्यों समुझै जड़ मीत कें पानि परें को प्रमानै।
या मन की जु दसा घनआनंद जीव की जीवनि जान ही जानै।।8।।

प्रसंग

'घनआनंद कवित्त' से उद्धृत इस सवैया में कवि घनानंद ने जल और मीन के प्रेम–संबंध तथा मानवीय प्रेम–संबंध के सूक्ष्म भेद का अत्यंत मार्मिक उद्घाटन किया है। रीतिबद्ध कवियों ने प्रेमियों के वियोग के प्रसंग में जल से मीन के वियोग की खूब चर्चा की है और मीन के प्रेम को उत्कृष्ट बताया है। इसके विपरीत, इस सवैया में कवि घनानंद ने मानवीय प्रेम की उत्कृष्टता का प्रतिपादन किया है।

व्याख्या

कविगण वियोगियों की दशा का चित्रण करने के लिए मीन (मछली) का दृष्टांत देते हैं किंतु अपनी वियोगावस्था में कवि यह विचार करता है कि जल से वियुक्त होकर मीन उस व्याकुलता का किंचित अनुभव भी नहीं कर पाता होगा जैसी आकुलता की अनुभूति स्वयं उसे हो रही है। मीन तो अपने प्रिय को, जल को कलंकित कर कायरों की तरह निराशा में प्राणों का त्याग कर देता है। उसे अपने प्रिय का संयोग जब तक प्राप्त रहता है, तभी तक वह जीवन धारण करता है। प्रिय से वियुक्त होते ही वह वियोग–वेदना को सह सकने में असमर्थ हो जाता है। वह साहस दिखाये, प्रिय से पुनः मिलन की आशा में वेदना की व्याकुलता को सहते हुए जिये तो कहीं कवि विरह–व्याकुलता की समता कर पाये। किंतु वह तो प्राण–त्याग कर अपने प्रेमी को भी कलंक का भागी बना देता है। प्रिय तो गौरव पाने का अधिकारी है, उसे कलंकित करना अपने ही प्रेम की अवमानना है परंतु इस बात को, प्रीत की इस रीति को वह जड़ मीन क्या समझे। प्राणों का त्याग करके वह यह सिद्ध कर देता है कि अपने प्रिय के हाथों वह विवश है। उसमं वह सामर्थ्य ही नहीं कि वह विरह–व्यथा को सहते हुए प्रिय को मनाने की चेष्टा करे। उसका प्रिय भी तो जड़ ही है। वह अपने प्रेमी की मनोदशा को क्या समझे। किंतु कवि की प्रेयसी सुजान (जान) उसकी मनःस्थिति को समझ सकती है इसलिए इस आशा में कि उसकी विरह–व्याकुल अवस्था से प्रभावित होकर एक दिन वह अनुकूल हो जाएगी, कवि जीवन धारण किए हुए है। मानवीय प्रेम का उत्कर्ष इसी आशावाद में है।

विशेष

1. मानवीय प्रेम के उत्कर्ष की प्रतिष्ठा में कवि पूर्ण रूप से सफल हुआ है।
2. 'जड़' शब्द उभय पक्ष में अन्वित है– मीन के पक्ष में भी और जल के पक्ष में भी।

मीत सुजान अनीत करा जिन, हाहा न हूजियै मोहि अमोही।
डीठि को और कहूं नहि और फिरी दृग रावरे रूप की दोही।
एक बिसास की टेक गहे लगि आस रहे बसि प्रान–बटोही।
हौ घनआनंद जीवनमूल दई कित प्यासनि मारत मोही।।9।।

टिप्पणी

प्रसंग

'घनआनंद कवित्त' से उद्धृत इस सवैया में प्रिय के प्रति प्रेमी के उपालंभ की सुंदर अभिव्यंजना हुई है। प्रिय ने पहले मोहित किया, फिर स्वयं अमोही हो गया। अब प्रेमी–हृदय प्रिय दर्शन और मिलन की प्यास से व्याकुल होकर अपने उस विज्ञ मित्र के इस अन्याय की उलाहना दे रहा है।

व्याख्या

मित्र अपने मित्र से कभी अन्याय नहीं करता। यदि किसी का अज्ञ मित्र हो तो ऐसी संभावना हो सकती है कि वह अनचाहे, अनजाने अपने मित्र से किसी प्रकार की अनीति कर बैठे। कवि कहता है कि प्रथम तो तुम मेरे मित्र हो और द्वितीय कि सुजान (विज्ञ–सब जानने वाला; कवि की प्रेयसी) हो। यह स्थिति तो मेरे लिए युगललाभ जैसी है किंतु तुम तो मेरे साथ अन्याय करने लग गये हो। प्रिय ने पहले तो चेष्टापूर्वक प्रेमी को मोहित किया और जब प्रेमी मुग्ध हो गया तो स्वयं निर्मोही हो गया। 'हूजियै' शब्द से प्रेमी के सहज ही निर्मोही होने का निषेध होता है। निर्मोही होना प्रिय के स्वभाव में नहीं है अपितु उसने जान–बूझकर निर्मोही होने की ठान ली है। नीति यह कहती है कि यदि किसी ने प्रयासपूर्वक मोहित किया है तो वह मुग्ध होनेवाले के प्रति अपने मोह को बनाकर रखे। कोई किसी के रूप–सौंदर्य से आकृष्ट होकर स्वयं मुग्ध होता है तो बात दूसरी है। प्रिय के दर्शन के प्यासे नेत्रों को स्थिर होने के लिए कोई अन्य स्थान नहीं मिलता। एक तो प्रेमी का प्रेम एकनिष्ठ है कि उसकी दृष्टि किसी अन्य पर टिकती नहीं, दूसरे प्रिय के अद्वितीय रुप–सौंदर्य का महत्व भी है जो प्रेमी नेत्रों को किसी अन्य की ओर देखने ही नहीं देता। ये आंखें तो प्रेमी के रूप की ही दुहाई देती फिर रही है, किसी अन्य को भला देख भी कैसे पाएंगी। प्रिय ने फिर भी विश्वासघात ही किया है– किसी अन्य से प्रेम–संबंध बना लिया अथवा आने की अवधि देकर मिलने आएं ही नहीं। तो भी प्रिय के विश्वासघात में ही विश्वास की संभावना के सहारे प्राण अटके हुए हैं, वरना शरीर से इनके प्रस्थान की तैयारी हो चुकी है। जीवन–तरू का मूल तो वह प्रिय ही है जो समग्र वृक्ष में जीवन–जल का संचार करता है और आनंद का घन (बादल) भी वही है जो जीवनदायक की वृष्टि करके जीवन में हरियाली ला सकता है, रस का संचार कर सकता है किंतु ऐसे मित्र के होते हुए भी प्रेमी के प्राण संकट में पड़े हुए हैं। पता नहीं ईश्वर की क्या इच्छा है।

विशेष

1. विरोध की छटा अनेक बार दिखती है– सुजान मीत–अनीत, मोहि–अमोही, बसि–बटोही।
2. 'हाहा' कहने से दो बातें की व्यंजना होती है– प्रथम, मित्र के अन्याय का दुःख, द्वितीय, अपना दैन्य।

पहिले घन–आनंद सींचि सुजान कहीं बतियां अति प्यार पगी।
अब लाय बियोग की लाय बलाय बढ़ाय, बिसास दगानि दगी।

अंखियां दुखियानि कुबानि परी न कहुं; कौन घरी सुलगी।
मति दौरि थकी, न लहै ठिकठौर, अमोही के मोह मिठास ठगी।।10।।

टिप्पणी

प्रसंग

'घनानंद कवित्त' से उद्धृत इन पंक्तियों में निर्दय प्रिय के विवश प्रेमी के पश्चाताप की अभिव्यंजना हुई है। प्रिय के विषम व्यवहार से क्षुब्ध प्रेमी की विवेक–बुद्धि तनिक भी सोच–विचार कर सकने में असमर्थ हो चुकी है। अब पश्चाताप के अतिरिक्त विवश प्रेमी कर भी क्या सकता है।

व्याख्या

प्रिय ने पहले आनंद की वृष्टि से चतुराई पूर्वक सिक्त करके अत्यंत प्रेम–पगी बातें की। संयोग दशा में प्रिय आनंदघन स्वरूप था। उसके प्रेमालाप आनंद रूपी बादल के वृष्टि–जल से बड़ी सावधानी से सिक्त किये होते थे। उसकी वे प्रेम भरी बातें प्यार की गाढ़ी चाशनी में सराबोर होती थीं। ऐसा प्रतीत होता था कि प्रिय प्रेम सदैव सर्वत्र समान भाव से प्राप्त होता रहेगा और कीाी देर हो हीं नहीं सकता, किंतु यह भ्रम मात्र था। अब तो उसने वियोग की ऐसी आग लगा दी है कि व्यथा बढ़ती ही जा रही है। उस निर्दय को इतने पर भी संतोष नहीं हुआ। कपटपूर्वक विश्वासघात करके वह अपने प्रेमी को दग्ध किये जा रहा है। एक तो प्रिय का विषम व्यवहार दूसरे अपनी ही दुखियारी आंखों का बुरा अभ्यास जो कुछ और देखना ही नहीं चाहतीं। प्रिय–दर्शन के अतिरिक्त उन्हें किसी अन्य वस्तु, अन्य दृश्य के दर्शन की लालसा ही नहीं। आंखें कहीं अन्यत्र रमें तो व्यथित हृदय क्षणभर को चैन तो पाये किंतु न जाने कैसा बुरा समय चल रहा है कि किसी भी तरह चैन नहीं। बुद्धि भी स्थिर नहीं हो पा रही है कि कुछ सोच–विचार करके इस वेदना को कम किया जाय। वह तो उस निर्मोही प्रिय की उन प्रेम–पगी मीठी बातों से उसी प्रकार ठगी हुई सी परवेश हो गई है जैसे– ठग द्वारा गुड़ या मिठाई खिला दिये जाने पर व्यक्ति ठग के वश में हो जाता है। कर्मेन्द्रियां बुद्धि से नियंत्रित होती हैं किंतु जब अपनी बुद्धि ही किसी अन्य के नियंत्रण में हो तो सुख–चैन की फिर कहीं कोई आशा रह ही नहीं जाती।

विशेष

1. 'लाय' 'लाय' में यमक का सुंदर चमत्कार है।
2. अनेकत्र विरोध अलंकार भी है। यथा– सींचि–दगी, अमोही–मोह।
3. यह उपालंभ प्रेमिका का अपने प्रिय से हो सकता है अथवा स्वयं कवि घनानंद का अपनी प्रेयसी सुजान से भी हो सकता है।

क्यों हंसि हेरि हन्यौ हियरा अरू क्यौं हित कै चित चाह बढ़ाई।
काहे को बोलि सुधासने बैननि चैननि मैननि सैन चढ़ाई।
सो सुधि मो हिय मैं घनआनंद सालति क्यौं हूं कढ़ै न कढ़ाई।
मीत सुजान अनीत की पाटी इतै पै न जानियै कौनै पढ़ाई।।11।।

टिप्पणी

प्रसंग

प्रस्तुत सवैया 'घनआनंद–कवित्त' से उद्धृत है। प्रेमिका अपने प्रिय को उपालंभ दे रही है। पहले तो प्रिय ने मुस्कान–वाण से हृदय बेधा फिर वचन–बाण से चैन छीना और अब दर्शन नहीं देता। विरह की व्यथा हृदय की फांस बनी हुई है। प्रिय को उलाहना है कि मन में प्रीत जगाकर स्वयं प्रीत की रीति भूले बैठे हो।

व्याख्या

हे प्रिय सुजान! यदि तुम्हें इस प्रकार अन्याय ही करना था तो क्यों मेरी ओर हंसते हुए देखकर मेरे हृदय को चुराया और क्यों मेरे में अपने सामीप्य प्राप्त करने की लालसा बढ़ाई। क्यों तुमने अमृत से सने हुए वचनों से मुझे उल्लासपूर्वक काम की सीढ़ी पर चढ़ाया अर्थात मेरे मन में काम–भावनाएं जाग्रत कीं और क्यों अब विमोही (अकामी) बने हुए हो। घनानंद कहते हैं कि उस समय की स्मृति मेरे कलेजे में कसकती रहती है और भुलाने पर भी न जाने क्यों भुलाई नहीं जाती। मेरी इस मनःस्थिति को देखकर भी, हे प्रियतम सुजान! तुम मुझे उपेक्षित रख रहे हो व जाने किसने तुम्हें इस अन्याय की पट्टी को पढ़ाया है।

विशेष

सवैया के प्रथम चरण में लूट लिए गए व्यक्ति के दैन्य का चित्रण है। द्वितीय चरण में उसकी मनःस्थिति का उद्घाटन हुआ है और द्वितीय चरण में आहत प्रेमी की वेदना की अभिव्यंजना है और अंत में यह मार्मिक व्यथा कि इन सारे कष्टों को देनेवाला अपना ही प्रिय है जिससे स्वपन में भी ऐसी अपेक्षा नहीं थी।

कवित्त

प्रीतम सुजान मेरे हित के निधान कहौ
कैसे रहैं प्रान जौ अनखि अरसायहौ
तुम तो उदार दीन हीन आनि पर्‌यौ द्वार
सुनियै पुकार याहि कौ लौं तरसायहौ।
चातिक है रावरो अनोखो मोह आवरो
सुजानरूप–बावरो, बदन दरसाय हौ।
विरह नसाय, दया हिंय मैं बसाय, आप
हाय! कब आनंद को धन बरसाय हौ।।12।।

प्रसंग

प्रस्तुत कवित्त 'घनआनंद–कवित्त' से उद्धृत है। वियोगिनी प्रेमिका का प्रिय कौ नाम संदेश है। प्रेमिका का मोह–चाहत प्रिय–दर्शन को उतावला है। प्रिय का मुख नहीं देख पाने के कारण प्राण कंठगत हो रहे हैं; अतः प्रिय से दर्शन देने का निवेदन कर रही है।

व्याख्या

प्रिय सुजान है, विज्ञ है, सब समझता है; अजान नहीं है कि उसे समझाना पड़े। जो प्रियतम है और सुजान भी उससे तो कुछ कहने की आवश्यकता ही नहीं होती। वह तो स्वयं ही

टिप्पणी

अपने प्रेमी की सारी दशाएं समझता है फिर भी निवेदन करना पड़ रहा है कि आप में ही मेरा हित सन्निहित है। आप इस तरह रूठकर आलस्य करेंगे तो मेरी जीवन रक्षा कैसे होगी। आप तो अत्यंत उदार हैं और इस बात को जानते हैं कि मैं दीन हूं, मेरे पास कुछ नहीं है और जो कुछ था वह सब आपको सौंपकर अब उससे भी हीन हो गई हूं। प्रिय के द्वार पर पड़ी हुई कब से गुहार लगाए जा रही है, न जाने वह कब उसकी पुकार को सुनेगा अथवा प्रेयसी को इसी तरह तरसाता रहेगा। सुजान के मोह में व्याकुल इस चित्त–चातक की वृत्ति बड़ी विलक्षण है। इसे मात्र सुजान के रूप के दर्शन की ही प्यास है, यह किसी अन्य की ओर दृष्टि भी नहीं डालेगा और इसे मात्र दर्शन ही चाहिए, कुछ और चाहिए भी नहीं। इसलिए, हे प्रियतम! आप दया करके अपने दर्शन दो और विरह–व्यथा को दूर करो। इस प्यासे चातक के लिए न जाने कब आनंद के बादल बरसेंगे और इसकी तृप्ति होगी।

विशेष

1. इस कवित्त में पारमार्थिक संकेत भी मिलता है। यह निवेदन एक भक्त का अपने भगवान से हो सकता है। कृष्णभक्ति–धारा के कवियों ने श्रीकृष्ण के लिए 'सुजान' शब्द का बहुशः प्रयोग किया है।
2. अन्त्यानुप्रास की मनोहर छटा इस कवित्त में भी है।

सवैया

तब तो छबि जीवत जीवन हे, अब सोचन लोचन जात जरे।
हित पोष के तोष सु प्रान पले, बिललात महादुख दोष भरे।
घनआनंद मीत सुजान बिना सब ही सुख साज–समाज टरे।
तब हार पहार से लागत है अब आनि कै बीच पहार परे।।13।।

प्रसंग

प्रस्तुत सवैया 'घनआनंद–कवित' से गृहीत है। इस छंद में संयोगावस्था एवं वियोगावस्था की मार्मिक तुलना है। वियोगी स्वयं ही दोनों अवस्थाओं के अंतर को अपने अनुभव के आधार पर विवेचित कर रहा है।

व्याख्या

जब प्रेयसी पास में थी, मिलन के दिन थे, संयोग की अवस्था थी तब उसके रूप–सुधा के पान से ही जीवन अनुप्राणित था अब दिन–रात चिंता की ज्वाला से आंखें जलती रहती हैं। प्रेम के पाषण से संतुष्ट होकर प्राण न केवल जीवन पार रहे थे अपितु वे पल रहे थे। भरपूर प्रेम के पोषण से प्राणों का विकास हो रहा था, वे पुष्ट हो रहे थे। अब वह पोषण भी नहीं रहा और वियोग का महान दुःख भी भोगना पड़ रहा है जिससे प्राण व्याकुल हो रहे हैं। केवल दोष ही नहीं है, बाहरी कष्ट ही नहीं है, प्रिया–विरह का दुःख ही नहीं है, कोई पूछनेवाला भी नहीं रहा। आनंद–घन स्वरूपा प्रेयसी सुजान क्या छूटी; सुख, साज–शृंगार और मित्र–समाज सब छूट गया। आनंदधन के दूर होते ही सुख दूर हो गया। प्रेयसी के वियोग में साज–शृंगार छूटा और सुजान से अलग होते ही सारा समाज दूट गया। इस

टिप्पणी

तरह से स्वनिष्ट, संबंधनिष्ट एवं समाजनिष्ठ सभी प्रकार के सुख दूर हो गए और इस महान दुःख से व्याकुल हो रहे हैं, पर किससे कहें। न कोई पूछनेवाला है, न कोई सुननेवाला। संयोग की अवस्था में जब प्रेयसी निकट थी तो मोतियों के हार का व्यवधान भी पहाड़ की तरह प्रतीत होता था। अब वही प्रिया इतनी दूर है कि लगता है जैसे दोनों के मध्य अनेक पहाड़ आ गए हों। दूरी की अतिशयता की अनुभूति की अभिव्यंजना है।

विशेष

1. सुजान से कवि के मिलन का स्पष्ट संकेत है।
2. 'पहार पर' में पहाड़ शब्द का प्रयोग वस्तुमत् भी है और लक्षणिक भी। कवि परंपरा में किसी प्रकार के पाप अथवा अपराध के लिए 'पहाड़' शब्द का लाक्षणिक प्रयोग होता रहा है। कवि केशवदास ने भी ऐसा प्रयोग किया है—

   ज्यों पग परत प्रयाग—मग पाप—पहार बिलात।
3. 'हार पहार से' में उत्प्रेक्षा अलंकार है।

उत्प्रेक्षा का लक्षण

केशव और वस्तु में और कीजिए तर्क।
उत्प्रेक्षा तासौं कहैं जिनकी बुद्धि समर्थ।।

4. इस सवैया में विषम अलंकार का चमत्कार भी दर्शनीय है।

विषम अलंकार का लक्षण—

विषम अलंकृत तीन विधि अनमिलते को संग।
कारण को संग और कछु कारज औरे रंग।।
और भलो उद्दिम किए होत बुरो फल आई।।
पहिले अपनाय सुजान सनेह सों क्यौं फिरि तेह कै तोरियै जू।
निरधार अधार दै धार मझार दई रहि बांह बोरियै जू।
घनआनन्द आपने चातिक कों गुन बांधि लै मोह न छोरियै जू।
रस प्याय कै जाय, बढ़ाय कै आस, बिसास मैं यों बिस छोरियै जू।।14।।

प्रसंग

प्रस्तुत सवैया 'घनआनंद—कवित्त' के प्रथम शतक में संकलित है। संयोग और वियोग की अवस्था में प्रिय के व्यवहार में होनेवाली विषमताओं की भर्त्सना की गयी है। प्रिय के अनपेक्षित आचरण से प्रेमी—हृदय क्षुब्ध है। इसी क्षोभ की मार्मिक अभिव्यक्ति यहां हुई है।

व्याख्या

जिस संबंध में स्नेह का पुट हो, उसे आसानी से तोड़ना कठिन है। कोई अज्ञ या अलपज्ञ ऐसा प्रयत्न करे तो क्षम्य है किंतु प्रिय तो सुजान है। उसने स्वयं ही स्नेहपूर्वक पहले अपनाया और अब रोषपूर्वक उस स्नेह—सूत्र को तोड़ डालना चाहता है। यह आचरण तो लोक—प्रथा के सर्वथा विपरीत है। यह प्रिय की बुद्धिहीनता का प्रमाण है। प्रिय सुजान भी है और बुद्धिहीन भी इससे बढ़कर विषमता क्या हो सकती है। एक व्यक्ति जिसे न तैरना

टिप्पणी

आता है और न ही धारा को पार करने का उसके पास नाव आदि किसी प्रकार का सहारा है, वह जो तट पर ही डूब जा सकता है; यदि धारा के मध्य वह डूब रहा है तो सहारा देकर बचा लेना और किनार लगा देना, यह तो मानवीय धर्म है। प्रिय ने इस धर्म का भी निर्वाह किया है किंतु ऐसा करने के बाद उसी व्यक्ति को पुनः बांह पकड़कर धारा के मध्य बरबस डुबा देना, यह मानवता नहीं है। ऐसा कोई हृदयहीन ही कर सकता है! प्रिय ने ऐसा ही आचरण किया है। उसका यह आचरण उसकी हृदयहीनता को ही प्रमाणित करता है। जो चातक केवल अपने प्रिय का गुणगान करता हो, उसके गुणों पर रीझकर उसे गुण (डोरी) से बांधकर फिर भुला देना, उससे मोह तोड़ लेना, ऐसा कोई नहीं करता। प्रिय का व्यवहार अब तो ऐसा ही हो रहा है। मरणासन्न व्यक्ति को मीठा रस पिलाकर उसे पुनर्जीवन प्रदान करना और जब उस व्यक्ति का विश्वास रस पिलानेवाले में दृढ़ हो जाए तो उसके विश्वास में विष घोलकर उसे हतप्रभ कर देना, इसे क्या कहा जाए? यह तो निपट जड़ का ही लक्षण है तो क्या प्रिय अब जड़ हो गया, चेतनता उसमें रही ही नहीं? ऐसे विषम व्यवहार की अपेक्षा सुजान प्रिय से तो कभी नहीं थी।

विशेष

1. विरोधाभास की छटा अनेकत्र है– निरधार, धार–आधार, बांधि–छोरियै, ज्याय–विस धोरियै।

रावरे रूप की रीति अनूप, नयो–नयो लागत ज्यौं ज्यौं निहारियै।
त्यौं इन आंखिन बानि अनोखी, अघानि कहूं नहिं आनि तिहारियै।
एक ही जीवन हुतौ सुतौ वार्‌यौ, सुजान संकोच और सोच सहारियै।
रोकी रहै न दहै घनआनंद बावरी रीझि के हाथन हारियै।।15।।

प्रसंग

प्रस्तुत सवैया 'घनआनंद–कवित्त' से उद्धृत है। यहां कवि घनानंद ने प्रिय के रूप–सौंदर्य की विशेषताओं का वर्णन किया है। साथ ही, प्रेमी की प्रवृत्तियों की श्रेष्ठता का भी विशिष्टतापूर्वक प्रतिपादन किया गया है।

व्याख्या

प्रिय के सौंदर्य की अनुपम रीति है। उसकी रूप–राशि को जितनी बार निहारे, वह हर बार कुछ नवीन छटा दिखती है। चाहे जितने भी ध्यान से देखें, प्रत्येक अवलोकन में सौंदर्य का उत्कर्ष ही दृष्टिगत होता है। जैसा प्रिय का रूप विलक्षण, प्रेमी की प्रवृत्ति भी उतनी ही अनोखी। नेत्र न तो कहीं अन्यत्र देखते हैं और न ही प्रिय के सौंदर्य को निहारते हुए तृप्त होते हैं। वे तो केवल अपने प्रिय को देखते ही रहना चाहते हैं। एक ही तो जीवन था जिसे उस अनूप रूप पर न्यौछावर कर दिया। जब जीवन ही न्यौछावर कर दिया तो फिर शेष रहा ही क्या? अब न तो कोई ज्ञान है न किसी का ध्यान। लोक–लज्जा, अपनी चिंता, कुछ भी नहीं– अब सब कुछ प्रिय को ही समर्पित। अब तो वह सुजान प्रिय ही सब जाने, सब कुछ संभाले। प्रिय पर रीझा हुआ मन अपने वश में नहीं। यह दीवानगी रोकने से भी नहीं रुकती, दग्ध किए डाल रही है। दीवानगी है आनंद के बादल के प्रति, किंतु जी जला जा

रहा है। अपनी ही रीझ के हाथों प्रेमी हृदय परास्त है, किसी अन्य प्रकार के अस्त्र–शस्त्र की आवश्यकता ही नहीं। प्रिय के लिए यह रीझ जलाती भी है और घने आनंद की अनुभूति से अंतस्थल को आप्यायित भी करती है। प्रीत की रीति है ही विलक्षण, इसके लिए कुछ भी कहना कठिन है।

टिप्पणी

विशेष

1. सौंदर्य और प्रेम की विलक्षणता का विलक्षण प्रतिपादन हुआ है।
2. अनुप्रास की छटा मोहक है।

गतिविधि

घनानंद द्वारा लिखी गई चौपाइयों का अध्ययन कर, उनकी व तुलसीदास द्वारा लिखी चौपाइयों की तुलना कीजिए।

क्या आप जानते हैं?

नादिरशाह के सैनिकों ने जब घनानंद से दौलत की मांग की तब घनानंद ने उनके समक्ष वृंदावन की तीन मुठ्ठी धूल को पेश करते हुए उसे अपनी दौलत बतलाया। उनकी इस हरकत से चिढ़कर नादिरशाह के सैनिकों ने घनानंद के दोनों हाथ काट दिए।

5.9 सारांश

घनानंद रीतिकालीन काव्यधारा के एक ऐसे कवि हैं जिन्होंने काव्य को प्रेम की मूलवर्ती संवेदना से स्पंदित किया है चाहे वह मुक्तकों के रूप में लिखा गया हो, चाहे आख्यान के रूप में। इनके प्रेम वर्णन का वैशिष्ट्य इस बात में है कि वह स्वानुभूति प्रेरित है। इनकी प्रेम की अभिव्यक्ति इनकी निजी प्रेम भावना की अभिव्यक्ति है। इनके काव्य में निजी अनुभूतियों का सहज प्रकाशन है। इनके प्रेम में विषमता है और यह विषमता इसलिए है कि प्रेमी प्रिय को जितना चाहता है, उसके लिए जितना तड़पता है, प्रिय प्रेमी से उतना नहीं।

घनानंद रूप और सौंदर्य के अप्रतिम चित्रकार थे। उनके रूप सौंदर्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि प्रत्येक छवि या चित्र के पीछे कवि की स्वानुभूति और अंतर–दृष्टि छिपी हुई है। इसी आत्मतत्व के अभाव में रीति कवियों के रूप वर्णन प्रायः समान अतः निष्प्राण हो गए हैं। घनानंद मूलतः प्रेम की पीर के कवि हैं। घनानंद के काव्य में हृदय पक्ष की प्रधानता है। सौंदर्य के प्रति घनानंद का दृष्टिकोण व्यापक था। यही कारण है कि समूचे हिंदी काव्य में घनानंद का सौंदर्य चित्रण अनूठा है। रीतिकाल जिसमें घनानंद का कवि पल्लवित पुष्पित हुआ था, शिल्प प्रधान युग था। फलस्वरूप उसे 'कला काल', 'अलंकृत

टिप्पणी

काल' आदि नामों से भी अभिहित किया गया। घनानंद जैसे रीतिमुक्त कवियों के लिए तो यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कवि को उनकी जीवनगत आवश्यकता थी। अतः उन्होंने इसे खिलवाड़ रूप में नहीं लिया, एक जीवन सारांश के रूप में ग्रहण किया है।

घनानंद का मन राधा–कृष्ण में खूब रमा है। वह सदैव उनकी रूप छवि से छके रहते हैं। उनका मान उसी में सराबोर रहता। जहां भी कृष्ण–राधा की लीलाओं का वर्णन महाकवि घनानंद ने किया है वहां प्रकृति को पृष्ठभूमि के रूप में प्रस्तुत किया गया है। महाकवि घनानंद वास्तव में विरही कवि हैं। सुजान के अटूट प्रेम ने कवि के अंतर को अभिभूत कर दिया–यही प्रेम वियोग के रूप में हृदय से फूट पड़ा है।

घनानंद ने अपने अंतः करण की सच्चाई को काव्य से मंडित किया। स्रोत की भांति फूट पड़ने वाली तथा सरस एवं हृदयस्पर्शी भावनाओं को काव्य कलेवर से सज्जित किया। घनानंद लौकिक तथा पारलौकिक दोनों में ही पूर्ण प्रेमी थे। उनका व्यक्तिगत प्रेम स्वार्थ की सीमा से परे हटकर उच्चतम स्थान को प्राप्त हुआ।

5.10 मुख्य शब्दावली

- **आसक्ति** : मन प्रवृत्ति का एक स्थल पर बंध जाना
- **वैषम्य** : विषमता, समतल न होना, अनौचित्य, एकाकीपन
- **प्रणय** : प्रेम, प्रीति, प्रीतियुक्त प्रार्थना, मोक्ष
- **तारुण्य** : जवानी, यौवन
- **उत्प्रेक्षा** : उद्भावना, उदासीनता, अर्थालंकार का एक भेद जिसमें प्रस्तुत वस्तु में सादृश्य के कारण अन्य वस्तु की कल्पना की जाती है
- **पारमार्थिक** : परमार्थ संबंधी, अविकारी और सत्य, स्वाभाविक, परमार्थ की ओर दृष्टि रखने वाला।

5.11 'अपनी प्रगति जांचिए' के उत्तर

1. प्रेम
2. मन प्रवृत्ति का एक स्थल पर बंध जाना
3. आंखों से
4. विरह
5. घनानंद
6. रीतिमुक्त काव्यधारा को
7. प्रेम भावना को
8. सहजता और मनोवैज्ञानिकता की

टिप्पणी

9. तीन स्तर
10. भाव सौंदर्य
11. सुजान
12. राधा के वर्णन द्वारा
13. तीन (अभिधा, लक्षणा, व्यंजना)
14. दो प्रकार की
15. माधुर्य, ओज एवं प्रसाद
16. प्रकृति
17. नागिन
18. कालिदास की भांति
19. मुहम्मदशाह 'रंगीले' के
20. निम्बार्क संप्रदाय में

5.12 अभ्यास हेतु प्रश्न

लघु–उत्तरीय प्रश्न

1. भावानुभूति से संपृक्त प्रेम का अभिप्राय स्पष्ट कीजिए।
2. घनानंद के काव्य में 'तरलरूप–सौंदर्य' का वर्णन कीजिए।
3. अर्थ शिलष्टता और अर्थ दुरुहता के मध्य अंतर स्पष्ट कीजिए।
4. 'घनानंद की सुजान' के चरित्र का वर्णन कीजिए।

दीर्घ–उत्तरीय प्रश्न

1. 'अति सूधो सनेह को मारग है' की कसौटी पर घनानंद के काव्य का मूल्यांकन कीजिए।
2. स्वच्छंदतावादी काव्य के अंतर्गत घनानंद के काव्य का वर्णन कीजिए।
3. घनानंद की काव्य भाषा के स्वरूप का विस्तृतात्मक वर्णन कीजिए।
4. 'घनानंद के काव्य में प्रकृति साधन रही साध्य नहीं' सोदाहरण वर्णन कीजिए।
5. सप्रसंग व्याख्या कीजिए–
   (क) झलकै अति सुंदर आनन गौर,................परिहे मनौ रूप अबैधरच्वै।
   (ख) वहै मुसक्यानि, वहै मृदु बतरानि, वहै................सुधि सब भांतिन सों बेसुधि करति है।
   (ग) मीत सुजान अनीत करा जिन,..................दई कित प्यासनि मारत मोही।।

5.13 आप ये भी पढ़ सकते हैं

टिप्पणी

1. आचार्य रामचंद्र शुक्ल *हिंदी साहित्य का इतिहास*
2. डॉ. नगेंद्र *हिंदी साहित्य का इतिहास*
3. बाबू गुलाब राय *हिंदी साहित्य का सुबोध इतिहास*
4. डॉ. द्वारिका प्रसाद सक्सेना *हिंदी के प्राचीन प्रतिनिधि कवि*
5. परमानंद शर्मा *कविवर बिहारी*
6. डॉ. रामानंद शर्मा *भारतीय काव्य–शास्त्र*
7. डॉ. विजय कुमार वेदालंकार *भारतीय एवं पाश्चात्य काव्य–शास्त्र*

Institute of Distance Education

Rajiv Gandhi University

A Central University

Rono Hills, Arunachal Pradesh

Contact us:

+91-98638 68890 Ide Rgu Ide Rgu helpdesk.ide@rgu.ac.in